आपेक्षिकता का अभिप्राय

Translated from
Dr. Albert Einstein's
The Meaning of Relativity

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला——४०

आपेक्षिकता का अभिप्राय

मूल लेखक

डा० ऐलबर्ट आइन्स्टाइन

अनुवादक

डा० देवीदास रघुनाथ भवालकर

तथा

डा० निहालकरण सेठी

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

विगत कई शताब्दियों में गैलीलियो, यूक्लिड और न्यूटन जसे विज्ञानवेत्ताओं ने पृथ्वी, आकाश और गुरुत्वाकर्षण आदि के विषय में जिस अनुसंधान का आरम्भ और संवर्धन किया तथा भौतिक विज्ञान में जिस अवस्थितित्ववाद को जन्म दिया उसके मूलाधार गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त में, स्वर्गीय प्रोफेसर आइन्स्टाइन के सन् १९२१ के प्रारम्भ में प्रिंसटन, अमेरिका में हुए चार व्याख्यानों ने उथल-पुथल मचा दी थी। यह चारों व्याख्यान सन् १९२२ में पुस्तकाकार छपे और तब से आपेक्षिकता सिद्धान्त के मूलाधार बने चले आ रहे हैं। गुरुत्वाकर्षण विषयक परिशिष्ट इन व्याख्यानों के प्रकाशित संस्करण में परिशिष्ट २ के शीर्षक से सन् १९५० में जोड़ा गया। प्रथम परिशिष्ट में विद्वान् लेखक ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के सम्बन्ध में हुई नयी खोजों का विवेचन किया है।

आपेक्षिकता सिद्धान्त ने साबित कर दिया कि दूरी तथा काल निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष होते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि ऊर्जा तथा द्रव्य विभिन्न सत्ताएँ न होकर एक ही सत्ता के दो विभिन्न रूप हैं। आइन्स्टाइन के इस सिद्धान्त ने तत्कालीन भौतिक विज्ञान में महान् क्रान्ति उपस्थित कर दी थी और तब से वह उस विज्ञान के अध्ययन और अनुशीलन का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। अपनी मृत्यु से पूर्व विद्वान् लेखक ने उपर्युक्त चारों व्याख्यानों तथा दोनों परिशिष्टों का, पूरी तरह संशोधन कर दिया था और उनमें उस समय तक हुए अनुसंधानों के परिणामों के प्रकाश में उचित परिवर्तन भी कर दिया था। लेखक की इसी संशोधित पुस्तक का यह अनुवाद है।

यह पुस्तक हिन्दी समिति ग्रन्थमाला का ४०वाँ ग्रन्थ है। इसके अनुवादक सागर विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के अध्यक्ष डा० डी० आर० भवालकर तथा आगरा कॉलेज के अवसर प्राप्त प्रधानाचार्य डा० निहालकरण सेठी हैं। दोनों ही सज्जन भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञ और सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। डा० भवालकर ने

हिन्दी विश्वकोश के लिए कतिपय लेख लिखे हैं तथा डा० सेठी की तो विज्ञान विषयक कई पुस्तकें हिन्दी में निकल चुकी हैं। विषय की गंभीरता को देखते हुए अनुवाद की भाषा यथासंभव सरल रखी गयी है। आशा है, हिन्दी के पाठकों को डा० आइन्स्टाइन के इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की जानकारी कराने में हमारे इस प्रकाशन से यथेष्ट सहायता मिलेगी।

भगवतीशरण सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

प्रस्तावना

जिस समय से मनुष्य ने "आहार निद्रा भय मैथुनं च" के अतिरिक्त अपने आस-पास की प्रकृति का निरीक्षण करना प्रारंभ किया, उस समय से वर्तमान काल तक अनेक प्रकार के आविष्कार हुए हैं। और प्रत्येक आविष्कार ने मनुष्य को प्रगतिपथ पर एक-एक कदम आगे बढ़ाया है। यह प्रगति सहस्रों वर्षों से अव्याहत रूप से चलती आ रही है और आगे भी चलती रहेगी। किंतु गत दो शताब्दियों में जो प्रगति हुई है वह विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। विज्ञान का कौतूहल किसी विशिष्ट वर्ग में सीमित न रह कर सर्वसाधारण जनता में फैल गया है।

अभी तक जितना ज्ञान प्राप्त हो चुका है उसकी प्रगति में किस आविष्कार का हाथ सबसे अधिक था यह विवाद का विषय हो सकता है, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि जिन आविष्कारों से ज्ञान की प्रगति में क्रान्ति हो गयी उनमें 'आपेक्षिकता के सिद्धान्त' (Theory of Relativity) का स्थान प्रमुख है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में भौतिकी के प्रायः निरभ्र गगन में दो कृष्ण मेघ दिखाई देने लगे थे और उन्हीं में से एक से आपेक्षिकता के सिद्धान्त का जन्म हुआ। नये आविष्कारों के कारण चिर-प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की त्रुटियाँ विशेष रूप से दिखाई देने लगीं तथा जिन मौलिक धारणाओं पर उस समय तक अंधविश्वास किया जाता था उनका भी विश्लेषण करने की आवश्यकता दिखाई देने लगी। यह सत्य है कि विज्ञान के विकास में निश्चित समझे जानेवाले सिद्धान्तों में सुधार (अथवा आवश्यकता होने पर त्याग भी) अनेक बार होता ही रहता है। किंतु जैसा आघात भौतिकी तथा दर्शनशास्त्र पर न्यूटन के आविष्कारों से हुआ था, उससे भी प्रबलतर आघात इस 'आपेक्षिकता के सिद्धान्त' ने किया।

प्रोफ़ेसर ऐलबर्ट आइन्स्टाइन ने सन् १९०५ में अपने आपेक्षिकता-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इस नये सिद्धान्त की आवश्यकता क्यों हुई, यह जानने के लिए उसके पहले की परिस्थिति का थोड़ा-सा सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक है। प्रकाश के विषय में जो आविष्कार हुए थे उनका स्पष्टीकरण करने के लिए आकाश (स्पेस) में परिव्याप्त एक माध्यम (मीडियम) के अस्तित्व की संकल्पना करनी पड़ी थी।

और यह धारणा निश्चित रूप से सत्य समझी जाने लगी थी कि प्रकाश का प्रचरण इसी माध्यम में तरंग के रूप में होता है। इस माध्यम का नाम 'ईथर' (ether) रख दिया गया था।

इसी ईथर का एक और महत्त्वपूर्ण कार्य यह था कि निरपेक्ष (absolute) गति के नाप के लिए इसी को निरपेक्ष विराम की स्थिति का मानक भी माना जाता था। दिक् अथवा आकाश एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार कर लिया गया था और यह समझा जाता था कि यह ईथर उसमें सर्वत्र भरा हुआ है और पूर्णतः गतिहीन है। जिस प्रकार सागर के जल को स्थिर मानकर उस पर चलनेवाली नौका की गति को सरलता से नाप लिया जाता है, ठीक उसी प्रकार यह विश्वास किया जाता था कि इस ईथर को भी स्थिर मानकर गतिमान वस्तु की गति को नापने से उस वस्तु की निरपेक्ष गति का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इस निरपेक्ष गति का ज्ञान प्रकाश-विज्ञान के अतिरिक्त गतिविज्ञान में भी आवश्यक था क्योंकि यांत्रिकी (मेकानिक्स) के जो नियम न्यूटन ने स्थापित किये थे उनके अनुसार वेग तथा त्वरण (acceleration) नापने के लिए एक 'निरपेक्ष मानक' अपेक्षित था।

तथापि इस निरपेक्ष गति का अन्वेषण दुष्कर था और उसके लिए अत्यन्त सुग्राही (sensitive) प्रयोगों की आवश्यकता थी। ऐसा प्रथम प्रयोग माइकेलसन तथा मोर्ले (Michelson and Moreley) ने सन् १८८७ में किया था। उनका उद्देश्य यह था कि सूर्य को स्थिर मानकर जिस आपेक्षिक वेग से पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है उसका निरपेक्ष मान पार्थिव प्रयोग के द्वारा नाप लिया जाय। यदि सूर्य ईथर में स्थिर है तो यह निरपेक्ष वेग भी उतना ही (प्रायः ७०,००० मील प्रति घंटा ही) निकलेगा, अन्यथा सूर्य का वेग भी इसमें जोड़ना पड़ेगा। किन्तु माइकेलसन तथा मोर्ले के प्रयोगों से फल यह मिला कि पृथ्वी का ईथर-सापेक्ष वेग शून्य होता है। इससे सरल निष्कर्ष यह निकलता है कि ईथर की कल्पना मिथ्या है अथवा दूसरे शब्दों में यह कि गति का कोई निरपेक्ष मानक हो ही नहीं सकता। गति का जो माप हम करते हैं वह अवश्य ही किसी न किसी निर्देशांक-तंत्र (system of coordinates) के साक्षेप होता है और ये निर्देशांक-तंत्र हमारे इच्छानुसार अनेक प्रकार के हो सकते हैं। इनमें से किसी में भी विशिष्टता मानना संभव नहीं है। इस प्रकार न्यूटन की यांत्रिकी में "निरपेक्ष प्रेक्षक (absolute observer)" की जो कल्पना की गयी थी वह मिथ्या प्रतीत हुई और ऐसा दिखाई देने लगा कि न्यूटन के सिद्धान्त में भी त्रुटियाँ विद्यमान हैं।

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में फ्रांस के गणितज्ञ एच० प्वांकरे (H. Poincare) ने ही सबसे पहले इस कठिनाई को दूर करने का यत्न किया। उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि भौतिकी के नियम इस प्रकार व्यक्त होने चाहिए कि प्रेक्षक का वेग चाहे कितना ही क्यों न हो, उन नियमों की यथार्थता अक्षुण्ण बनी रहे। इस सिद्धान्त का भी सरल अर्थ यही है कि किसी विशिष्ट निरपेक्ष प्रेक्षक का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। पहले इस सिद्धान्त का बहुत विरोध हुआ, किन्तु अनेक प्रकार के प्रयोग करने के पश्चात् इसकी सत्यता स्पष्ट दिखाई देने लगी। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकाश-वेग का मैक्सवैल द्वारा प्रतिपादित प्रकाश के विद्युत्-चुम्बकीय सिद्धान्त में मौलिक स्थान है उस प्रकाश-वेग का मान समस्त प्रेक्षकों के प्रयोगों द्वारा बराबर ही निकलेगा (विशेषतः उन प्रेक्षकों के प्रयोगों के द्वारा जिन पर कोई बल कार्य न करता हो)। इसी नियम को आइन्स्टाइन ने अपने आपेक्षिकता-सिद्धान्त का आधार बनाया था और १९०५ में जिस "विशिष्ट आपेक्षिकता" के सिद्धान्त का उन्होने प्रतिपादन किया था उसका रूप यह है—

"भौतिकी के नियमों का रूप ऐसा होना चाहिए कि वे किसी भी अत्वरित वेग वाले प्रेक्षक के लिए यथार्थ रहें"।

इस सिद्धान्त के विकास में आइन्स्टाइन के अतिरिक्त प्वांकरे, लोरेन्ट्ज़ (Lorentz) आदि वैज्ञानिकों ने भी सहायता दी थी।

आपेक्षिकता के सिद्धान्त ने हमारे अनेक सिद्धान्तों तथा धारणाओं को उनके प्रतिष्ठित स्थान से विचलित कर दिया। दिक् तथा काल के संबंध में हमारे जो विश्वास थे उनमें मौलिक परिवर्तन हो गये। यदि कोई दो घटनाएँ किसी प्रेक्षक की दृष्टि से समक्षणिक (simultaneous) हों तो इस सिद्धान्त के अनुसार वे इस प्रेक्षक की अपेक्षा गतिमान किसी अन्य प्रेक्षक की दृष्टि से समक्षणिक नहीं मालूम होंगी। इसका अर्थ यह है कि यद्यपि अबतक काल निरपेक्ष समझा जाता था, तथापि वास्तव में वह भी निरपेक्ष नहीं है। यदि कोई दो प्रेक्षक अन्योन्य-सापेक्ष गतिमान हों तो दोनों के लिए समय का माप एक-सा नहीं हो सकता। इसे "काल का प्रसार" (Time-dilatation) कहते हैं।

इसी तरह लम्बाई के माप में क्रान्तिकारक परिवर्तन हो गया। अब किसी वस्तु की लम्बाई नियत (constant) नहीं समझी जा सकती। ज्यों-ज्यों उस वस्तु का वेग बढ़ता जाता है उसकी लम्बाई घटती जाती है। इसे 'फ़िट्ज़जेरेल्ड (Fitz gerald) का आकुंचन (कंट्रैक्शन) कहते हैं।

काल तथा लम्बाई के विषय में आपेक्षिकता सिद्धान्त के इन परिणामों से माइ-केलसन और मोर्ले के प्रयोगों का तो स्पष्टीकरण हो गया, किन्तु उस समय इनका समर्थन अन्य प्रयोगों से नहीं हो सका, क्योंकि काल तथा लम्बाई के ये परिवर्तन साधारण वेग वाली गति के लिए इतने अल्प होते हैं कि वे प्रेक्षणीय नहीं होते। किन्तु जब गति का वेग प्रकाश-वेग के निकट पहुँच जाता है तब उनका अस्तित्व अधिक स्पष्ट हो जाता है। अब प्रायोगिक भौतिकी में इतनी प्रगति हो चुकी है कि हम प्रकाश-वेग की कोटि का वेग भी उत्पन्न कर सकते हैं। और जिन प्रयोगों में इतने अधिक वेग से चलनेवाली वस्तुओं का प्रेक्षण किया गया है उनसे काल तथा लम्बाई के इन परिवर्तनों का प्रमाण पूर्णतः मिल जाता है। यथा अन्तरिक्ष-किरणों (cosmic rays) के द्वारा निर्मित मेसानों (meson) के आयुकाल की समस्या विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त से ही हल हुई है।

जिस प्रकार दूरी (अथवा लम्बाई) तथा काल की निरपेक्षता के विषय में इस सिद्धान्त ने हमारा भ्रम दूर कर दिया, उसी प्रकार उसने द्रव्य संबंधी हमारे दो महत्त्वपूर्ण विश्वासों को भी भ्रमपूर्ण प्रमाणित कर दिया। एक तो, अब तक हम समझते थे कि वस्तुओं का द्रव्यमान (mass) अपरिवर्ती (स्थिर) होता है। किन्तु अब हम देखते हैं कि यह कथन केवल उसी समय तक सत्य है जब तक कि वस्तुएँ गतिहीन अवस्था में रहती हैं या वे थोड़े वेग से चलती हैं। किन्तु तथ्य यह है कि ज्यों-ज्यों वेग बढ़ता जाता है त्यों-त्यों द्रव्यमान भी बढ़ता जाता है और यदि वेग प्रकाश-वेग के बराबर हो जाय तो द्रव्यमान अनन्त (infinite) हो जायगा। इस परिवर्तन को व्यक्त करनेवाला समीकरण निम्न है—

$$m = \frac{m_\circ}{\sqrt{1 - \frac{v^2}{c^2}}}$$

जहाँ m=वस्तु का द्रव्यमान, $m_\circ$=उसी वस्तु का विराम-अवस्था में द्रव्यमान, v=वस्तु का वेग तथा c=प्रकाश का वेग।

दूसरे अब तक हमारा विश्वास था कि द्रव्य (matter) तथा ऊर्जा (energy) सर्वथा भिन्न सत्ताएँ हैं। किन्तु आपेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार द्रव्यमान तथा ऊर्जा निम्नलिखित समीकरण द्वारा संबंधित होते हैं—

$$E = mc^2$$

जहाँ E=ऊर्जा, m=द्रव्यमान तथा c=प्रकाश का वेग। इसका अर्थ यह है कि

ऊर्जा तथा द्रव्यमान का एक-दूसरे में परिणाम हो सकता है। अथवा यों कहिए कि ये दोनों किसी एक-ही मूल सत्ता के दो विभिन्न रूप हैं। यदि किसी वस्तु के वेग में वृद्धि होती है तो उसका कारण यह होता है कि उसमें बाहर से कुछ ऊर्जा प्रविष्ट हो गयी है। किन्तु अब हमको यह भी मानना पड़ता है कि इस ऊर्जा की वृद्धि के ही कारण उसमें द्रव्य की मात्रा भी बढ़ जाती है। अर्थात् वह ऊर्जा ही द्रव्य के रूप में परिणत हो जाती है।

वस्तु की विराम-अवस्था में उपर्युक्त समीकरण हो जायगा—

$$E_o = m_o c^2$$

$$\text{अतः } E - E_o = (m - m_o)c^2 = \left(\frac{1}{\sqrt{1 - \frac{v^2}{c^2}}} - 1\right) m_o c^2$$

किन्तु प्रकाश-वेग=3×10^{10} सम० प्रति सेकंड होने के कारण साधारण वेगों के लिए द्रव्यमान की यह वृद्धि उपेक्षणीय ही रहती है। किन्तु यदि वेग प्रकाश-वेग की कोटि का हो जाय तो यह वृद्धि उपेक्षणीय नहीं रहेगी। अब यह बात प्रयोग के द्वारा पूर्णतः प्रमाणित हो चुकी है।

इस समीकरण का दूसरा परिणाम यह है कि यदि द्रव्यमान m पूर्णतः ऊर्जा में परिणत हो जाय तो जो ऊर्जा प्राप्त होगी वह घटक c^2 के कारण बड़ी प्रचंड होगी। परमाणु बम (atomic bomb) का आविष्कार इसी तथ्य पर आश्रित है। यूरेनियम के परमाणु का भार २३५ होता है। जब उस का विखंडन (fission) होता है तो उसके टूटे हुए भागों का सम्मिलित भार २३५ नहीं होता। वह कुछ कम होता है। यद्यपि द्रव्यमान की यह कमी अत्यन्त अल्प ही होती है, किन्तु आइन्स्टाइन के द्रव्य-ऊर्जा अनुबंध के अनुसार इससे प्रगट होने वाली ऊर्जा का मान बहुत बड़ा होता है। हाइड्रोजन-बम में हाइड्रोजन के परमाणुओं के संसंजन (Fusion) से हीलियम का परमाणु बनता है। इस क्रिया में भी द्रव्यमान घट जाता है और यहाँ भी ऊर्जा की उत्पत्ति का कारण वही है। कई अरब वर्षों से सूर्य ऊर्जा का अनवरत विकिरण (radiation) करता रहा है। इसका रहस्य भी ऐसी ही क्रिया में निहित है। इस तरह विशिष्ट आपेक्षिकता का ऊर्जा-द्रव्य संबंधी समीकरण अनेक प्रकार के प्रयोगों से प्रमाणित हो गया है और आधुनिक भौतिकी में विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है*।

* डी० सी० मिलर (D. C. Miller) के कुछ आधुनिक प्रयोगों के द्वारा ईथर के सापेक्ष

यद्यपि विशिष्ट आपेक्षिकता के काल, दूरी तथा द्रव्यमान संबंधी सभी परिणाम परमाणु-भौतिकी में अनेक बार प्रमाणित हो चुके हैं तथापि सामान्य व्यवहार में इनका उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि हमारे नित्य के व्यवहार में जिन वेगों से हमारा काम पड़ता है वे प्रकाश-वेग की तुलना में उपेक्षणीय होते हैं। नित्य के व्यवहार के लिए तो न्यूटन की यांत्रिकी की धारणाएँ अब भी पर्याप्त समझी जा सकती हैं।

यह सच है कि विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त के द्वारा भौतिकी तथा दर्शनशास्त्र के लिए एक नवीन और अधिक संतोषप्रद दृष्टिकोण प्राप्त हो गया था तथापि भौतिकी में कुछ समस्याएँ ऐसी रह गयी थीं जिनकी मौलिक धारणाओं के विषय में अनेक प्रकार की शंकाओं का अब भी समाधान नहीं हो सका था। इसलिए १९१५ में आइन्स्टाइन ने व्यापक आपेक्षिकता (General Relativity) के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त में विशिष्ट आपेक्षिकता की धारणाओं में द्रव्यमान संबंधी कुछ नवीन धारणाएँ और जोड़ दी गयीं।

भौतिकी में दो प्रकार के द्रव्यमानों का उपयोग होता है। एक तो कहलाता है 'अवस्थितित्वीय अथवा जड़त्वीय द्रव्यमान' (inertial mass) जिसका उपयोग यांत्रिकी में बल (force) तथा उससे उत्पन्न त्वरण (acceleration) का संबंध व्यक्त करने के लिए किया जाता है। दूसरा कहलाता है 'गुरुत्वीय द्रव्यमान' (gravitational mass) जिसका उपयोग गुरुत्वाकर्षण के प्रसंग में किया जाता है। यद्यपि इन दोनों प्रकार के द्रव्यमानों की परिभाषाएँ सर्वथा भिन्न तथा परस्पर स्वतंत्र धारणाओं पर आधारित हैं तथापि प्रयोग द्वारा ये दोनों द्रव्यमान सर्वदा बराबर परिमाण के ही पाये जाते हैं। द्रव्यमानों की इस एकता का उपयोग करके आइन्स्टाइन ने गतिविज्ञान तथा गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त में एकरूपता उत्पन्न कर दी। किन्तु आइन्स्टाइन की वैधानिक पद्धति न्यूटन की पद्धति से भिन्न है।

विशिष्ट आपेक्षिकता के अनुसार आकाश और काल स्वतंत्र सत्ताएँ नहीं रह गयी थीं और उनमें घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया था। मिनकाउस्की (Minkowski) ने आकाश और काल के सम्मिश्रण से एक 'चतुर्विमितीय सांतत्यक' (Four dimen-

पृथ्वी का वेग शून्य नहीं निकला है। उसका मान यद्यपि बहुत छोटा पाया गया है, किन्तु यह निश्चित-सा ही प्रतीत होता है कि वह बिलकुल शून्य नहीं है। किन्तु अभी तक वैज्ञानिक संसार में इस बात को मान्यता नहीं मिली है। माइकेलसन तथा मोर्ले के प्रयोग को अधिक सुग्राही उपकरणों की सहायता से पुनः सावधानतापूर्वक दोहराने के बाद ही इसका निर्णय हो सकेगा।

sional Continuum) की संकल्पना के द्वारा विशिष्ट आपेक्षिकता के अनुबन्धों को ज्यामितीय रूप दे दिया। और तब आइन्स्टाइन ने इस चतुर्विमितीय सांतत्यक को मौलिक मानकर गुरुत्वाकर्षण की समस्याओं को ज्यामितोय पद्धति के अनुसार हल किया। इस व्यापक आपेक्षिकता के सिद्धान्त से न्यूटन की यांत्रिकी के वे सब परिणाम तो प्राप्त हो ही गये जो प्रयोग द्वारा प्रमाणित हो चुके थे। किन्तु उनके अतिरिक्त कुछ परिणाम ऐसे भी निकल आये जिनको न्यूटन की यांत्रिकी से प्राप्त करना संभव नहीं है। इनमें से निम्नलिखित तीन परिणाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और उन्हें प्रयोगों के द्वारा प्रमाणित करने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं।

(१) बहुत वर्षों से ज्योतिषियों को ज्ञात था कि सौरपरिवार (Solar System) में बुध (Mercury) ग्रह की कक्षा प्रत्यक्ष प्रेक्षण द्वारा वैसी नहीं पायी जाती जैसी कि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के अनुसार उसे होना चाहिए था। उसका परिसौर बिन्दु (perihelion) स्थिर रहने के बदले अत्यन्त मन्थर, किन्तु निश्चित वेग से अग्रसर होता हुआ पाया गया था। व्यापक आपेक्षिकता के अनुसार परिकलन करने से न केवल परिसौर बिन्दु की गति का स्पष्टीकरण ही हुआ, किन्तु इस गति का परिमाण भी प्रेक्षित परिमाण के अनुरूप ही प्राप्त हो गया।

(२) व्यापक आपेक्षिकता सिद्धान्त का दूसरा परिणाम यह था कि बहुत भारी द्रव्य-पुंज के निकट से जब कोई प्रकाश-किरण जाती है तो उसका पथ सरल रेखात्मक नहीं रहता। उसमें कुछ वक्रता आ जाती है। इसका कारण इस सिद्धान्त के अनुसार यह है कि प्रकाश भी एक प्रकार की ऊर्जा है। अतः उसमें भी द्रव्यमान होता है और उसपर भी द्रव्य की ही भाँति गुरुत्वाकर्षण का बल लगता है। किन्तु इस गुरुत्वीय बल से प्रकाश के पथ में जो वक्रता उत्पन्न होती है वह प्रकाश के अत्यधिक वेग के कारण इतनी थोड़ी होती है कि साधारणतः वह प्रेक्षणगम्य नहीं होती। किन्तु सूर्य के पूर्ण ग्रहण (total eclipse) का समय इसके प्रेक्षण के लिए उपयुक्त है क्योंकि उस समय सर्वत्र अंधकार हो जाने के कारण आसमान में तारे दिखाई देने लगते हैं और सूर्य के पीछे की तरफ से सूर्य-पृष्ठ के अत्यन्त निकटवर्त्ती प्रबल गुरुत्वीय क्षेत्र में से आती हुई किसी तारे की किरण की वक्रता नापी जा सकती है। इस प्रकार की माप १९१९, १९२२, १९२९, १९४७, तथा १९५४ के पूर्ण-ग्रहणों के समय की गयी थी और इससे व्यापक आपेक्षिकता के इस परिणाम की सत्यता प्रमाणित हो गयी। वक्रता के सैद्धान्तिक और प्रेक्षित परिमाणों में जो थोड़ा-सा अन्तर पाया गया है वह प्रायोगिक भूल के अन्तर्गत है और उपेक्षणीय है।

(३) तीसरे परिणाम का सम्बन्ध प्रकाश के तरंग-दैर्घ्य (wave-length) से है। यह तरंग-दैर्घ्य प्रकाश के उत्पादक परमाणुगत कम्पनों के आवर्तकाल (periodic time) पर अवलम्बित होता है। और व्यापक आपेक्षिकता सिद्धान्त के अनुसार प्रबल गुरुत्वीय क्षेत्र में अवस्थित कम्पनों का आवर्तकाल बढ़ जाता है और उससे उत्पन्न प्रकाश-तरंग का दैर्घ्य भी कुछ बढ़ जाता है। फलतः किसी अत्यन्त प्रबल गुरुत्वाकर्षणवाले तारे में से आनेवाले किसी विशेष तत्त्व के परमाणु के प्रकाश का तरंग-दैर्घ्य उसी तत्त्व के पृथ्वी पर अवस्थित परमाणु के प्रकाश के तरंग-दैर्घ्य की तुलना में कुछ थोड़ा-सा बढ़ जायगा और उसकी स्पैक्ट्रमीय रेखा स्पैक्ट्रम के लाल छोर की ओर हटी हुई दिखाई देगी। इसे स्पैक्ट्रमीय रेखाओं का 'रक्ताभिमुखी विस्थापन' अथवा संक्षेप में 'रक्त-विस्थापन' (red-shift) कहते हैं। इस बात का प्रायोगिक प्रमाण भी ऐसे तारों के प्रकाश में मिल गया है जिन्हें वामन तारे (dwarf star) कहते हैं और जिनमें द्रव्य का घनत्व जल की अपेक्षा सहस्रों गुना अधिक होता है।

व्यापक आपेक्षिकता के सिद्धान्त से विश्वसंरचना (structure of the universe) सम्बन्धी एक नये अध्ययन-विषय का भी जन्म हुआ है और उसने आधुनिक भौतिकी के विकास के अध्ययन को अत्यन्त रोचक बना दिया है। ज्यों-ज्यों दूरबीनों की उत्कृष्टता बढ़ती गयी त्यों-त्यों मनुष्य की दृष्टि का विस्तार भी विशाल होता गया और अब तो अमेरिका के पालोमर (Palomar) पर्वत पर स्थापित २०० इंच व्यासवाली दूरबीन की सहायता से मनुष्य की दृष्टि अत्यन्त दूर तक पहुँच रही है। फलतः तारों और नीहारिकाओं (nebula) के संबंध में नित्य नवीन ज्ञान प्राप्त हो रहा है। नीहारिकाओं के प्रकाश के तरंग-दैर्घ्यों को नापने से ज्ञात हो गया है कि हमसे ये नीहारिकाएँ निरन्तर बड़ी तीव्र गति से दूर हट रही हैं। और जितनी अधिक किसी निहारिका की हमसे दूरी होती है उतनी ही अधिक तीव्र गति से वह हमसे दूर भागती हुई जान पड़ती है। यह 'हबल का नियम' (Hubble's Law) कहलाता है। अर्थात् इस विश्व का विस्तार निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इस प्रसरण के द्वारा विश्व की उत्पत्ति के समय का भी अनुमान लगा लिया गया है। इसके अतिरिक्त यह भी अनुमान कर लिया गया है कि इस समय विश्व का औसत घनत्व सन्निकटतः 10^{-28} ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर है। आपेक्षिकता के सिद्धान्त के द्वारा इन सब प्रेक्षित तथ्यों का स्पष्टीकरण करने के तथा उन सब को एक-ही सिद्धान्त में बैठाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

व्यापक आपेक्षिकता का उद्देश्य प्रमुखतः यांत्रिकी तथा गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्तों का एकीकरण था। किन्तु प्रकृति में केवल इन्हीं दो जातियों के बल नहीं होते। विद्युत्-चुम्बकीय (electromagnetic) तथा नाभिकीय (nuclear) बलों का अस्तित्व भी निश्चय ही है। अतः जिस प्रकार व्यापक आपेक्षिकता ने यांत्रिकीय तथा गुरुत्वीय बलों का चतुर्विमितीय दिक्-काल सांतत्यक की ज्यामिति के द्वारा स्पष्टीकरण कर दिया है, उसी प्रकार जो सिद्धान्त इन अन्य प्रकार के बलों का भी स्पष्टीकरण करने में सफल हो जायगा वही अधिक संतोषजनक समझा जायगा। किन्तु यह समस्या प्रथमतः जितनी सरल दिखाई देती है, वस्तुतः उतनी सरल है नहीं।

व्यापक आपेक्षिकता के सिद्धान्त में विद्युत्-चुम्बकीय बल-क्षेत्र को समाविष्ट करने के लिए पहले तो हमें मैक्सवैल (Maxwell) के समीकरणों पर विचार करना पड़ेगा। किन्तु यह कार्य सुगम नहीं है। आइन्स्टाइन ने अपने अंतिम ३० वर्ष ऐसे ही "एकीकृत क्षेत्र-सिद्धान्त (Unified Field Theory)" का निर्माण करने के प्रयत्न में बिताये। फिर भी उन्हें सफलता नहीं मिली। अपने अन्त काल तक आइन्स्टाइन का दृढ़ विश्वास था कि यद्यपि आज गुरुत्वाकर्षण बल, विद्युत्-चुम्बकीय बल तथा नाभिकीय बल विभिन्न रूपों में तथा विभिन्न प्रकार से भौतिक विज्ञान में व्यक्त किये जाते हैं, किन्तु मूलतः उनमें भिन्नता नहीं है। दिक्-काल सांतत्यक में उन सभी का एकीकरण अवश्य ही संभाव्य है। ऐसे नवीन सिद्धान्त का निर्माण करने के लिए अनेक सुविख्यात वैज्ञानिकों ने प्रयत्न किये हैं और अब भी कर रहे हैं। किन्तु उन सबकी असफलता से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भौतिकी का ऐसा ज्यामितीकरण कहाँ तक उचित है। इस सम्बन्ध में विख्यात वैज्ञानिकों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें मिलने (Milne), ह्वाइटहैड (White head), हॉयल (Hoyle) आदि के नाम प्रमुख हैं। अब यह समस्या केवल भौतिक विज्ञान की समस्या ही नहीं रह गयी है। दर्शनशास्त्र, गणित आदि के विद्वानों ने भी इसे अपनाया है। जितनी प्रगति अब तक हो चुकी है उससे यह आशा होती है कि किसी न किसी दिन यह समस्या भी हल हो ही जायगी। और तब हमारे विचारों और धारणाओं में एक बार फिर वैसी ही क्रान्ति हो जायगी जैसी कि वर्तमान में आपेक्षिकता के सिद्धान्त से हुई है।

उपरि-निर्दिष्ट विवेचन आपेक्षिकता के सिद्धान्त के विकास का एक छोटा-सा सिंहावलोकन मात्र है। इस सिद्धान्त की समस्याएँ नित्य के व्यवहार की नहीं हैं। इसलिए इनको हल करने का प्रयत्न भी असाधारण प्रकार का है। इनमें प्रयुक्त गणित के

प्रमेय गणित की असाधारण तथा विशेष प्रकार की शाखाओं में से लिये गये हैं। अतः आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त को समझने के पहले इन गणितीय शाखाओं का अभ्यास करने की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि जहाँ यह सिद्धान्त प्रत्येक पाठक के मन में कौतूहल उत्पन्न करता है वहीं कुछ भय का भी संचार करता है। इसकी मूल धारणाओं को और प्राप्त परिणामों को समझना इतना कठिन नहीं है जितना कठिन उन फलों को प्राप्त करने की विधि को समझना।

आइन्स्टाइन ने १९२१ में अमेरिका के प्रिंसटन विश्वविद्यालय में जो चार व्याख्यान दिये थे और जो १९२२ में पहली बार पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए थे, यह पुस्तक उन्हीं का अनुवाद है। अंगरेजी पुस्तक के अब तक छः संस्करण निकल चुके हैं। चतुर्थ संस्करण में स्वयं आइन्स्टाइन ने ही एक और परिशिष्ट "गुरुत्वाकर्षण के व्यापकीकृत सिद्धान्त" (Generalised Theory of Gravitation) पर लिख कर जोड़ दिया था। छठे संस्करण में इस परिशिष्ट को उन्होंने पूर्णतः नवीन रूप में लिख दिया था और उसके शीर्षक को बदलकर "असंमित क्षेत्रों का आपेक्षिकीय सिद्धान्त" (Relativistic Theory of the Non-Symmetric Field) कर दिया था। प्रस्तुत अनुवाद के लिए मेथ्यूएन एण्ड कंपनी, लन्दन (Methuen and Co., London) द्वारा प्रकाशित "The Meaning of Relativity" के छठें संशोधित संस्करण (१९५६) का उपयोग किया गया है।

विषय गहन है, यह कठिनाई तो थी ही। किन्तु उसके साथ-साथ पारिभाषिक शब्दों की कठिनाई "अयम् अपरः गंडस्य उपरि स्फोटः" की तरह सामने आ खड़ी हुई। पारिभाषिक शब्द-कोश बनाने के अनेक यत्न हुए हैं और हो रहे हैं। इन प्रयत्नों से कभी-कभी तो सहायता मिलती है और कभी-कभी भ्रम भी उत्पन्न हो जाता है। यह संतोष की बात है कि केन्द्रीय सरकार के शिक्षण विभाग ने पारिभाषिक शब्द-रचना करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया है। अभी तक केवल माध्यमिक शालाओं के उपयोग के लिए ही शब्द-संग्रह तैयार हुआ है।* उसमें से अनेक शब्दों का इस अनुवाद में उपयोग किया गया है। वैसे ही आचार्य रघुबीर विरचित "आंग्ल भारतीय महाकोश" से भी अनेक शब्द लिये गये हैं। इन दोनों पुस्तकों से हमें जो सहायता मिली है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं। उसी तरह, सागर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति

* "Technical Terms in Hindi for Secondary Schools—"Physics" published by the Ministry of Education, Government of India, New Delhi 1955.

तथा उत्तर प्रदेश सरकार की हिन्दी-समिति के अध्यक्ष डा० रामप्रसाद त्रिपाठी जी ने बारंबार प्रोत्साहन देकर इस अनुवाद के लिए हमें जो प्रेरणा दी उसके लिए भी हम उनके प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करना चाहते हैं। इस अनुवाद में श्रीयुत प्रेमचंद मिश्र से जो सहायता मिली है वह भी विशेषतः उल्लेखनीय है।

अनुवाद में संभवतः अनेक त्रुटियाँ हैं, किन्तु यह दोष हमारा है। मूल पुस्तक का नहीं। कुछ बातें ऐसी भी हैं जो त्रुटियों-जैसी मालूम होने पर भी वास्तव में त्रुटियाँ नहीं हैं। ऐसी ही एक बात सांकेतिक लिपि है। इसके संबंध में हमारा निवेदन यह है कि ज्ञान, राष्ट्रों की सीमाओं द्वारा मर्यादित नहीं होता और विभिन्न देशों के विद्वानों के सहयोग से ही विज्ञान की प्रगति इतनी शीघ्रता से हो सकी है। अतः विज्ञान के अध्ययन के लिए अनेक विदेशी भाषाओं से परिचित होना आवश्यक है। भौतिकी की प्रगति में नवीन सिद्धान्तों की रचना करते समय सूत्रीकरण की आवश्यकता होती है और समीकरणों को ऐसे रूप में व्यक्त करना पड़ता है कि उन पर दृष्टिपात करते ही उनका अभिप्राय समझ में आ सके। स्पष्ट है कि यदि प्रत्येक राष्ट्र ऐसे मौलिक समीकरणों में केवल अपनी ही लिपि का उपयोग करने का दुराग्रह करे तो विज्ञान की प्रगति में विकट कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायेंगी। इसलिए भौतिकी के लिए कुछ अन्तर-राष्ट्रीय संकेत नियत कर दिये गये हैं और समस्त देशों में भौतिकी के सिद्धान्तों को इन्हीं संकेतों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। यथा, प्रकाश के वेग के लिए नियत संकेत 'c' है। सब भाषाओं में एक ही संकेतावली के व्यवहार से लाभ यह है कि किसी भी भाषा की पुस्तकों में प्रकाशित आविष्कारों को समझना कठिन नहीं होता। इन संकेतों की संख्या अब इतनी बढ़ गयी है कि उनके लिए किसी भी एक लिपि के अक्षर पर्याप्त नहीं होते। वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय सांकेतिक परिभाषा में अनेक लिपियों के अक्षर समाविष्ट हैं। और ज्यों-ज्यों प्रगति होती जायगी, त्यों-त्यों और भी दूसरी लिपियों के अक्षरों की आवश्यकता हो जायगी। किसी भी भाषा के साहित्य में भौतिकी के आविष्कार इन निश्चित संकेतों के द्वारा ही व्यक्त किये जाते हैं। अब ये संकेत किसी लिपि विशेष के अक्षर नहीं समझे जाते। वे तो भौतिक विज्ञान के प्रतीकात्मक संकेत-चित्र बन गये हैं। इसलिए इस अनुवाद में उन्हीं संकेताक्षरों को स्वीकृत कर लिया गया है जिनका उपयोग मूल-पुस्तक में किया गया था। इस अनुवाद को पढ़ लेने के पश्चात् यदि कभी आपेक्षिकता के सिद्धान्त के विषय में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन इत्यादि भाषाओं की पुस्तकों को पढ़ने की आवश्यकता पड़े तो इसके समीकरण उन भाषाओं में भी इसी रूप में मिलेंगे और उन्हें समझना आसान होगा।

आपेक्षिकता के सिद्धान्त तथा उसके जन्मदाता के विषय में विपुल साहित्य उपलब्ध है। इनमें Tudor Publishing Company द्वारा प्रकाशित The Library of Living Philosphers नामक पुस्तक माला की Paul Arthur Schipp द्वारा संपादित पुस्तक "Albert Einstein: Philospher Scientist" का नाम उल्लेखनीय है। गणित को प्राधान्य देकर लिखी हुई पुस्तकों में E. Schrodinger की "Space-Time Structure" तथा E. A. Milne की "Relativity Gravitation and World Structure" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस अनुवाद को पढ़ लेने के बाद यदि किसी पाठक के मन में आपेक्षिकता के सिद्धान्त के विषय में अधिक जिज्ञासा उत्पन्न हो, तो इन दोनों पुस्तकों के पठन से अवश्य ही तृप्ति होगी।

अन्त में उत्तर प्रदेश की हिन्दी समिति ने हिन्दी भाषा की तथा भौतिक विज्ञान की सेवा करने का हमें जो अवसर दिया है उसके लिए हम समिति के सदैव ऋणी रहेंगे।

देवीदास रघुनाथ भवालकर

प्रथम अध्याय

आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी में आकाश और काल

(Space and Time in Pre-Relativity Physics)

आपेक्षिकता के सिद्धान्त का आकाश और काल के सिद्धान्त से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए प्रारम्भ में ही मैं आकाश और काल संबंधी हमारी प्रचलित धारणाओं की उत्पत्ति के मूल कारणों का विवेचन करूँगा, यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह विषय विवादास्पद है। चाहे प्रकृति-विज्ञान हो चाहे मनोविज्ञान हो, समस्त प्रकार के विज्ञान का उद्देश्य यही होता है कि हम अपने अनुभवों में क्रमबद्धता स्थापित कर सकें और उन्हें तर्क-सम्मत शृंखला में बैठा सकें। अब देखना यह है कि आकाश और काल संबंधी हमारी प्रचलित धारणाओं का हमारे अनुभवों से क्या संबंध है।

किसी भी व्यक्ति के अनुभव हमें अनेक घटनाओं के अनुक्रम के रूप में दिखाई देते हैं। इस अनुक्रम में जितनी घटनाओं का हमें स्मरण होता है उनमें से प्रत्येक "पूर्व" और "पश्चात्" नामक लक्षणों के अनुसार क्रमबद्ध जान पड़ती हैं। किन्तु इन लक्षणों का और अधिक विश्लेषण संभव नहीं है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपना-अपना स्व-काल (I-time) अथवा व्यक्तिगत (subjective) काल होता है। किन्तु यह काल स्वतः नापा नहीं जा सकता। यह तो हो सकता है कि हम इन घटनाओं का संबंध संख्याओं से इस प्रकार जोड़ दें कि पूर्व घटना से संबंधित संख्या की अपेक्षा पश्चात् घटना से संबंधित संख्या बड़ी हो। किन्तु इस संबंध का स्वरूप सर्वथा अनिश्चित और केवल व्यक्तिगत इच्छा पर ही निर्भर हो सकता है। उक्त घटनावली की घटनाओं के क्रम के साथ घड़ी द्वारा प्रस्तुत घटनाओं के क्रम की तुलना करके इस संबंध को निश्चित रूप दिया जा सकता है। घड़ी हम उस वस्तु को कहते हैं जो ऐसी घटनाओं को प्रस्तुत करती है जिनकी गिनती की जा सकती है। इसके अतिरिक्त घड़ी में अन्य गुण भी होते हैं जिनके विषय में हम आगे चलकर विचार करेंगे।

भाषा की सहायता से विभिन्न व्यक्ति अपने-अपने अनुभवों की थोड़ी-बहुत तुलना कर सकते हैं। ऐसा करने पर देखा गया है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के कुछ इंद्रिय-जन्य अनुभव तो एक-से होते हैं, किन्तु कितने ही अनुभवों में ऐसा सांगत्य स्थापित नहीं किया जा सकता। हम स्वभावतः उन अनुभवों को वास्तविक (real) समझते हैं जो विभिन्न व्यक्तियों में एक-से होते हैं और इस कारण जो बहुत कुछ अवैयक्तिक हैं। समस्त प्राकृतिक विज्ञान, और विशेष कर भौतिकी (Physics) जो सबसे अधिक मौलिक विज्ञान है, ऐसे ही इन्द्रियजन्य अनुभवों का अध्ययन करते हैं। भौतिक वस्तुओं की और विशेषकर परिदृढ़ (rigid) वस्तुओं की धारणा ऐसे ही अनेक इन्द्रिय जन्य अनुभवों का अपेक्षाकृत निश्चित प्रकार का सम्मिश्रण है। इसी अर्थ में घड़ी भी एक वस्तु अथवा वस्तु-संघ (system) है और उसमें एक अतिरिक्त गुण यह भी है कि वह जिस अनुक्रम की घटनाओं की गिनती करती है उसके समस्त मूलांश (elements) बराबर मान के समझे जा सकते हैं।

हमारी धारणाओं तथा धारणा-समूहों की सार्थकता इसी में है कि वे हमारे विविध अनुभवों को निरूपित करने में सहायता देते हैं। इसके अतिरिक्त और किसी बात से उनका समर्थन नहीं किया जा सकता। यह मेरा निश्चित विश्वास है कि जिन दार्शनिकों ने कतिपय मौलिक धारणाओं को अनुभव-जन्य ज्ञान के क्षेत्र से, जहाँ वे हमारे नियंत्रण में रहती हैं, हटाकर अनुभव-निरपेक्षता (a priori) के अगम्य शिखर पर पहुँचा दिया है उन्होंने वैज्ञानिक चिन्तन को बड़ी हानि पहुँचायी है। क्योंकि यद्यपि ऐसा मालूम होता है कि तर्क के सहारे केवल अनुभव के आधार पर धारणाओं की दुनिया की थाह नहीं मिल सकती क्योंकि एक प्रकार से वह मनुष्य के मन की ही सृष्टि है और इस मन के बिना किसी प्रकार का विज्ञान संभव ही नहीं हो सकता, तथापि तथ्य यह है कि यह धारणाओं की दुनिया हमारे अनुभवों के स्वरूप से उतनी ही कम स्वतंत्र होती है जितने कि पहनने के कपड़े मानवशरीर की आकृति से स्वतंत्र हो सकते हैं। यह बात आकाश और काल सम्बन्धी हमारी धारणाओं के विषय में विशेष रूप से सत्य है जिन्हें समंजित करके उपयोगी बनाने के लिए भौतिक वैज्ञानिकों को तथ्यों से बाध्य होकर अनुभव-निरपेक्षता के उत्तुंग शिखर से उतार कर नीचे लाना पड़ा है।

अब हम आकाश या दिक् सम्बन्धी धारणाओं तथा अभिनिर्णयों की चर्चा करेंगे। यहाँ भी यह आवश्यक है कि हम अपनी धारणाओं का अनुभवों से जो सम्बन्ध है उसको बराबर ध्यान में रखें। प्वांकरे (Poincaré) ने अपनी पुस्तक "विज्ञान

और परिकल्पना" (Science et L' Hypothese) में इस विषय का जो विवेचन दिया है उससे मुझे ऐसा जान पड़ता है कि उन्हें यह सत्य स्पष्ट रूप से ज्ञात था। किसी परिदृढ़ वस्तु के जिन समस्त परिवर्तनों का हम प्रेक्षण कर सकते हैं उनमें से जो उत्क्राम्य (reversible) परिवर्तन वस्तु की स्वेच्छ (arbitrary) गति से उत्पन्न होते हैं वे अपनी सरलता के कारण स्पष्टतः अलग दिखाई देते हैं। प्वांकरे ने इनको स्थान-परिवर्तन की संज्ञा दी है। स्थान के सरल परिवर्तन के द्वारा हम दो वस्तुओं का संस्पर्श (contact) करा सकते हैं। ज्यामिति के मूल-भूत सर्वांग-समता (congruence) के प्रमेय ऐसे ही स्थान-परिवर्तनों को नियंत्रित करनेवाले नियमों पर आश्रित हैं। आकाश की धारणा के लिए निम्न लिखित बातें आवश्यक मालूम होती हैं। ख, ग,. . . आदि वस्तुओं को किसी वस्तु क के निकट तक लाकर हम नयी वस्तुएँ बना सकते हैं। इस क्रिया को हम 'वस्तु क का संतनन' (continuation) कहते हैं। क का यह संतनन हम इस प्रकार कर सकते हैं कि उसका स्पर्श किसी अन्य वस्तु प से हो जाय। वस्तु क के इस प्रकार के समस्त संतननों की समष्टि (Ensemble) का नाम हम "क वस्तु का आकाश" रख सकते हैं। तब ऐसा कहना भी सत्य होगा कि समस्त वस्तुएँ हमारी मनमानी रीति से चुनी हुई वस्तु क के आकाश में अवस्थित हैं। इस अर्थ में हम किसी निरपेक्ष आकाश की चर्चा नहीं कर सकते, किन्तु केवल क वस्तु के आकाश की ही चर्चा कर सकते हैं। वस्तुओं के आपेक्षिक स्थानों का निर्णय करने के लिए हमारे नित्य के व्यवहार में पृथ्वी-तल का इतना प्राधान्य है कि इसी ने आकाश की निरपेक्षता की धारणा को जन्म दे दिया है। किन्तु इस धारणा का तर्क-संगत समर्थन नहीं हो सकता। इस सांघातिक भ्रम से बचने के लिए हम केवल "निर्देश-वस्तुओं" (bodies of reference) अथवा "निर्देशाकाश" (space of reference) शब्दों का ही उपयोग करेंगे। हम आगे चलकर देखेंगे कि इन धारणाओं को अधिक परिष्कृत करने की आवश्यकता 'व्यापक आपेक्षिकता' (General Relativity) के सिद्धान्त के कारण हुई थी।

निर्देशाकाश के जिन गुणों के कारण बिन्दुओं को आकाश के खंड या अवयव और आकाश को सांतत्यक (continuum) समझना आवश्यक होता है उनका विवेचन विस्तार के साथ यहाँ नहीं किया जायगा। उसी तरह, आकाश के जिन गुणों के कारण संतत बिन्दु-पंक्तियों अथवा रेखाओं की धारणा का समर्थन हो सकता है, उनका विश्लेषण भी यहाँ अभीष्ट नहीं है। यदि ये धारणाएँ सही मान ली जायँ और अनुभवगत ठोस वस्तुओं के साथ उनका सम्बन्ध भी सही मान लिया जाय तो यह सहज

में ही समझा जा सकता है कि आकाश की त्रि-विमितीयता (Three-dimensionality) का अर्थ क्या है। प्रत्येक बिन्दु से तीन संख्याएँ x_1, x_2, x_3 जिन्हें निर्देशांक (coordinates) कहते हैं, इस प्रकार सम्बन्धित की जा सकती है कि यह सम्बन्ध अनन्य रूप से व्युत्क्रमिक (reciprocal) हो और जब यह बिन्दु संतत (Continuous) बिन्दु-पंक्ति अथवा रेखा अंकित करता है तब x_1, x_2, x_3, के मान संतत रूप से बदलते जाते हैं।

आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी में यह मान लिया जाता था कि आदर्श परिदृढ़ वस्तुओं के संरूपण (configuration) के नियम यूक्लिड (Euclid) की ज्यामिति से सुसंगत हैं। इसका अभिप्राय निम्न प्रकार समझाया जा सकता है। परिदृढ़ वस्तु पर स्थित दो बिन्दुओं के बीच की दूरी को अन्तराल (interval) कहते हैं। गतिविहीन अवस्था में ऐसा अन्तराल हमारे निर्देशाकाश की अपेक्षा अनेक भाँति अथवा अनुस्थापित अनुन्यस्त (oriented) हो सकता है। अब यदि इस आकाश के बिन्दु x_1 x_2 x_3 निर्देशांकों के द्वारा निर्दिष्ट किये जा सकते हों और उस अन्तराल के दोनों सिरों के निर्देशांकों के अन्तर $\triangle x_1$, $\triangle x_2$, $\triangle x_3$ ऐसे हों कि उनके वर्गों का जोड़ प्रत्येक अनुन्यास में एक ही नियत मान का बना रहे, अर्थात् यदि सदैव

$$S^2 = \triangle x_1^2 + \triangle x_1^2 + \triangle x_3^2 \ldots \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (1)$$

हो, तो वह निर्देशाकाश यूक्लिडीय आकाश कहलाता है और वे निर्देशांक कार्तीय (Cartesian) निर्देशांक कहलाते हैं।* वास्तव में इस संकल्पना (assumption) को अन्ततः केवल अनन्त सूक्ष्म (infinitely small) अन्तराल के लिए ही सही मानना पर्याप्त है। इस संकल्पना में कई अन्य संकल्पनाएँ भी गर्भित हैं जिनकी विशिष्टता अपेक्षाकृत कम है, फिर भी उनकी मौलिक तथ्यपूर्णता के कारण हम उनकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक सामझते हैं। पहले तो यह मान लिया गया है कि किसी आदर्श परिदृढ़ वस्तु को हम अपनी इच्छानुसार जैसे चाहें वैसे चला सकते हैं। दूसरे यह भी मान लिया गया है कि अनुस्थापन के प्रति आदर्श परिदृढ़ वस्तुओं का आचरण उन वस्तुओं के भौतिक पदार्थ से तथा स्थान के परिवर्तनों से स्वतंत्र होता है। इसका अर्थ यह है कि यदि दो अन्तरालों का संपात (coincidence) एक बार संभव हो जाय तो उनका संपात कहीं भी और कभी भी हो

*स्वेच्छा से चुने हुए किसी भी मूल-बिन्दु (origin) तथा अन्तराल की किसी भी दिशा अर्थात् अनुपात $\triangle x_1 : \triangle x_2 : \triangle x_3$ के किसी भी मान के लिए इस प्रति-बंध (condition) का पालन आवश्यक है।

सकेगा। ये दोनों ही संकल्पनाएँ, जिनका ज्यामिति में तथा विशेषतः भौतिक मापन में मौलिक महत्त्व है, अनुभव से स्वभावतः ही उत्पन्न हो जाती हैं। व्यापक आपेक्षिकता के सिद्धान्त में इन संकल्पनाओं को उन्हीं वस्तुओं और निर्देशाकाशों के लिए सही समझने की आवश्यकता होती है जो खगोलीय (astronomical) दूरियों की अपेक्षा अनन्ततः छोटी हों।

इस राशि 'S' को हम अन्तराल की लम्बाई कहते हैं। इस लम्बाई के मान को अनन्यतः निर्णीत करने के लिए यह आवश्यक होगा कि किसी निश्चित अंतराल की लम्बाई के मान के लिए कोई मनमानी संख्या नियत कर दी जाय। उदाहरणार्थ, हम उसे १ समझ सकते हैं (लम्बाई का मात्रक=unit)। तब अन्य समस्त अंतरालों की लम्बाई भी निर्णीत हो जायगी। यदि हम x_ν को किसी प्राचल (parameter) λ पर रैखिक रूप से (linearly) आश्रित समझ लें, यथा--

$$x_\nu = a_\nu + \lambda b_\nu$$

तो हमें ऐसी सरल रेखा प्राप्त हो जायगी जिसमें यूक्लिडीय ज्यामिति की सरल रेखा के समस्त गुण वर्तमान होंगे। विशेषतः इससे यह परिणाम आसानी से निकल आयेगा कि किसी सरल रेखा पर अन्तराल 'S' को 'N' बार निरन्तरतः रखने से $n x s$ की लम्बाई का अन्तराल प्राप्त हो जायगा। अतः लम्बाई का अर्थ उस फल से है जो लम्बाई के मात्रक के बराबरवाले माप-दंड के द्वारा सरल रेखा पर किये गये माप से प्राप्त होता है। आगे चलकर यह प्रगट हो जायगा कि सरल रेखा के समान ही इस फल की अभिव्यक्ति भी निर्देशांक तंत्र पर आश्रित नहीं है।

अब हम ऐसी विचारधारा पर आ पहुँचे हैं जिसका कार्य आपेक्षिकता के विशिष्ट (special) और व्यापक (general) सिद्धान्तों में एक-सा है। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जिन कार्तीय निर्देशांकों का हमने उपयोग किया है उनके अतिरिक्त क्या और भी कोई समान फलदायक निर्देशांक होते हैं? हमारे निर्देशाकाश के किसी मनमाने बिन्दु से विभिन्न दिशाओं में अनुस्थापित बराबर मानवाले अन्तरालों के अन्त-बिन्दुओं के बिन्दु-पथ (locus) के रूप में जो गोलीय पृष्ठ (spherical surface) प्राप्त होता है उसकी अभिव्यक्ति भी अन्तराल की भौतिक अभिव्यक्ति के समान ही निर्देशांकों के वरण अथवा निर्वाचन (choice) पर अवलम्बित नहीं होती। यदि x_ν तथा x'_ν (ν=1 से 3 तक) हमारे निर्देशाकाश

में दो तंत्रों के निर्देशांक हों तो उन दोनों निर्देशांक-तंत्रों में यह गोलीय पृष्ठ निम्नलिखित समीकरणों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

$$\sum \triangle x_{\nu}^{2} = \text{स्थिरांक (constant)} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (2)$$

$$\sum \triangle x'^{2}_{\nu} = \text{स्थिरांक} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (2\,a)$$

निर्देशांक x'_{ν} को निर्देशांक x_{ν} के किस फलन (function) के द्वारा व्यक्त किया जाय ताकि समीकरण (2) और (2 a) तुल्य रूपी हो जायँ? यदि x'_{ν} को x_{ν} के फलन समझ लिये जायं, तो $\triangle x_{\nu}$ के स्वल्प मानों के लिए, टेलर के प्रमेय (Taylor's theorem) के अनुसार, हम लिख सकते हैं कि—

$$\triangle x'_{\nu} = \sum_{\alpha} \frac{\partial x'_{\nu}}{\partial x_{\alpha}} \triangle x_{\alpha} + \frac{1}{2} \sum_{\alpha\beta} \frac{\partial^{2} x'_{\nu}}{\partial x_{\alpha}\, \partial x_{\beta}} \triangle x_{\alpha} \triangle x_{\beta} + \cdots\cdots$$

इस समीकरण में (2 a) प्रतिस्थापित (substitute) करने पर और तब उसकी (1) से तुलना करने पर हम देखेंगे कि x'_{ν} अवश्य ही x_{ν} का रैखिक अथवा एक-घाती फलन होना चाहिए। अतः यदि हम यह मान लें कि–

$$x'_{\nu} = \alpha_{\nu} + \sum_{\alpha} b_{\nu\alpha} x_{\alpha} \quad \cdots\cdots \quad (3)$$

$$\text{अथवा} \quad \triangle x'_{\nu} = \sum_{\alpha} b_{\nu\alpha} \triangle x_{\alpha} \quad \cdots\cdots \quad (3\,a)$$

तो समीकरण (2) तथा (2 a) की तुल्यता निम्नलिखित रूप में व्यक्त की जा सकती है—

$$\sum \triangle x'^{2}_{\nu} = \lambda \sum \triangle x^{2}_{\nu} \quad \cdots\cdots \quad (2\,b)$$

जहां $\triangle x_{\nu}$ से λ स्वतंत्र है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि λ कोई स्थिरांक होना चाहिए। यदि $\lambda = 1$ समझ लिया जाय, तो (2 b) तथा (3 a) से ये प्रतिबंध (conditions) प्राप्त होते हैं—

$$\sum b_{\nu\alpha} b_{\nu\beta} = \delta_{\alpha\beta} \quad \cdots\cdots \quad (4)$$

इसमें यदि $\alpha = \beta$ हो तो $\delta_{\alpha\beta} = 1$ होगा और यदि $\alpha \neq \beta$ हो तो $\delta_{\alpha\beta} = 0$

होगा। प्रतिबंध (4) लम्ब कोणिकता (orthogonality) के प्रतिबंध कहलाते हैं और रूपान्तर-समीकरण (transformations) (3), (4) एकघात लम्ब-कोणिक रूपान्तर-समीकरण। यदि हम यह शर्त लगा दें कि प्रत्येक निर्देशांक-तंत्र में $S^2 = \sum_{\nu} \triangle x^2_{\nu}$ लम्बाई के वर्ग के बराबर होगा और हम सदा उसी मात्रक के द्वारा लम्बाई का नाप करें, तो λ का मान अवश्य ही 1 होगा। अतः हमारे निर्देशाकाश में केवल ये एक घात लम्बकोणीय समीकरण ही ऐसे रूपान्तर-समीकरण हैं जिनके द्वारा हम एक कार्तीय निर्देशांक तंत्र से किसी अन्य तंत्र में रूपान्तरण कर सकते हैं। ऐसे रूपान्तर-समीकरणों के उपयोग से सरल रेखा के समीकरण सरलरेखा के समीकरण ही बने रहते हैं। समीकरण (3 a) में दोनों पक्षों को $b_{\nu\beta}$ से गुणा करके और $_\nu$ के समस्त मानों के लिए जोड़ने से ––

$$\sum b_{\nu\beta} \triangle x'_{\nu} = \sum_{\nu\alpha} b_{\nu\alpha} b_{\nu\beta} \triangle x_{\alpha} = \sum_{\alpha} \delta_{\alpha\beta} \triangle x_{\alpha} = \triangle x_{\beta} \cdots\cdots (5)$$

अर्थात् $\triangle x_{\nu}$ के प्रतिलोम प्रतिस्थापन को भी वे ही गुणांक b निर्णीत कर देते हैं। ज्यामितीय दृष्टिकोण से x'_{ν}–अक्ष और x_{α}–अक्ष के बीच के कोण की कोज्या (cosine) $b_{\nu\alpha}$ के बराबर होती है।

सारांश यह है कि यूक्लिडीय ज्यामिति के अनुसार किसी भी दिये हुए निर्देशाकाश में कार्तीय-पद्धति के कुछ वरिष्ठ अथवा अधिमत (preferred) निर्देशांक तंत्र ऐसे होते हैं जिनमें एक घात लम्बकोणिक समीकरणों के द्वारा रूपान्तरण हो जाता है। हमारे निर्देशाकाश के दो बिन्दुओं के बीच की माप-दंड के द्वारा नापी हुई दूरी S ऐसे निर्देशांकों में विशेष सरल रीति से व्यक्त की जा सकती है। दूरी की इसी परिभाषा की भित्ति पर समस्त ज्यामिति का निर्माण किया जा सकता है। प्रस्तुत प्रतिपादन में ज्यामिति का वास्तविक वस्तुओं से (परिदृढ़ वस्तुओं से) सम्बंध है और ज्यामिति के प्रमेय इन्हीं वस्तुओं के आचरण-सम्बंधी उक्तियां हैं जिनकी सत्यता अथवा असत्यता (प्रेक्षण द्वारा) प्रमाणित हो सकती है।

साधारणतः ज्यामिति का अध्ययन करते समय उसकी धारणाओं को अनुभव से सर्वथा पृथक् रखनेकी परिपाटी प्रचलित है। शुद्ध तर्क-सम्मत बातों को तत्त्वतः अपूर्ण अनुभवमूलक बातों से पृथक् रखने में अनेक लाभ हैं। शुद्ध गणितज्ञ के लिए ऐसा करना संतोषजनक है। यदि वह स्वयंतथ्यों (Axioms) से अपने प्रमेयों का निर्दोष रीति से

निगमन कर सके अर्थात् तर्क की दृष्टि से उसमें कोई भल न रहे तो वह संतुष्ट हो जायगा। उसे इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि यूक्लिड की ज्यामिति सत्य है या नहीं। किन्तु हमारे उद्देश्य के लिए ज्यामिति की मौलिक धारणाओं को प्राकृतिक वस्तुओं से सम्बद्ध करना आवश्यक है। ऐसे सम्बंध के बिना भौतिकज्ञ के लिए ज्यामिति निरर्थक है। भौतिकज्ञ के लिए यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि ज्यामिति के प्रमेय सत्य हैं या नहीं। इस दृष्टि से यूक्लिड की ज्यामिति परिभाषाओं से प्राप्त तर्क-संगत निगमनों के अतिरिक्त और भी कुछ व्यक्त करती है। यह बात निम्नलिखित सरल विचारधारा से स्पष्ट हो जायगी।

आकाश के n बिन्दुओं के बीच में $\frac{n\ (n-1)}{2}$ दूरियाँ होती हैं जिन्हें हम $S_{\mu\nu}$ के द्वारा व्यक्त करेंगे। इन दूरियों में और $3n$ निर्देशांकों में निम्नलिखित अनुबंध होते हैं—

$$S_{\mu\nu}{}^2 = \left[x_1(\mu) - x_1(\nu)\right]^2 + \left[x_2(\mu) - x_2(\nu)\right]^2 + \cdots\cdots$$

इन $n\ \frac{(n-1)}{2}$ समीकरणों में से $3n$ निर्देशांकों का निरसन (elimination) किया जा सकता है और इस निरसन के पश्चात् $S_{\mu\nu}$ राशियों के कम से कम $\frac{n\ (n-1)}{2} - 3n$ समीकरण बन जायेंगे*। $S_{\mu\nu}$ माप्य राशियां हैं और परिभाषा के अनुसार वे एक दूसरी से स्वतंत्र हैं। अतः यह आवश्यक नहीं है कि $S_{\mu\nu}$ के ये अनुबंध अनुभवनिरपेक्ष (apriori) हों।

ऊपर लिखी बातों से प्रगट है कि यूक्लिड की ज्यामिति में रूपान्तर-समीकरण (3), (4) का मौलिक महत्त्व है क्योंकि वे एक कार्तीय निर्देशांक तंत्र से दूसरे में रूपान्तरण की क्रिया को नियंत्रित करते हैं। कार्तीय निर्देशांक तंत्रों का लाक्षणिक गुण यह है कि उन में दो बिन्दुओं के बीच की माप्य दूरी s को व्यक्त करने का समीकरण होता है—

$$s^2 = \sum \Delta x_\nu^2$$

* वास्तव में समीकरणों की संख्या $\frac{n(n-1)}{2} - 3n + 6$ होती है।

यदि $K_{(xv)}$ and $K'_{(xv)}$ दो कार्तीय निर्देशांक तंत्र हों तो

$$\sum \triangle x_v^2 = \sum \triangle x_v'^2$$

एक घात लम्बकोणिक रूपान्तर-समीकरणों के कारण इस समीकरण के दक्षिण पक्ष और वामपक्ष सर्वसम (identically equal) होंगे। दक्षिण पक्ष से वाम पक्ष में केवल इतना ही अन्तर है कि x_v के स्थान में x'_v लिख दिये गये हैं। यह तथ्य इस प्रकार व्यक्त किया जाता है कि एक-घात लम्ब कोणिक रूपान्तरण की अपेक्षा $\sum \triangle x^2_v$ निश्चर (invariant) है। यह स्पष्ट है कि यूक्लिड की ज्यामिति में केवल उन्हीं समस्त राशियों की वास्तविक अभिव्यक्ति कार्तीय निर्देशांक-तंत्र के वरण से स्वतंत्र मानी जाती है जो एक-घात लम्बकोणिक रूपान्तरणों की अपेक्षा **निश्चर** हों। यही कारण है कि **निश्चरों** का सिद्धान्त, जिसका सम्बंध **निश्चरों** के रूप को नियंत्रित करनेवाले नियमों से है, वैश्लेषिक ज्यामिति के लिए इतना महत्त्व-पूर्ण है।

ज्यामितीय **निश्चर** का दूसरा उदाहरण है आयतन (volume)। इसे व्यक्त करने का समीकरण है—

$$V = \iiint dx_1\, dx_2\, dx_3$$

याकोबी (Jacobi) के प्रमेयानुसार हम लिख सकते हैं कि—

$$\iiint dx'_1\, dx'_2\, dx'_3 = \iiint \frac{\partial\, (x'_1, x'_2, x'_3)}{\partial\, (x_1, x_2, x_3)}\, dx_1\, dx_2\, dx_3$$

जहां अंतिम अनुकल (integral) में अनुकल्य (Integrand), x_v की अपेक्षा x'_v का फलनिक (functional), सारणिक या डिटर्मिनेन्ट (determinant) है और यह (3) के अनुसार b_μ आदि प्रतिस्थापन के गुणांकों के डिटर्मिनेन्ट $|b\mu_v|$ के बराबर है। यदि हम समीकरण (4) के $\delta_{\mu\alpha}$ का डिटर्मिनेन्ट बनायें तो डिटर्मिनेन्टों के गुणन के प्रमेयानुसार

$$1 = |\delta_{\alpha\beta}| = |\textstyle\sum_v b_{v\alpha} b_{v\beta}| = |b_{\mu v}|^2$$

$$\text{अर्थात्}\ |b_{\mu v}| = \pm 1$$

यदि हम अपने परिकलन को उन्हीं रूपान्तरणों तक सीमित रखें जिनके डिटर्मि-

नेन्ट + 1 * के बराबर होते हैं (और निर्देशांक-तंत्रों के संतत परिणमनों से केवल यही प्राप्त हो सकते हैं) तो V **निश्चर** रहेगा।

किन्तु केवल **निश्चर** ही ऐसे रूप नहीं हैं जिनके द्वारा हम किसी विशिष्ट वरण से कार्तीय निर्देशांकों की स्वतंत्रता को व्यक्त कर सकते हैं। सदिश (vectors) तथा प्रदिश अथवा टेन्सर (Tensors) भी इस कार्य के लिए उपयोगी अन्य रूप हैं। मान लीजिए कि हम इस बात को व्यक्त करना चाहते हैं कि चर निर्देशांक x_ν वाला बिन्दु सरल रेखा पर विचरण करता है। यहाँ—

$$x_\nu - A_\nu = \lambda B_\nu \quad (\nu = 1, 2, 3)$$

व्यापकता को सीमित किये बिना ही हम लिख सकते हैं कि—

$$\sum B^2_\nu = 1$$

यदि हम इन समीकरणों को $b_{\beta\nu}$ से गुणा करके ν के समस्त मानों के लिए जोड़ दें (समीकरण ($3a$) और (5) से तुलना कीजिए), तो हमें यह प्राप्त हो जायगा कि—

$$x'_\beta - A'_\beta = \lambda B'_\beta$$

जहाँ हमने संक्षेप के लिए

$$B'_\beta = \sum_\nu b_{\beta\nu} B_\nu \quad \text{तथा} \quad A'_\beta = \sum_\nu b_{\beta\nu} A_\nu$$

लिख दिया है।

ये समीकरण द्वितीय कार्तीय निर्देशांक-तंत्र K′ में सरल रेखाओं के समीकरण हैं। इनका रूप वही है जो प्रथम निर्देशांक-तंत्र K के समीकरणों का था। अतः यह स्पष्ट है कि सरल रेखाओं की अभिव्यक्ति निर्देशांक-तंत्र से स्वतंत्र होती है। औपचारिक रीति से यह इस तथ्य पर आश्रित है कि $(x_\nu - A_\nu) - \lambda B_\nu$ ऐसी राशियाँ हैं जो अन्तराल Δx_ν के घटकों (component) का रूप ले लेती हैं। प्रत्येक निर्देशांक-तंत्र के लिए निर्दिष्ट एवं अन्तराल के घटकों में रूपान्तरित होनेवाली तीनों राशियों की समष्टि "सदिश" (vector) कहलाती है। यदि किसी सदिश के

*इस प्रकार कार्तीय निर्देशांक तंत्र दो प्रकार के होते हैं जिन्हें दक्षिण-हस्त (Right-handed) तथा वाम-हस्त (left-handed) तंत्र कहते हैं। इनमें क्या भेद होता है यह प्रत्येक भौतिकज्ञ को तथा प्रत्येक इंजीनियर को ज्ञात है। यह बात बड़ी रोचक है कि ज्यामिति के द्वारा इन दोनों क्रमों की परिभाषा नहीं दी जा सकती। केवल उनके गुणों की विपरीतता ही प्रदर्शित हो सकती है।

तीनों घटक किसी एक कार्तीय निर्देशांक-तंत्र में शून्य के बराबर हो जायँ तो वे सभी अन्य कार्तीय निर्देशांक-तंत्रों में भी शून्य हो जायेंगे क्योंकि उपर्युक्त रूपान्तर-समीकरण समघाती (homogenous) हैं। इस प्रकार सदिश की धारणा का अर्थ ज्यामितितीय निरूपण के बिना ही हम समझ सकते हैं। सरल रेखा के समीकरणों का यह गुण यह कहकर व्यक्त किया जा सकता है कि सरलरेखा के समीकरण एक-घात लम्बकोण रूपान्तरण के प्रति सहचर (co–variant) होते हैं।

अब हम संक्षेप में यह दिखायेंगे कि कुछ ऐसी भी ज्यामितीय सत्ताएं होती हैं जिनसे टेन्सरों (Tensors) की धारणाओं का जन्म हुआ है। मान लीजिए कि प० किसी द्विघाती पृष्ठ (surface of second degree) का केन्द्र है, प उस पृष्ठ पर कोई बिन्दु है और निर्देशाक्षों पर अन्तराल प० प के प्रक्षेप (projection) ξ_ν हैं। तब उस पृष्ठ का समीकरण होगा—

$$\Sigma a_{\mu\nu} \xi_\mu \xi_\nu = 1$$

आगे से इसमें और इसी प्रकार के अन्य समीकरणों में हम संकलन (summation) का चिन्ह Σ नहीं लिखेंगे, किन्तु यह ध्यान में रखना होगा कि जो दो संकेतांक (index) इस में लिखे गये हैं उन दोनों के सब मानों के लिए संकलन करना होगा। अतः उस पृष्ठ का समीकरण लिखा जायगा—

$$a_{\mu\nu} \xi_\mu \xi_\nu = 1$$

किसी भी कार्तीय निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा केन्द्र के निर्दिष्ट स्थान के लिए ये राशियां $a_{\mu\nu}$ उस पृष्ठ को पूर्णतः निर्णीत कर देती हैं। ξ_ν के एक घात लम्बकोण रूपान्तरण के ज्ञात नियम (3a) से हम $a_{\mu\nu}$ के लिए जो रूपान्तर-नियम प्राप्त करेंगे वे होंगे *

$$a'_{\sigma\tau} = b_{\sigma\mu} \, b_{\tau\nu} \, a_{\mu\nu}$$

यह रूपान्तरण समघाती है और $a_{\mu\nu}$ के लिए एकघाती है। इस रूपान्तरण के कारण $a_{\mu\nu}$ द्वितीय कोटि (rank) के टेन्सर (Tensor) के घटक कहलाते हैं।

* समीकरण $a'_{\sigma\tau} \xi'_\sigma \xi'_\tau = 1$ के स्थान में (५) के अनुसार हम लिख सकते हैं $a'_{\sigma\tau} b_{\mu\sigma} b_{\nu\tau} \xi_\sigma \xi_\tau = 1$ और इससे उपर्युक्त फल तुरन्त प्राप्त हो जायगा।

द्वितीय कोटि के इसलिए कि उसमें संकेतांक दो हैं। यदि किसी टेन्सर के समस्त घटक किसी एक कार्तीय निर्देशांकतंत्र की अपेक्षा शून्य मान के हों तो वे अन्य किसी भी कार्तीय निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा भी शून्य मान के होंगे। उस द्विघाती-पृष्ठ का रूप और स्थान इस टेन्सर (a) के द्वारा व्यक्त हो जाते हैं।

उच्चतर कोटि के टेन्सरों में संकेतांकों की संख्या दो से अधिक होती है। उनकी परिभाषा वैश्लेषिक रीति से दी जा सकती है। सदिशों को प्रथम कोटि के टेन्सर तथा निश्चरों (invariants) अथवा अदिशों (scalars) को शून्यकोटि के टेन्सर समझना संभव भी है और लाभदायक भी है। इस दृष्टि-कोण से, निश्चरों के सिद्धान्त की समस्या यों प्रस्तुत की जा सकती है। दिये हुए टेन्सरों से नवीन टेन्सरों का निर्माण किन नियमों के अनुसार किया जा सकता है? अब हम इन नियमों पर विचार करेंगे क्योंकि आगे चलकर हमें उनका उपयोग करना है। सबसे पहले हम टेन्सरों के केवल उन्हीं गुणों का विवेचन करेंगे जिनका सम्बंध एक ही निर्देशाकाश के एक कार्तीय-तंत्र से दूसरे में एकघात लम्बकोणीय रूपान्तरण से है। और इस विवेचन में अभी हम विमितियों (dimensions) की संख्या n को अनिश्चित ही रखेंगे क्योंकि ये नियम इस संख्या पर आश्रित नहीं हैं।

परिभाषा—यदि किसी n–विमितीय निर्देशाकाश के प्रत्येक कार्तीय निर्देशांक-तंत्र में कोई वस्तु $A_{\mu\nu\rho}\ldots$ आदि n^{α} संख्याओं के द्वारा निर्दिष्ट होती हो (जहां α=संकेतांकों की संख्या है) तो ये संख्याएं α-वीं कोटि के टेन्सर के घटक होंगे यदि रूपान्तरण नियम निम्नलिखित हो—

$$A'_{\mu'\nu'\rho'}\ldots\ldots = b_{\mu'\mu} b_{\nu'\nu} b_{\rho'\rho}\ldots A_{\mu\nu\rho} \quad \ldots(7)$$

टिप्पणी—इस परिभाषा से यह परिणाम निकलता है कि -

$$A_{\mu\nu\rho}\ldots\ldots B_{\mu} C_{\nu} D_{\rho}\ldots\ldots(8)$$

निश्चर होगा, यदि (B), (C), (D).....सदिश हों। विलोमतः यदि यह ज्ञात हो कि (B), (C) आदि मनमाने सदिशों के लिए व्यंजक (expression) (8) निश्चर हो जाता है तो हम यह अनुमान कर सकते हैं कि (A) में टेन्सर के गुण विद्यमान हैं।

संकलन (addition) **और व्यवकलन** (subtraction)—एक ही कोटि के टेन्सरों के अनुरूप (corresponding) घटकों को जोड़ने, या घटाने से उसी कोटि का एक नवीन टेन्सर प्राप्त होता है—

$$A_{\mu\nu\rho}\cdots\cdots \pm B_{\mu\nu\rho}\cdots\cdots = C_{\mu\nu\rho}\cdots\cdots \quad (9)$$

इसका प्रमाण टेन्सर की ऊपर दी हुई परिभाषा से मिल जाता है।

गुणन α—वीं कोटि के एक टेन्सर के समस्त घटकों को β—वीं कोटि के दूसरे टेन्सर के समस्त घटकों को गुणा करने से एक नवीन टेन्सर $(\alpha+\beta)$—वीं कोटि का प्राप्त होता है—

$$A_{\mu\nu\rho}\cdots\cdots \times B_{\alpha\beta\nu}\cdots\cdots = T_{\mu\nu\rho}\cdots\cdots{}_{\alpha\beta\gamma}\cdots\cdots \quad (10)$$

आकुंचन (Contraction)—किसी α—वीं कोटि के टेन्सर में यदि दो संकेतांक बराबर हो जायँ, तो इस एक ही संकेतांक के लिए संकलन करने से $(\alpha-2)$—वीं कोटि का टेन्सर प्राप्त हो जाता है—

$$A_{\mu\nu\rho}\cdots\cdots\left(=\sum_{\mu} A_{\mu\mu\rho}\cdots\cdots\right) = T_{\rho}\cdots\cdots \quad (11)$$

इसका प्रमाण यह है—

$$A'_{\mu\mu\rho}\cdots\cdots = b_{\mu\alpha}\, b_{\mu\beta}\, b_{\rho\gamma}\cdots\cdots A_{\alpha\beta\gamma}\cdots\cdots$$
$$= \delta_{\alpha\beta}\, b_{\rho\gamma}\cdots\cdots A_{\alpha\beta\gamma}\cdots\cdots \quad b_{\rho\gamma}\cdots\cdots A_{\alpha\alpha\gamma}\cdots\cdots$$

गणित की मूलक्रियाओं के इन नियमों के अतिरिक्त अवकलन (differentiation) के द्वारा भी टेन्सरों का निर्माण हो जाता है—

$$\frac{\partial}{\partial x_{\alpha}}\left(A_{\mu\nu\rho}\cdots\cdots\right) = T_{\mu\nu\rho}\cdots\cdots{}_{\alpha}\cdots\cdots \quad (12)$$

इन सब नियमों के अनुसार क्रिया कर के किसी भी टेन्सर से एक-घात लम्बकोणिक रूपान्तरण जात-नवीन टेन्सर बनाये जा सकते हैं।

टेंसरों के संमितीय गुण (Symmetry properties)—जिस टेन्सर में दो संकेतांकों (μ,ν) के पारस्परिक प्रतिस्थापन से प्राप्त घटक बराबर हों वह μ,ν की अपेक्षा संमित (Symmetrical) कहलाता है। जिसमें ऐसे घटक बराबर, किन्तु विपरीत चिह्नीय हों वह विषय संमित (Skew-symmetrical) कहलाता है—

संमिति का प्रतिबंध : $A_{\mu\nu\rho} = A_{\nu\mu\rho}$

विषम संमिति का प्रतिबंध : $A_{\mu\nu\rho} = -A_{\nu\mu\rho}$

प्रमेय—संमिति और विषय संमिति के लक्षण निर्देशांकों के वरण पर आश्रित नहीं होते और यही इन लक्षणों के महत्त्व का कारण है। इस बात का प्रमाण टेन्सरों की परिभाषा से ही प्राप्त हो जाता है।

विशिष्ट टेन्सर (Special Tensors)—(I) समीकरण (4) की राशियां $\delta_{\rho\sigma}$ भी टेन्सर-घटक होती हैं (मौलिक टेन्सर)।

प्रमाण—यदि रूपान्तर समीकरण $A'_{\mu\nu} = b_{\mu\alpha} b_{\nu\beta} A_{\alpha\beta}$ के दक्षिण पक्ष में $A_{\alpha\beta}$ के स्थान में $\delta_{\alpha\beta}$ प्रतिस्थापित कर दिया जाय (जिसका मान $\alpha = \beta$ होने पर 1 और $\alpha \neq \beta$ होने पर 0 होता है) तो

$$A'_{\mu\nu} = b_{\mu\alpha} b_{\nu\alpha} = \delta_{\mu\nu}$$

यदि समी० (4) में प्रतिलोम (inverse) प्रति स्थापन (5) का उपयोग किया जाय तो अंतिम समीकरण का समर्थन स्पष्टतः प्रगट हो जायगा।

(2) एक टेन्सर $\delta_{\mu\nu\rho}\ldots$ ऐसा होता है जो समस्त संकेतांक-युग्मों की अपेक्षा विषम-संमित होता है, जिसकी कोटि विमितियों की संख्या n के बराबर होती है और यदि $\mu\nu\rho\ldots 123\ldots$ का सम (even) अथवा विषम (odd) क्रमचय (permutation) हो तो इसके घटक क्रमशः $+1$ या -1 के बराबर होते हैं। इसको ऊपर प्रमाणित प्रमेय $|b_{\rho\sigma} = 1|$ (समी० 6) के द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है।

निश्चरों के सिद्धान्त की प्रक्रियाओं के इन थोड़े-से सरल प्रमेयों में आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी के तथा विशिष्ट आपेक्षिकता सिद्धान्त के समीकरणों का निर्माण करने के लिए यथेष्ट सामग्री है।

हम देख चुके हैं कि आकाशीय सम्बंधों को निर्दिष्ट करने के लिए आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी में एक निर्देशवस्तु या एक निर्देशाकाश की आवश्यकता होती है और इसके अतिरिक्त एक कार्तीय निर्देशांक-तंत्र की भी आवश्यकता होती है। इन दोनों धारणाओं का समन्वय करके हम ऐसी धारणा बना सकते हैं कि कार्तीय निर्देशांक-तंत्र एक-एक मात्रक लम्बाई की छड़ों से निर्मित घनाकार जाल होता है। और इस जाल (Frame work) के जाल-बिन्दुओं (lattice-points) अर्थात् प्रत्येक विभाग के कोण-बिन्दुओं के निर्देशांक पूर्णांक होते हैं। तब मौलिक अनुबंध

$$S^2 = \Delta x_1^2 + \Delta x_2^2 + \Delta x_3^2 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (13)$$

से यह परिणाम निकलता है कि ऐसे दिक्-जाल (space-lattice) के प्रत्येक विभाग या कोष (cell) की लम्बाई एक मात्रक के बराबर होगी। इसके अतिरिक्त काल का सम्बंध प्रगट करने के लिए एक मानक घड़ी (standard clock) की भी आवश्यकता होती है जिसे हम कार्तीय निर्देशांक-तंत्र या निर्देश-जाल के मूलबिन्दु (origin) पर रखी हुई

मान सकते हैं। यदि किसी भी स्थान पर कोई घटना घटे तो हम उस घटना के लिए तीन निर्देशांक x_v और एक समय t नियत कर सकते हैं। यदि हमें मूल-बिन्दु पर रखी हुई घड़ी का वह समय ज्ञात हो जाय जो उक्त घटना का समक्षणिक (simultaneous) हो। इस प्रकार हम दूरवर्ती घटनाओं की समक्षणिकता के विवरण में वस्तुनिष्ठ अभि-व्यक्ति (objective significance) की परिकल्पना बना लेते हैं यद्यपि अब तक हमारा काम केवल एक ही व्यक्ति के दो अनुभवों की समक्षणिकता से पड़ा था। जो भी हो, इस प्रकार निर्णीत समय निर्देशाकाश में निर्देशांक-तंत्र की अवस्थिति (position) पर आश्रित नहीं है और इसलिए वह रूपान्तरण-समीकरण (3) की अपेक्षा निश्चर है।

यह मान लिया गया है कि आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी के नियमों को व्यक्त करने-वाला समीकरण-संघ भी यूक्लिडीय ज्यामिति के अनुबंधों के समान ही रूपान्तरण (3) के प्रति सहचर (co-variant) है। इससे आकाश की समदिक्ता (isotropy) तथा समांगिता प्रगट होती है।*

इस दृष्टि-कोण से अब हम भौतिकी के कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण समीकरणों पर विचार करेंगे।

किसी द्रव्य-कण की गति के समीकरण हैं—

$$m\frac{d^2x_v}{dt^2} = X_v \quad \cdots \quad (14)$$

यहाँ (dx_v) तो सदिश हैं और dt तथा $\frac{1}{dt}$ निश्चर हैं। अतः $\left(\frac{dx_v}{dt}\right)$ भी सदिश हैं। ऐसे ही यह भी प्रमाणित हो सकता है कि $\left(\frac{d^2x_v}{dt^2}\right)$ भी सदिश हैं। साधा-

* यदि आकाश में कोई वरिष्ठ (preferred) दिशा होती तो भी भौतिकी के नियम इस प्रकार व्यक्त किये जा सकते थे कि वे रूपान्तरण (3) के प्रति सहचर रहते। किन्तु इस परिस्थिति में ऐसा व्यक्तीकरण अनुचित होगा। यदि आकाश में कोई वरिष्ठ दिशा होती तो निर्देशांक-तंत्र को उस दिशा की अपेक्षा किसी निश्चित रीति से अनुस्थापित कर देने से प्राकृतिक घटनाओं का विवरण सरल हो जाता। विपरीत इसके यदि आकाश में कोई वरिष्ठ अथवा अनन्य (unique) दिशा नहीं है तो यह तर्क संगत नहीं होगा कि प्रकृति के नियम इस प्रकार व्यक्त किये जायं कि विभिन्न प्रकार से अनुस्थापित निर्देशांक-तत्रों की तुल्यता गुप्त रह जाय। विशिष्ट तथा व्यापक आपेक्षिकता के सिद्धान्तों में इस दृष्टि-कोण से हमारा साक्षात् फिर होगा।

रणतः काल-सापेक्ष अवकलन की क्रिया से टेन्सरीय लक्षण में कोई परिवर्तन नहीं होता। m के निश्चर (शून्य-कोटि के टेन्सर) होने के कारण, $\left(m\frac{d^2x_\nu}{dt^2}\right)$ सदिश अथवा प्रथम कोटि का टेन्सर होगा (टेन्सरों के गुणन के प्रमेयानुसार)। यदि बल (X_ν) में भी सदिश के लक्षण हों तो यही बात व्यवकलन $\left(m\frac{d^2x_\nu}{dt^2}-X_\nu\right)$ के लिए भी सही होगी। अतः गति के ये समीकरण निर्देशाकाश के अन्य किसी भी निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा भी मान्य हैं। जब बल संरक्षी (conservative) हों तब तो (X_ν) में सदिशता का लक्षण बिना कठिनाई के पहचाना जा सकता है क्योंकि उस दशा में स्थितिज ऊर्जा ϕ का अस्तित्व होता है और यह केवल कणों की पारस्परिक दूरियों पर आश्रित होने के कारण निश्चर होती है। बल $X_\nu = -\frac{d\phi}{dx_\nu}$ में सदिशता का गुण शून्य कोटि के टेन्सर के अवकलज अथवा व्युत्पन्न (derivative) सम्बंधी हमारे व्यापक प्रमेय का परिणाम है।

समी० (14) को प्रथम कोटि के टेन्सर 'वेग' (velocity) से गुणा करने पर यह टेन्सर समीकरण प्राप्त होता है—

$$\left(m\frac{d^2x_\nu}{dt^2} - X_\nu\right)\frac{dx_\mu}{dt} = 0$$

आकुंचन करके अदिश dt से गुणा करने पर हमें गतिज ऊर्जा का समीकरण मिल जाता है—

$$d\left(\frac{mq^2}{2}\right)X_\nu\, dx_\nu$$

यदि आकाश में उस द्रव्यकण के तथा एक अचल बिन्दु के निर्देशांकों का अन्तर ξ_ν के द्वारा व्यक्त किया जाय तो ξ_ν सदिश लक्षणवाले होंगे। और स्पष्टतः $\frac{d^2x_\nu}{dt^2} = \frac{d^2\xi_\nu}{dt^2}$ तो होता ही है। अतः गति के समीकरण इस प्रकार लिखे जा सकते हैं—

$$m \frac{d^2\xi_\nu}{dt^2} - X_\nu = 0$$

इस समीकरण को $\xi\mu$ से गुणा करने पर यह टेन्सर समीकरण प्राप्त होता है।

$$\left(m \frac{d^2\xi_\nu}{dt^2} - X_\nu\right) \xi_\mu = 0$$

वाम पक्ष के टेन्सर का आकुंचन करके और काल की अपेक्षा औसत मान निकालने पर हमें वीरियल प्रमेय (virial theorem) प्राप्त हो जाता है। किन्तु उसके विषय में हम और अधिक विचार नहीं करेंगे। संकेतांकों का पारस्परिक विनिमय (interchange) करने के बाद घटाने से और तब सरल-सा रूपान्तर करने से हमें घूर्णों का प्रमेय (theorem of moments) प्राप्त होता है—

$$\frac{d}{dt}\left[m\left(\xi_\mu \frac{d\xi\nu}{dt} - \xi_\nu \frac{d\xi\mu}{dt}\right)\right] = \xi_\mu X_\nu - \xi_\nu X_\mu \quad . \quad . \quad (15)$$

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सदिश का घर्ण सदिश नहीं होता, किन्तु टेन्सर होता है। विषम-संमिति के कारण इस संघ में ९ के स्थान में केवल ३ ही स्वतंत्र समीकरण होते हैं।

त्रि-विमितीय आकाश में द्वितीय कोटि के विषम-संमित टेन्सरों के स्थान में सदिश प्राप्त करने की संभावना सदिश

$$A_\mu = \tfrac{1}{2} A_{\sigma T} \delta_{\sigma T \mu}$$

के निर्माण पर निर्भर है।

यदि हम द्वितीय कोटि के विषम-संमित टेन्सर को ऊपर बताये हुए विषम-संमित विशिष्ट टेन्सर δ से गुणा करें और दो बार आकुंचन करें तो ऐसा सदिश प्राप्त हो जाता है जिसके घटकों के संख्यात्मक मान उसी टेन्सर के घटकों के मानों के बराबर होते हैं। ये तथाकथित अक्षीय सदिश (axial vector) हैं और इनका रूपान्तरण $\triangle X_\nu$ के रूपान्तरण से भिन्न प्रकार का होता है। ये दक्षिण-हस्त संघ से वाम-हस्त संघ में रूपान्तरित हो जाते हैं। द्वितीय कोटि के विषम-संमित टेन्सर को त्रि-विमितीय आकाश का सदिश समझने में उसके स्वरूप को मूर्त करने का लाभ तो अवश्य है, किन्तु ऐसा करने से निर्दिष्ट राशि का यथातथ स्वरूप इतना स्पष्ट नहीं होता जितना उसे टेन्सर समझने से होता है।

इसके बाद हम एक संतत माध्यम (continuous medium) के गति-समीकरणों पर विचार करेंगे। मान लीजिए कि घनत्व ρ है, निर्देशांकों तथा समय के फलनों के रूप में वेग के घटक u_ν हैं, आयतन-बल प्रति मात्रक द्रव्यमान X_ν हैं और जिस पृष्ठ पर σ–अक्ष अभिलम्बित है उस पर वर्धमान x_ν की दिशा में प्रतिबल (stresses) $p_{\nu\sigma}$ हैं। तब न्यूटन के नियमानुसार गति के समीकरण होंगे—

$$\rho \frac{du_\nu}{dt} = -\frac{\partial p_{\nu\sigma}}{\partial x_\sigma} + \rho X_\nu$$

इनमें $\frac{du_\nu}{dt}$ उस कण के त्वरण हैं जिसके निर्देशांक समय t पर x_ν हों। यदि इस त्वरण को हम आंशिक अवकल-गुणांकों के द्वारा व्यक्त करें तो ρ से भाग देने पर यह समीकरण प्राप्त होगा—

$$\frac{\partial u_\nu}{\partial t} + \frac{\partial u_\nu}{\partial x_\sigma} u_\sigma = -\frac{1}{\rho} \frac{\partial p_{\nu\sigma}}{\partial x_\sigma} + X_\nu \quad \dots \dots \dots (16)$$

अब हमें यह दिखाना है कि इस समीकरण की सत्यता कार्तीय निर्देशांक-तंत्र के किसी विशिष्ट वरण पर आश्रित नहीं है। (u_ν) सदिश है। अतः $\frac{\partial u_\nu}{\partial t}$ भी सदिश है। $\frac{\partial u_\nu}{\partial x_\sigma}$ द्वितीय कोटि का टेन्सर है और $\frac{\partial u_\nu}{\partial x_\sigma} u_\sigma$ तृतीय कोटि का टेन्सर है। वामपक्ष का द्वितीय पद संकेतांक σ, τ में आकुंचन करने से प्राप्त होता है। दक्षिण पक्ष के द्वितीय पद का सदिश लक्षण तो स्पष्ट ही है। दक्षिण पक्ष के प्रथम पद को भी सदिश बनाने के लिए यह आवश्यक है कि $p_{\nu\sigma}$ टेन्सर हो और तब अवकलन और आकुंचन से जो $\frac{\partial p_{\nu\sigma}}{\partial x_\sigma}$ प्राप्त होता है वह सदिश होता है। इसे व्युत्क्रम अदिश $\frac{1}{\rho}$ से गुणा करने पर भी वह सदिश ही रहता है। $p_{\nu\sigma}$ टेन्सर है और इस कारण वह समीकरण

$$p'_{\mu\nu} = b_{\mu\alpha} b_{\nu\beta} p_{\alpha\beta}$$

के द्वारा रूपान्तरित होता है। इस बात को यांत्रिकी में किसी अनन्त सूक्ष्म चतुष्फलक (tetrahedron) पर इस समीकरण का अनुकलन करके प्रमाणित किया गया है। वहीं किसी अनन्त सूक्ष्म समान्तर फलकी (parallelopipedon) पर घूर्णों के प्रमेय का उपयोग करके यह भी प्रमाणित किया गया है कि $p_{\nu\sigma}=p_{\sigma\nu}$ और इसलिए प्रतिबल का टेन्सर संमित होता है। अब तक जो कुछ कहा गया है उससे यह परिणाम निकलता है कि ऊपर बताये हुए नियमों के अनुसार यह समीकरण आकाश में लम्ब-कोणिक रूपान्तरणों के प्रति सहचर है (घूर्णनिक रूपान्तरण)। और इस समीकरण को सहचर बनाने के लिए जिन नियमों के अनुसार रूपान्तरण होना चाहिए वे भी स्पष्ट हो जाते हैं।

सांतत्य-समीकरण (equation of continuity)

$$\frac{d\rho}{dt}+\frac{d(\rho u_{\nu})}{dx_{\nu}}=0 \quad \dots \dots \dots \dots \dots \dots \dots \quad (17)$$

के सहचरत्व सम्बंधी विवेचन की उपर्युक्त कथन के बाद कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

जो समीकरण द्रव्य के गुणों पर प्रतिबल के घटकों का आश्रयत्व व्यक्त करते हैं उनके सहचरत्व की भी हम परीक्षा करेंगे और सहचरत्व के प्रतिबंधों की सहायता से संपीड्य (compressible) तथा श्यान (viscous) तरल पदार्थ (fluid) के लिए ऐसे समीकरणों का निर्माण करेंगे। यदि हम श्यानता को उपेक्षणीय समझ लें तो दाब (pressure) अदिश होगा और वह केवल तरल के घनत्व तथा टेम्परेचर पर ही अवलंबित होगा। अतः प्रतिबल-टेन्सर में उसका अंशदान स्पष्टतः

$$p\delta_{\mu\nu}$$

होगा जिसमें $\delta_{\mu\nu}$ विशिष्ट संमित टेन्सर है। श्यान तरल के लिए भी यह पद विद्यमान रहेगा, किन्तु ऐसी दशा में कुछ दाबमूलक पद भी उपस्थित रहेंगे और ये u_{ν} के आकाशिक व्युत्पन्नों पर आश्रित होंगे। हम यह मान लेंगे कि यह आश्रय रैखिक अथवा एकघाती है। ये पद अवश्य ही संमित टेन्सर होंगे। अतः समीकरण में निविष्ट पद केवल

$$\alpha\left(\frac{\partial u_{\mu}}{\partial x_{\nu}}+\frac{\partial u_{\nu}}{\partial x_{\mu}}\right)+\beta\,\delta_{\mu\nu}\,\frac{\partial u_{\alpha}}{\partial x_{\alpha}}$$

ही रहेंगे क्योंकि $\frac{\partial u_\alpha}{\partial x_\alpha}$ अदिश है। भौतिक कारणों से (अर्थात् स्खलन, slipping के अभाव में) यह मान लिया गया है कि सब दिशाओं में संमित प्रसारों के लिए अर्थात् जब

$$\frac{\partial u_1}{\partial x_1}=\frac{\partial u_2}{\partial x_2}=\frac{\partial u_3}{\partial x_3} \text{ तथा } \frac{\partial u_1}{\partial x_2} \text{ इत्यादि} = 0$$

हों तब कोई घर्षण-बल (frictional force) विद्यमान नहीं रहता। इससे यह परिणाम निकल आता है कि $\beta = -\frac{2}{3}\alpha$। यदि केवल $\frac{\partial u_1}{\partial x_3}$ का मान ही शून्य से भिन्न हो तो मान लो कि $p_{31} = -\eta\frac{\partial u_1}{\partial x_3}$ और इससे α निर्णीत हो जायगा। तब संपूर्ण प्रतिबल-टेन्सर हो जायगा।

$$p_{\mu\nu} = p\cdot\delta_{\mu\nu} - \eta\left[\left(\frac{\partial u_\mu}{\partial x_\nu} - \frac{\partial u_\nu}{\partial x_\mu}\right) - \frac{2}{3}\left(\frac{\partial u_1}{\partial x_1}+\frac{\partial u_2}{\partial x_2}+\frac{\partial u_3}{\partial x_3}\right)\delta_{\mu\nu}\right] \quad \ldots\ldots (18)$$

आकाश की समदिक्ता (अर्थात् समस्त दिशाओं की एकसमानता) से निश्चरों के जिस सिद्धान्त का उद्भव होता है उसका अनुसंधान कार्य के लिए क्या महत्त्व है यह इस उदाहरण के द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

अन्त में हम मैक्सवैल (Maxwell) के समीकरणों के उस रूप पर विचार करेंगे जिसकी भित्ति पर लोरेन्ट्ज़ (Lorentz) के इलैक्ट्रान-सिद्धान्त की स्थापना हुई है।

$$\left.\begin{aligned}
\frac{\partial h_3}{\partial x_2} - \frac{\partial h_2}{\partial x_3} &= \frac{1}{c}\frac{\partial e_1}{\partial t} + \frac{1}{c} i_1 \\
\frac{\partial h_1}{\partial x_3} - \frac{\partial h_3}{\partial x_1} &= \frac{1}{c}\frac{\partial e_2}{\partial t} + \frac{1}{c} i_2 \\
\cdots\cdots & \cdots\cdots \\
\frac{\partial e_1}{\partial x_1} + \frac{\partial e_2}{\partial x_2} + \frac{\partial e_3}{\partial x_3} &= \rho
\end{aligned}\right\} \quad \ldots\ldots (19)$$

$$\left.\begin{aligned} \frac{\partial e_3}{\partial x_2} + \frac{\partial e_2}{\partial x_3} &= -\frac{1}{c}\frac{\partial h_1}{\partial t} \\ \frac{\partial e_1}{\partial x_3} - \frac{\partial e_3}{\partial x_1} &= -\frac{1}{c}\frac{\partial h_2}{\partial t} \\ \cdots\cdots\cdots \\ \frac{\partial h_1}{\partial x_1} + \frac{\partial h_2}{\partial x_2} + \frac{\partial h_3}{\partial x_3} &= 0 \end{aligned}\right\} \cdots\cdots\cdots \quad (20)$$

यहाँ $\underline{i}$ सदिश है क्योंकि परिभाषा के अनुसार विद्युत् के घनत्व को विद्युत् के सदिश वेग से गुणा करने से धारा-घनत्व $\underline{i}$ प्राप्त होता है। प्रथम तीन समीकरणों से स्पष्ट हो जाता है कि $\underline{e}$ को भी सदिश समझना होगा। किन्तु तब h सदिश नहीं समझा सकता। * किन्तु यदि हम $\underline{h}$ को द्वितीय कोटि का संमित टेन्सर मान लें तो इन समीकरणों का अर्थ आसानी से समझ में आ सकता है। अतः हम h_1, h_2, h_3 के स्थान में क्रमशः h_{23}, h_{31}, h_{12} लिख देंगे। $h_{\mu\nu}$ टेन्सर की विषम-संमिति को ध्यान में रखकर (19) तथा (20) के प्रथम तीन समीकरणों को यह रूप दिया जा सकता है—

$$\frac{\partial h_{\mu\nu}}{\partial x_\nu} = \frac{1}{c}\frac{\partial e_\mu}{\partial t} + \frac{1}{c} i_\mu \quad \cdots\cdots\cdots \quad (19a)$$

$$\frac{\partial e_\mu}{\partial x_\nu} - \frac{\partial e_\nu}{\partial x_\mu} = +\frac{1}{c}\frac{\partial h_{\mu\nu}}{\partial t} \quad \cdots\cdots\cdots \quad (20a)$$

$\underline{e}$ से तुलना करने पर $\underline{h}$ में यह विसदृशता दिखाई देती है कि उसमें संमिति उसी प्रकार की है जैसी कि कोणीय वेग में होती है। अब अपसरण-समीकरणों (divergence equations) का रूप यह हो जायगा—

$$\frac{\partial e_\nu}{\partial x_\nu} = \rho \quad \cdots\cdots\cdots \quad (19b)$$

* इस प्रकार के विवेचन के द्वारा पाठक टेन्सरीय प्रक्रियाओं से परिचित हो सकेंगे और इसके लिए उन्हें चतुर्विमितीय प्रतिपादन की कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा और तब विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त के ऐसे ही विवेचन में क्षेत्र के मिनकाउस्की (Minkowski) प्रणीत निर्वचन में भी कठिनाई बहुत कम मालूम पड़ेगी।

$$\frac{\partial h_{\mu\nu}}{\partial x_{\rho}} + \frac{\partial h_{\nu\rho}}{\partial x_{\mu}} + \frac{\partial h_{\rho\mu}}{\partial x_{\nu}} = 0 \quad \ldots\ldots\ldots, \ldots\ldots \quad (20b)$$

अंतिम समीकरण तृतीय कोटि का विषम-संमित टेन्सर-समीकरण हैं। $h_{\mu\nu}$ की विषम-संमिति पर ध्यान देने से प्रत्येक संकेतांक-युग्म के लिए इस समीकरण के वामपक्ष की विषम-संमिति आसानी से प्रमाणित हो सकती है। यह संकेतन पद्धति (notation) अधिक स्वाभाविक है और प्रचलित पद्धति की तुलना में इसमें विसदृशता यह है कि चिह्न-परिवर्तन के बिना ही दक्षिण-हस्त तथा वाम-हस्त दोनों ही प्रकार के कार्तीय तंत्रों में इसका उपयोग हो सकता है।

द्वितीय अध्याय

विशिष्ट आपेक्षिकता का सिद्धान्त

(The Theory of Special Relativity)

परिदृढ वस्तुओं की संस्थिति (configuration) सम्बंधी पूर्वोक्त विवेचन इस परिकल्पना पर आश्रित है कि चाहे यूक्लिडीय ज्यामिति सत्य हो या न हो, आकाश की सभी दिशाएँ और कार्तीय निर्देशांक-तंत्र की समस्त संस्थितियाँ भौतिकीय दृष्टि से तुल्यरूपी (equivalent) हैं। हम इसे "दिशा सम्बंधी आपेक्षिकता का नियम" कह सकते हैं और यह बताया जा चुका है कि इस नियम के द्वारा टेन्सर-कलन (calculus of tensors) की सहायता से प्राकृतिक नियमों के समीकरण किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं। अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि निर्देशाकाश की गति की अपेक्षा भी कोई आपेक्षिकता होती है या नहीं अर्थात् क्या कोई निर्देशाकाश ऐसे भी होते हैं जो एक दूसरे की अपेक्षा गतिमान् होने पर भी भौतिकीय दृष्टि से तुल्यरूपी हों। यांत्रिकी दृष्टि से तो ऐसा मालूम होता है कि तुल्य-रूपी निर्देशाकाशों का अस्तित्व है, क्योंकि पृथ्वी पर किये गये प्रयोगों के द्वारा इस बात का ज़रा भी पता नहीं चलता कि हम लगभग 30 किलोमीटर प्रति सेकंड के वेग से सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं। किन्तु दूसरी ओर, यह भौतिक तुल्यरूपिता निर्देशाकाशों की मनमानी (arbitrary) गति के लिए सत्य नहीं जान पड़ती क्योंकि एकसमान वेग से चलनेवाली रेलगाड़ी में यांत्रिक घटनाओं पर जो नियम लागू होते हैं वे झटकों (jolts) के साथ (असमान वेग) से चलनेवाली रेलगाड़ी की घटनाओं पर लागू नहीं होते। पृथ्वी-सापेक्ष गति-समीकरणों के लिखते समय पृथ्वी के घूर्णन का ध्यान रखना ज़रूरी है। अतः ऐसा मालूम होता है कि कुछ कार्तीय निर्देशांक-तंत्र (तथाकथित अवस्थितित्वीय तंत्र inertial systems) ऐसे होते हैं जिनकी अपेक्षा यांत्रिकी के नियम (अधिक व्यापक दृष्टि से भौतिकी के नियम) सरलतम रूप

में व्यक्त किये जा सकते हैं। हम निम्नलिखित प्रमेय की सत्यता की संकल्पना कर सकते हैं। यदि K कोई अवस्थितित्वीय तंत्र हो तो K की अपेक्षा एकसमान (Uniform) वेगवाली घूर्णनहीन गति से चलनेवाला कोई अन्य तंत्र K′ भी अवस्थितित्वीय तंत्र होगा और प्रकृति के नियम सभी अवस्थितित्वीय तंत्रों के लिए एक-से रहेंगे। इस वक्तव्य को हम "विशिष्ट आपेक्षिकता का नियम" (principle of special relativity) कहेंगे। "स्थानान्तरण की आपेक्षिकता" (relativity of translation) के इस नियम से हम कतिपय निष्कर्ष निकालेंगे, ठीक उसी प्रकार जैसे पहले दिशा की आपेक्षिकता से निकाल चुके हैं।

ऐसा करने में समर्थ होने के लिए हमें निम्नलिखित समस्या को पहले हल करना चाहिए। यदि किसी अवस्थितित्वीय तंत्र की अपेक्षा हमें किसी घटना के कार्तीय निर्देशांक x_ν और उसका समय t' ज्ञात हों तो K′ तंत्र की अपेक्षा एक समान वेग से चलनेवाले किसी अन्य अवस्थितित्वीय तंत्र K′ में उसी घटना के निर्देशांक x'_ν तथा समय t' का परिकलन किस प्रकार कर सकते हैं ? आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी में इस समस्या को हल करने के लिए दो परिकल्पनाएँ अनजाने में ही बना ली गयी थीं —

(१) काल निरपेक्ष (absolute) होता है। यदि K′ तंत्र की अपेक्षा किसी घटना का समय t हो तो K′ तंत्र की अपेक्षा भी उसका समय t' उतना ही होगा (अर्थात् $t'=t$)। यदि तात्क्षणिक (instantaneous) संकेत बहुत दूर तक भेजे जा सकें और हमें यह ज्ञात हो कि घड़ी की चाल (rate) पर उसकी स्थानान्तरण-गति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता तब तो इस संकल्पना का भौतिक सत्यापन हो सकता है। क्योंकि तब बहुत-सी बिलकुल एक-सी घड़ियों की चाल को तथा उनमें प्रदर्शित समय को बिलकुल बराबर समंजित करके उन्हें K तथा K′ तंत्रों के विभिन्न स्थानों पर इस प्रकार रख दिया जा सकता है कि वे उन तंत्रों की अपेक्षा वहीं स्थिर रहें और उनमें प्रदर्शित समय उन निर्देशांक-तंत्रों की गति से स्वतंत्र हों और तब किसी भी घटना का समय उसके अत्यन्त निकट रखी हुई घड़ी के द्वारा ज्ञात हो जायगा।

(२) लम्बाई भी निरपेक्ष होती है। यदि किसी K′ तंत्र की अपेक्षा अचल अन्तराल की लम्बाई s हो तो इसी तंत्र की अपेक्षा गतिमान तंत्र K′ में भी उस अन्तराल की लम्बाई s' उतनी ही होगी (अर्थात् $s'=s$)।

यदि K तथा K′ के अक्ष समान्तर हों तो इन दो संकल्पनाओं पर आश्रित सरल परिकलन के द्वारा ये रूपान्तर-समीकरण प्राप्त होंगे—

$$\left.\begin{aligned} x'_v &= x_v - a_v - b_v t \\ t' &= t - b \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (21)$$

यह रूपान्तरण गलीलीय (Galilean) रूपान्तरण कहलाता है। इसका काल-सापेक्ष अवकलन दो बार करने पर यह परिणाम निकलेगा—

$$\frac{d^2x'_v}{dt^2} = \frac{d^2x_v}{dt^2}$$

इसके अतिरिक्त दो समक्षणिक (simultaneous) घटनाओं के लिए निम्नलिखित

$$x'^{(1)}_v - x'^{(2)}_v = x^{(1)}_v - x^{(2)}_v$$

समीकरणों का वर्गीकरण करके जोड़ने से उन दो बिन्दुओं के बीच की दूरी की निश्चरता प्रगट हो जाती है।

$$x'^{(1)}_v - x'^{(2)}_v = x^{(1)}_v - x^{(2)}_v$$

और इससे गलीलीय रूपान्तरण (21) के प्रति न्यूटन के गति-समीकरणों का सहचरत्व भी आसानी से प्रमाणित हो जाता है। अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि माप-दंडों और घड़ियों के सम्बंध में उपर्युक्त दोनों परिकल्पनाएँ स्वीकार कर ली जायँ तो चिरप्रतिष्ठित (classical) यांत्रिकी में और विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त में कोई विरोध नहीं रहता।

किन्तु स्थानान्तरण की आपेक्षिकता को गलीलीय रूपान्तरण पर आश्रित करने का यह प्रयत्न असफल हो जाता है जब हम इसका उपयोग विद्युत्-चुम्बकीय घटनाओं के लिए करते हैं। मैक्सवैल-लोरेन्ट्ज के विद्युत्-चुम्बकीय समीकरण गलीलीय रूपान्तरण के प्रति सहचर नहीं होते। विशेषतः (21) से यह प्रगट होता है कि यदि किसी प्रकाश-किरण का वेग K–तंत्र की अपेक्षा c हो तो K′–तंत्र की अपेक्षा उसका वेग कुछ दूसरा ही होगा और उसका मान उस किरण की दिशा पर भी निर्भर होगा। अतः अपने भौतिक गुणों की दृष्टि से निर्देशांक-तंत्र K में कुछ ऐसी विशिष्टता विद्यमान है जो इसकी अपेक्षा गतिमान अन्य निर्देशाकाशों में नहीं है (अचल ईथर=stationary ether)। किन्तु समस्त प्रयोगों से यही प्रगट हुआ है कि यदि पृथ्वी को निर्देश-वस्तु माना जाय तो उसके सापेक्ष विद्युत्-चुम्बकीय तथा प्राकाशिक घटनाओं के विवरण पर पृथ्वी की स्थानान्तरण गति का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे प्रयोगों में माइकेलसन और मोरले (Michelson and Morley) के प्रयोग का महत्त्व

अधिकतम है। मैं समझता हूं कि इनसे सभी परिचित हैं। अतः विद्युत्–चुम्बकीय घटनाओं के लिए भी विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त की सत्यता के विषय में शंका का कोई स्थान नहीं रह जाता।

दूसरी ओर, गतिमान पदार्थों की प्राकाशिक समस्याओं के स्पष्टीकरण में मैक्स-वैल-लोरेन्ट्ज समीकरणों की सत्यता भी अच्छी तरह प्रमाणित हो चुकी है। प्रकाश-विपथन (aberration), गतिमान माध्यमों में प्रकाश-संचरण (फ़ीजो=Fizeau), और तारा-युग्मों में प्रेक्षित घटनाओं (डी-सिटर=De-Sitter) का संतोषजनक स्पष्टीकरण किसी भी अन्य सिद्धान्त के द्वारा संभव नहीं हुआ है। अतः मैक्सवैल-लोरेन्ट्ज़ समीकरणों के इस परिणाम को प्रमाणित मानना ही पड़ेगा कि शून्याकाश में प्रकाश-संचरण का वेग सदैव c ही होता है—कम से कम एक विशिष्ट अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा। विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार हमें इस नियम की सत्यता को प्रत्येक अवस्थितित्वीय तंत्र के लिए भी स्वीकार करना पड़ेगा।

इन दोनों नियमों से अन्य निष्कर्ष निकालने से पहले "काल" तथा "वेग" सम्बंधी धारणाओं की भौतिक अभिव्यक्तियों की आलोचना कर लेना आवश्यक है। जैसा कि हम बता चुके हैं, किसी भी अवस्थितित्वीय-तंत्र की अपेक्षा निर्देशांक परिदृढ़ वस्तुओं की सहायता से सम्पन्न रचनाओं (constructions) और मापनों (measurements) के द्वारा भौतिक विधि से निर्णीत किये जाते हैं। काल-मापन के लिए हम ने मान लिया है कि एक घड़ी U किसी स्थान पर K–तंत्र की अपेक्षा अचल अवस्था में रखी हुई है। किन्तु इस घड़ी के द्वारा हम ऐसी घटना का समय निश्चित नहीं कर सकते, जिसकी इस घड़ी से दूरी उपेक्षणीय न हो क्योंकि ऐसे कोई भी तात्क्षणिक संकेत उपलब्ध नहीं हैं जिनके उपयोग से हम घटना के समय और घड़ी के समय की तुलना कर सकें। किन्तु काल की परिभाषा को पूर्ण बनाने के लिए हम शून्याकाश में प्रकाश के वेग की नियतता (constancy) के नियम का उपयोग कर सकते हैं। मान लीजिए कि K–तंत्र के विभिन्न बिन्दुओं पर बिलकुल एक-सी घड़ियाँ रखी हुई हैं जो K–तंत्र की अपेक्षा अचल हैं और जो निम्नलिखित योजना के अनुसार समंजित कर ली गयी हैं। जिस क्षण पर कोई एक घड़ी U_m समय t_m दिखलाती है, ठीक उसी क्षण पर वहाँ से एक प्रकाश-किरण किसी दूसरी घड़ी U_n की तरफ़ भेजी जाती है जो वहाँ से r_{mn} की दूरी पर रखी हो। इस घड़ी को इस प्रकार समंजित कर दिया जाता है कि जिस क्षण पर वह किरण U_n पर पहुँचे उस क्षण पर यह घड़ी $t_n = t_m + \frac{r_{mn}}{c}$ का

समय दिखलावे।* प्रकाश-वेग की नियतमानता (constancy) का नियम तब यह प्रगट करता है कि घड़ियों के ऐसे समंजन से किसी प्रकार की अन्योन्य विपरीतताएँ उत्पन्न नहीं होंगी। इस विधि से समंजित घड़ियों के द्वारा हम उनके निकटवर्ती घटनाओं का समय निर्धारित कर सकते हैं। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि काल की इस परिभाषा का सम्बन्ध केवल अवस्थितित्वीय तंत्र K ही के साथ है, क्योंकि हमने इसी तंत्र की अपेक्षा अचल घड़ियों के संघ का उपयोग किया है। आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी में काल के सम्बन्ध में निरपेक्षता की (अर्थात् अवस्थितित्वीय तंत्र के वरण से काल की स्वतंत्रता की) जो संकल्पना की गयी थी उसका निगमन (deduction) इस परिभाषा में से किसी तरह भी नहीं हो सकता।

आपेक्षिकता के सिद्धान्त पर बहुधा यह आक्षेप किया जाता है कि उसमें किसी सार्थक युक्ति के बिना ही प्रकाश-संचरण को केन्द्रीय सैद्धान्तिक स्थान दिया गया है क्योंकि उसमें काल की धारणा का प्रकाश-संचरण के नियम की भित्ति पर ही निर्माण किया गया है। किन्तु परिस्थिति बहुत-कुछ निम्न प्रकार की है। काल की धारणा को भौतिक अभिव्यक्ति देने के लिए कुछ ऐसी प्रक्रियाओं की आवयकता है कि जिनके द्वारा विभिन्न स्थानों के बीच में सम्बन्ध स्थापित किये जा सकें। काल की ऐसी परिभाषा के लिए जिन प्रक्रियाओं को पसंद किया जाय वे कैसी हैं यह बात महत्त्वपूर्ण नहीं है। किन्तु यह सिद्धान्त के हित में होगा कि हम ऐसी प्रक्रियाओं को ही चुनें जिनके विषय में हमें निश्चित रूप से कुछ-न-कुछ ज्ञात हो। और मैक्सवैल तथा लोरेन्ट्ज के अनुसन्धानों की कृपा से अन्य किसी भी विचारणीय प्रक्रिया की अपेक्षा शून्याकाश में प्रकाश-संचरण के विषय में हमारा ज्ञान बहुत अधिक है।

इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है कि आकाश और काल सम्बन्धी राशियों की अभिव्यक्ति केवल काल्पनिक नहीं है, किन्तु उसमें भौतिक वास्तविकता भी है। विशेषत: यह बात उन समस्त अनुबंधों (relation) पर लागू है जिनमें निर्देशांक (co-ordinate) तथा समय निविष्ट होते हैं, यथा अनुबंध (२१)। इसलिए यह प्रश्न उठाना अनुचित नहीं है कि वे समीकरण सत्य हैं अथवा नहीं और किसी एक

* वस्तुतः, समक्षणिकता (simultaneity) की परिभाषा पहले बहुत कुछ निम्नलिखित रीति से कर देना अधिक सही होगा। K-तंत्र में A तथा B बिन्दुओं पर होनेवाली दो घटनाएं समक्षणिक तभी समझी जायेंगी जब अन्तराल AB के मध्य-बिन्दु M से प्रेक्षण करने पर दोनों एक ही क्षण पर दिखाई दें। तब समय की परिभाषा यह हो सकती है, K-तंत्र में रखी हुई एक-सी अचल घड़ियों से जो समक्षणिक सूचनाएं प्राप्त होती हैं उन्हीं की समष्टि को 'समय' कहते हैं।

अवस्थितित्वीय तंत्र K से उसकी अपेक्षा गतिमान किसी अन्य तंत्र K में रूपान्तरण करने के यथार्थ समीकरण कौन से हैं? यह प्रमाणित किया जा सकता है कि प्रकाश-वेग की नियतमानता के नियम तथा विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त के द्वारा इस प्रश्न का समाधान अनन्य रूप से हो जाता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम यह मान लेंगे कि दो अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्रों (K तथा K′) की अपेक्षा आकाश तथा काल की भौतिक अभिव्यक्ति वही है जो पूर्व वर्णित विधि से प्राप्त होती है। अब मान लीजिए कि K–तंत्र के किसी बिन्दु $प_1$ से शून्याकाश में चलकर एक प्रकाश किरण किसी अन्य बिन्दु $प_2$ पर पहुँचती है। यदि इन दोनों बिन्दुओं के बीच में नापी हुई दूरी r हो तो प्रकाश-संचरण निम्नसमीकरण को आवश्यक रूप से सन्तुष्ट करेगा—

$$r = c. \triangle t$$

यदि इसका वर्ग करके उसमें r^2 को निर्देशांकों के अंतर $\triangle x_\nu$ के द्वारा व्यक्त कर दें तो इस समीकरण के स्थान में हम लिख सकेंगे कि—

$$\Sigma (\triangle x_\nu)^2 - c^2 (\triangle t)^2 = 0 \quad \dots \dots \dots \dots \dots \quad (22)$$

यह समीकरण K–तंत्र की अपेक्षा प्रकाश-वेग की नियतमानता के नियम का ही गणितीय रूप है। प्रकाश-किरण का उत्सर्जन करनेवाले उद्गम में चाहे जैसी भी गति क्यों न हो, इस समीकरण का सन्तुष्ट होना आवश्यक है।

अब यदि हम इसी उपर्युक्त प्रकाश-संचरण पर K′– तंत्र की दृष्टि से विचार करें तो प्रकाश-वेग की नियतमानता का नियम फिर भी सही होना चाहिए। अतः K′–तंत्र की अपेक्षा उसका समीकरण होगा

$$\Sigma (\triangle x'_\nu)^2 - c^2 (\triangle t')^2 = 0 \quad \dots \dots \dots \dots \dots \quad (22a)$$

K से K′ में रूपान्तरण करने के लिए रूपान्तर-समीकरण ऐसे होने चाहिए जो समीकरण (22) और (22a) में पारस्परिक सांगत्य स्थापित कर सकें। ऐसा कर सकने वाले रूपान्तरण को हम 'लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण' कहेंगे।

इन रूपान्तरणों का विस्तृत विवेचन करने से पहले हम आकाश और काल के सम्बन्ध में कुछ व्यापक बातें कह देना चाहते हैं। आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी में आकाश और काल को भिन्न तथा स्वतंत्र सत्ताएँ समझा जाता था। समय की अभिव्यक्ति और गणना निर्देशाकाश के वरण या चुनाव पर आश्रित नहीं थे। किन्तु न्यूटनीय यांत्रिकी निर्देशाकाश की दृष्टि से आपेक्षिक थी। अतः इस प्रकार के कथन का कोई वस्तुनिष्ठ

(अर्थात् निर्देशाकाश से स्वतंत्र) अर्थ नहीं था कि एक ही स्थान पर दो असम-क्षणिक (non-Simultaneous) घटनाएँ घटित हुईं। किन्तु इस आपेक्षिकता के सिद्धान्त के निर्माण में कोई उपयोग नहीं किया गया। आकाश के बिन्दुओं की और उसी तरह काल के क्षणों की भी चर्चा इस प्रकार होती थी मानो वे निरपेक्ष सत्ताएँ हों। इस बात का किसी को ध्यान भी न आया था कि वास्तव में चार संख्याओं (x_1, x_2, x_3, t) द्वारा निर्दिष्ट घटना ही दिक्-काल (Space-Time) के निर्धारण के लिए मौलिक अवयव होती है। प्रत्येक घटना में सदैव एक चतुर्विमितीय सांतत्यक (four-dimensional continuum) की धारणा निहित रहती थी, किन्तु आपेक्षिकता-पूर्व काल की निरपेक्षता ने इस बात को ऐसा छिपा रखा था कि हम उसके अस्तित्व से परिचित नहीं हो सके। काल की निरपेक्षता और विशेषतः समक्षणिकता की परिकल्पनाओं का त्याग करते ही दिक्-काल की धारणा में चतुर्विमितीयता तुरन्त प्रगट हो गयी। भौतिक वास्तविकता न तो आकाश के किसी बिन्दु में होती है और न काल के किसी क्षण में। वह तो केवल स्वयं घटना में ही होती है। दो घटनाओं में न तो कोई आकाश का अनुबंध, निरपेक्ष (अर्थात् निर्देशाकाश से स्वतंत्र) होता है और न कोई काल का अनुबंध, किन्तु जैसा आगे चल कर प्रगट होगा उनमें दिक्-काल का अनुबंध अवश्य ही निरपेक्ष तथा निर्देशाकाश से स्वतंत्र होता है। इस चतुर्विमितीय सांतत्यक (दिक्-काल) के त्रिविमितीय आकाश तथा एक-विमितीय काल में किसी तर्क-संगत तथा वास्तविक विभाजन की असंभवता से प्रगट होता है कि यदि प्रकृति के नियमों को चतुर्विमितीय दिक्-काल के सांतत्यक में व्यक्त किया जाय तो उनका रूप तार्किक दृष्टि से अधिकतम संतोषप्रद हो जायगा। इसी तथ्य के आधार पर आपेक्षिकता के सिद्धान्त की प्रक्रियाओं में वह महान् प्रगति संभव हुई है जिसके लिए हम मिनकाउस्की (Minkowski) के आभारी हैं। इस दृष्टि-कोण से x_1, x_2, x_3, t को हमें चतुर्विमितीय सांतत्यक में होनेवाली घटना के चार निर्देशांक समझना चाहिए। यह सत्य है कि यूक्लिड के त्रिविमितीय सांतत्यक में अनुबन्धों को मानस-पटल पर चित्रित करने में हमें जितनी सफलता मिल जाती है उसकी अपेक्षा बहुत ही कम सफलता चतुर्विमीतीय सांतत्यक में मिल सकती है। किन्तु यह बात भी बिलकुल स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि युक्लिड की त्रिविमितीय ज्यामिति की धारणाएँ और अनुबंध भी हमारे मन में अमूर्त (abstract) ही रहते हैं और जो चित्र हम आँख से देखकर अथवा स्पर्शेंद्रिय की सहायता से अपने मन में बनाते हैं उनसे इन धारणाओं और अनुबंधों का तादात्म्य बिलकुल नहीं होता। तथापि

घटनाओं के चतुर्विमितीय सांतत्यक की अविभाज्यता में यह बात गर्भित नहीं है कि आकाशीय निर्देशांक और काल के निर्देशांक बिलकुल ही एक-से अथवा तुल्यरूपी होते हैं। इसके विरुद्ध, हमें स्मरण रखना चाहिए कि काल के निर्देशांक की तथा आकाशीय निर्देशांकों की भौतिक परिभाषाएँ प्राप्त करने की विधियाँ सर्वथा भिन्न हैं। अनुबंध (22) तथा (22 a) का समीकरण बनाने से लोरेन्ट्ज़ रूपान्तरण तो निर्धारित होते ही हैं, किन्तु इसके अतिरिक्त यह भी प्रगट होता है कि काल के निर्देशांक का कार्य आकाशीय निर्देशांकों के कार्य से भिन्न है क्योंकि पद $(\triangle t)^2$ का चिह्न आकाशीय पद $(\triangle x_1)^2$, $(\triangle x_2)^2$, $(\triangle x_3)^2$ से विपरीत है।

लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण को निर्धारित करनेवाले प्रतिबंधों का इससे अधिक विश्लेषण करने से पहले हम समय t के स्थान में प्रकाश-समय $l = ct$ निविष्ट करना चाहते हैं, क्योंकि ऐसा करने से आगे चलकर प्राप्त किये जानेवाले सूत्रों में नियतांक c व्यक्त रूप से निविष्ट नहीं होगा। तब लोरेन्ट्ज़ रूपान्तरण इस प्रकार निर्धारित हो जायगा कि पहले तो समीकरण—

$$\triangle x_1^2 + \triangle x_2^2 + \triangle x_3^2 - \triangle l^2 = 0 \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (22b)$$

सहचर समीकरण बन जायगा अर्थात् यदि यह समीकरण उस अवस्थितित्वीय तंत्र में संतुष्ट हो जाता है जिसकी अपेक्षा हम प्रकाश-किरण के उत्सर्जन (emission) तथा संग्रहण (reception) की दोनों घटनाओं को निर्दिष्ट करते हैं तो वह प्रत्येक अवस्थितित्वीय तंत्र में भी सन्तुष्ट हो जायगा। और अंत में मिनकाउस्की के आदेशानुसार हम वास्तविक काल-निर्देशांक $l = ct$ के स्थान में काल्पनिक काल-निर्देशांक

$$x_4 = il = ict \qquad [\, i = \sqrt{-1}$$

निविष्ट करेंगे। तब प्रकाश-संचरण का समीकरण जिसका लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण के प्रति सहचर होना आवश्यक है, यह रूप प्राप्त कर लेगा—

$$\sum_{(4)} \triangle x^2_{\nu} = \triangle x_1^2 + \triangle x_2^2 + \triangle x_3^2 + \triangle x_4^2 = 0 \dots \dots \dots (22c)$$

इस प्रतिबंध का पालन सदैव निश्चित है* यदि अधिक व्यापक प्रतिबंध यह मान लिया जाय कि—

$$s^2 = \triangle x_1^2 + \triangle x_2^2 + \triangle x_3^2 + \triangle x_4^2. \quad \dots \quad \dots \quad (23)$$

* यह आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा कि यह विशिष्टीकरण इस उदाहरण में स्वभावतः ही निहित है।

ऐसे रूपान्तरण के प्रति निश्चर होना चाहिए। और इस प्रतिबंध का पालन केवल रैखिक रूपान्तरणों अर्थात्

$$x^1_\mu = a_\mu + b_{\mu\alpha} x_\alpha \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (24)$$

की जाति के रूपान्तरणों के द्वारा ही हो सकता है जिनमें संकलन क्षेत्र $\alpha = 1$ से लेकर $\alpha = 4$ तक विस्तृत है। समीकरण (23) तथा (24) पर दृष्टि डालने से यह प्रकट होता है कि इस प्रकार निर्धारित लोरेन्ट्ज़ रूपान्तरणों में और यूक्लिडीय ज्यामिति के स्थानान्तरण और घूर्णन के रूपान्तरणों में अनन्यरूपता आ जायगी यदि हम विमितियों की संख्या की और वास्तविकता के अनुबंधों की चिन्ता न करें। हम यह निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं कि गुणांक $b_{\mu\alpha}$ निम्नलिखित प्रतिबंधों का पालन करेंगे—

$$b_{\mu\alpha} b_{\nu\alpha} = \delta_{\mu\nu} = b_{\alpha\mu} b_{\alpha\nu} \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (25)$$

और x_ν के अनुपात वास्तविक होने के कारण यह भी परिणाम निलकता है कि $a_4, b_{41}, b_{42}, b_{43}, b_{14}$, b_{24} और b_{34} तो सर्वथा काल्पनिक हैं, किन्तु इन्हें छोड़कर समस्त a_μ तथा $b_{\mu\alpha}$, वास्तविक हैं।

विशिष्ट लोरेन्ट्ज़ रूपान्तरण

(Special Lorentz Transformations)

(२४) तथा (२५) की जाति के रूपान्तरणों का सरलतम रूप वह है जिसमें केवल दो ही निर्देशांकों का रूपान्तरण किया जाता है और जिसमें समस्त a_μ जो केवल नये मलबिन्दु (origin) को निर्णीत करते हैं, शून्य हों। तब हमें संकेतांक १ और २ के लिए, (२५) के तीन स्वतंत्र प्रतिबंधों के कारण, निम्नलिखित रूपान्तरण मिलता है—

$$\left.\begin{aligned} x'_1 &= x_1 \cos\phi - x_2 \sin\phi \\ x'_2 &= x_1 \sin\phi + x_2 \cos\phi \\ x'_3 &= x_3 \\ x'_4 &= x_4 \end{aligned}\right\} \qquad \ldots\ldots\ldots\;\ldots \quad (26)$$

ये समीकरण आकाशीय निर्देशांक-तंत्र का x_3—अक्ष पर सरल घूर्णन व्यक्त करते हैं। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस काल-रूपान्तरण विहीन घूर्णन-रूपान्तरण का हम

पहले अध्ययन कर चुके हैं, वह लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण का ही एक विशेष प्रकार का उदाहरण है। इसी प्रकार संकेतांक 1 और 4 के लिए,

$$\left.\begin{aligned} x'_1 &= x_1 \cos\psi - x_4 \sin\psi \\ x'_4 &= x_1 \sin\psi + x_4 \cos\psi \\ x'_2 &= x_2 \\ x'_3 &= x_3 \end{aligned}\right\} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (26a)$$

वास्तविकता के अनुबंधों के कारण ψ को काल्पनिक समझना पड़ेगा। इन समीकरणों का भौतिक अर्थ समझने के लिए, हम इनमें काल्पनिक कोण ψ के स्थान में वास्तविक प्रकाश-काल l और K-सापेक्ष K' का वेग v निविष्ट करेंगे। तब पहले तो

$$x'_1 = x_1 \cos\psi - il \operatorname{Sin}\psi$$
$$l' = -ix_1 \sin\psi + l \cos\psi$$

और चूंकि K′ के मूलबिन्दु के लिए अर्थात् $x'_1 = 0$ के लिए अवश्य ही $x_1 = vl$ होगा, अतः इनमें से प्रथम समीकरण से

$$v = i \tan\psi \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (27)$$

और

$$\left.\begin{aligned} \sin\psi &= \frac{-iv}{\sqrt{1-v^2}} \\ \cos\psi &= \frac{1}{\sqrt{1-v^2}} \end{aligned}\right\} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (28)$$

इसलिए रूपान्तर-समीकरण हो जायेंगे

$$\left.\begin{aligned} x'_1 &= \frac{x_1 - vl}{\sqrt{1-v^2}} \\ l' &= \frac{l - vx_1}{\sqrt{1-v^2}} \\ x'_2 &= x_2 \\ x'_3 &= x_3 \end{aligned}\right\} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (29)$$

यही सुविख्यात विशिष्ट लोरेन्ट्ज़-समीकरण हैं जिनसे, व्यापक सिद्धान्त में, चतुर्विमितीय निर्देशांक-तंत्र का किसी काल्पनिक कोण में घूर्णन व्यक्त होता है। यदि प्रकाश-काल l के स्थान में साधारण काल t निविष्ट करना हो तो (29) में l के स्थान में ct तथा v के स्थान में $\frac{v}{c}$ लिखना पड़ेगा।

इसमें जो त्रुटि रह गयी है उसे अब दूर कर देना चाहिए। प्रकाश-वेग की नियत-मानता (constancy) के नियम से यह प्रगट होता है कि समीकरण

$$\sum \Delta x_{v}^{2} = 0$$

की अभिव्यक्ति अवस्थितित्वीय-तंत्र के चुनाव पर आश्रित नहीं है। किन्तु इससे राशि $\sum \Delta x_{v}^{2}$ की निश्चरता बिलकुल भी प्रमाणित नहीं होती। यह संभव है कि इस राशि का रूपान्तरण किसी गुणनखंड की सहायता से हो जाय। इस कार्य के लिए समी० (29) के दक्षिण पक्ष को ऐसे गुणनखंड λ से गुणा करना पड़ेगा जो स्वयं v पर आश्रित हो। किन्तु हम अब प्रमाणित कर देंगे कि आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार इस गुणनखंड का मान 1 के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। मान लीजिए कि एक परिदृढ़ वृत्तीय बेलन (circular cylinder) अपने अक्ष की दिशा में गमन कर रहा है। यदि विराम अवस्था में मात्रक मापदंड के द्वारा नापने पर इस बेलन की त्रिज्या R_{0} हो तो गतिमान अवस्था में उसकी त्रिज्या का मान R_{0} से भिन्न हो सकता है क्योंकि आपेक्षिकता के सिद्धान्त में यह संकल्पना नहीं की गयी है कि वस्तुओं की निर्देशाकाश-सापेक्ष आकृति उनकी निर्देशाकाश-सापेक्ष गति पर अवलम्बित नहीं होती। किन्तु आकाश की समस्त दिशाओं में अन्योन्य-तुल्यता होना आवश्यक है। अतः वेग के परिमाण q पर तो R अवलम्बित हो सकता है किन्तु उसकी दिशा पर नहीं। इसलिए R को q का समघाती फलन (even-function) होना चाहिए। यदि बेलन K′-तंत्र की अपेक्षा अचल हो तो उसके पार्श्वीय पृष्ठ का समीकरण होगा—

$$x'^{2} + y'^{2} = R_{0}^{2}$$

यदि हम (29) के अंतिम दोनों समीकरणों को अधिक व्यापक रूप में यों लिख दें कि

$$x'_{2} = \lambda x_{2}$$
$$x'_{3} = \lambda x_{3}$$

तो K-तंत्र की अपेक्षा बेलन के पार्श्विक पृष्ठ का समीकरण हो जायगा

$$x^{2} + y^{2} = \frac{R_{0}^{2}}{\lambda^{2}}$$

अतः गुणनखंड λ उस बेलन के पार्श्विक आकुंचन के मान को व्यक्त करता है और उपर्युक्त कथनानुसार वह v का केवल समघाती फलन ही हो सकता है।

अब यदि हम एक तीसरा निर्देशांक-तंत्र K″ उपस्थित करें जो K′ की अपेक्षा वेग v से K-तंत्र के x-अक्ष की ऋण दिशा में गतिमान हो तो समी० (२९) का दो बार उपयोग करने से यह परिणाम निकलेगा—

$$x''_1 = \lambda(v).\lambda(-v).x$$

... ...

, , , , , ,

$$l'' = \lambda(v).\lambda(-v).\,l$$

किन्तु λ (v) तो λ (-v) के बराबर अवश्य ही होगा और हमने मान लिया कि इन सभी निर्देशांक-तंत्रों में माप करने के लिए उन्हीं मापदंडों का उपयोग किया गया है जिनका उपयोग K-तंत्र के मापों में किया गया था। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि K″ से K में जो रूपान्तरण होगा वह सर्वसम (indentical) रूपान्तरण होगा (क्योंकि $\lambda = -1$ होने की संभावना पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है)। इस विवेचन में यह मान लेना भी आवश्यक है कि माप-दंडों का आचरण उनके पूर्व-वर्त्ती वेग के इतिहास पर अवलंबित नहीं होता।

गतिमान मापदंड और घड़ियां—(29) के प्रथम समीकरण के अनुसार K-तंत्र के निश्चित काल $l=0$ पर बिन्दुओं के पूर्णाङ्क ($x'_1=n$) द्वारा व्यक्त स्थान K-तंत्र की अपेक्षा $x_1 = n\sqrt{1-v^2}$ में रूपान्तरित हो जायेंगे। यह बात लोरेन्ट्ज़ीय आकुंचन को व्यक्त करती है। K के मूलबिन्दु $x_1=0$ पर स्थित अचल घड़ी की टिक्-टिक् के शब्दों का समय यदि $l=n$ के द्वारा व्यक्त होता हो तो K′ की दृष्टि से वही शब्द व्यक्त होगा

$$l' = \frac{n}{\sqrt{1-v^2}}$$

के द्वारा। यह परिणाम (29) के द्वितीय समीकरण से प्राप्त होता है और इससे यह प्रगट होता है कि K′ में अचल होने पर इस घड़ी की जो चाल होती है उसकी अपेक्षा इस गतिमान अवस्था में उसकी चाल धीमी प्रतीत होती है। ये दोनों परिणाम, आवश्यकतानुसार संशोधित रूप में, प्रत्येक निर्देशांक-तंत्र के लिए सत्य हैं और ये लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण में गर्भित उस भौतिक तथ्य को प्रकट करते हैं जो किसी भी प्रकार की विशिष्ट मान्यता (convention) पर अवलम्बित नहीं है।

वेगों के संकलन का प्रमेय (Addition Theorem of velocities) यदि हम ऐसे दो लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरणों का संयोजन कर दें जिनमें आपेक्षिक वेग v_1 और v_2 हों तो इन दो पृथक् रूपान्तरणों का स्थान जो अकेला एक ही रूपान्तरण ले लेगा उसमें आपेक्षिक वेग होगा

$$v_{12} = i \tan(\psi_1+\psi_2) = i\,\frac{\tan\psi_1+\tan\psi_2}{1-\tan\psi_1\tan\psi_2} = \frac{v_1+v_2}{1+v_1v_2} \ldots \quad (30)$$

लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण तथा उसके निश्चर-सिद्धान्त के विषय में कुछ व्यापक वक्तव्य विशिष्ट आपेक्षिकता-सिद्धान्त में निश्चरों का सम्पूर्ण सिद्धान्त (23) के निश्चर s^2 पर आश्रित है। चतुर्विमितीय दिक्-काल सांतत्यक में इसका वैधानिक कार्य वही है जो आपेक्षिकता-पूर्व भौतिकी में तथा यूक्लिड की ज्यामिति में निश्चर $\Delta x_1^2 + \Delta x_2^2 \Delta x_3^2$ का था। यह परवर्ती राशि लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण के प्रति निश्चर नहीं है। समीकरण (23) की राशि ही इस निश्चर का कार्य करती है। किसी भी मनमाने अवस्थितित्वीय-तंत्र की अपेक्षा s^2 को नापकर निर्णीत किया जा सकता है। यदि माप का मात्रक निश्चित हो तो किसी भी मनमाने घटना-युग्म के लिए इस राशि का मान भी पूर्णतः निश्चित होगा।

इस निश्चर s^2 में और यूक्लिडीय ज्यामिति के तदनुरूप निश्चर में, विमितियों की संख्या के अतिरिक्त, निम्नलिखित बातों का भेद है। यूक्लिडीय ज्यामिति में s^2 आवश्यक रूप से धन-चिह्नीय होता है, और उसका मान शून्य तब ही होता है जब उससे सम्बन्धित दोनों बिन्दु एक ही स्थान पर एकत्रित हो जायें। इसके विपरीत,

$$S^2 = \sum \Delta x_v^2 = \Delta x_1^2 + \Delta x_2^2 + \Delta x_3^2 - \Delta t^2$$

का मान शून्य हो जाने का यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि तत्सम्बंधित दिक्-कालीय बिन्दु Space-time points एकत्र हो गये हैं। राशि S^2 का शून्य होना तो इस निश्चर प्रतिबंध को प्रगट करता है कि उन दोनों दिक्-कालीय बिन्दुओं में शून्याकाशगामी प्रकाश-संकेत के द्वारा सम्बंध स्थापित किया जा सकता है। यदि x_1, x_2, x_3, l के चतुर्विमितीय आकाश में निरूपित कोई बिन्दु (घटना) P हो तो जिन "बिन्दुओं" का सम्बंध प्रकाश-संकेत के द्वारा P से स्थापित किया जा सकता है वे सब शंकु (cone)

$S^2=0$ पर स्थित होंगे। देखिए चित्र १ जिसमें विमिति x_3 नहीं दिखाई गयी है।
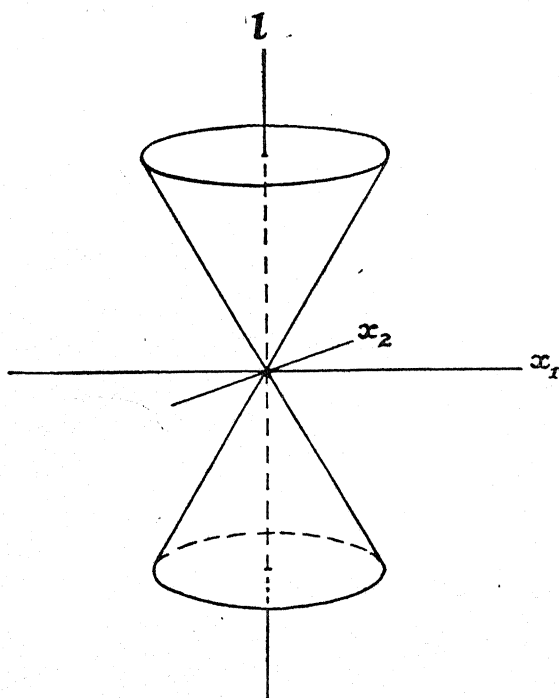
चित्र—१

P से प्रकाश-संकेत जिन विन्दुओं पर भेजे जा सकते हैं वे सब बिन्दु इस शंकु के ऊपरवाले आधे भाग में ही स्थित हो सकते हैं। और जिन बिन्दुओं से प्रकाश-संकेत P पर भेजे जा सकते हैं वे सब शंकु के नीचेवाले आधे भाग में स्थित होंगे। यदि इस शंकु-पृष्ठ के अन्तर्गत कोई बिम्दु P′ लिया जाय तो उसे P से सम्बंधित करने पर S^2 ऋण-चिन्हीय हो जायगा। तब, मिनकाउस्की के अनुसार, PP′ तथा P″P दोनों ही काल के लक्षणों से युक्त होंगे। ऐसे अन्तराल उन संभव गमन-पथों के खंडों को निरूपित करेंगे जिनमें वेग प्रकाश-वेग से कम हो।* इस दशा में अवस्थितित्वीय-तंत्र की गति का

* जड़ द्रव्य का वेग प्रकाश-वेग से अधिक होना असम्भव है। यह बात लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण (29) में करणी (Redical) $\sqrt{1-v^2}$ की उपस्थिति का परिणाम है।

समुचित चुनाव करके PP′ की दिशा में l–अक्ष स्थापित की जा सकती है। यदि P′ प्रकाश Light-cone शंकु से बाहर हो तो PP′ में आकाश के गुण होते हैं। इस दशा में अवस्थितित्वीय-तंत्र के उचित चुनाव के द्वारा $\triangle l$ को शून्य बनाया जा सकता है।

काल्पनिक काल-चर (time-variable) $x_4 = il$ के निवेषण (introduction) से मिनकाउस्की ने भौतिक घटनाओं के चतुर्विमितीय सांतत्यक के निश्चर-सिद्धान्त को पूर्णतः यूक्लिडीय आकार के त्रिविमितीय सांतत्यक के निश्चर-सिद्धान्त का तुल्यरूपी (Analogous) बना दिया है। अतः विशिष्ट आपेक्षिकता के चतुर्विमितीय टेन्सरों के सिद्धान्त में और त्रिविमितीय आकाश के टेन्सरों के सिद्धान्त में केवल विमितियों की संख्या का तथा वास्तविकता के सम्बंधों का ही भेद है।

x_1, x_2, x_3, x_4 के किसी भी मनचाहे अवस्थितित्वीय तंत्र में A_ν आदि चार राशियों के द्वारा जो भौतिक राशि निर्दिष्ट की जाती है वह चतुर्दिष्ट (4–vector) कहलाती है और यदि रूपान्तरण की दृष्टि से तथा वास्तविकता के सम्बंधों की दृष्टि से A_ν तथा $\triangle x_\nu$ में आनुरूप्य हो तो ये A_ν उस चतुर्दिष्ट के घटक कहलाते हैं। यह चतुर्दिष्ट आकाशरूपी (space-like) भी हो सकता है और काल-रूपी (time-like) भी। ये सोलह राशियां $A_{\mu\nu}$ द्वितीय कोटि के टेन्सर के घटक हो जायेंगी यदि उनके रूपान्तरण का नियम हो

$$A'_{\mu\nu} = b_{\mu\alpha} \quad b_{\nu\beta} \ A_{\alpha\beta}$$

इससे यह परिणाम निकलता है कि ये राशियां $A_{\mu\nu}$ अपने रूपान्तरण तथा वास्तविकता सम्बंधी लक्षणों में ठीक ऐसा आचरण करती हैं मानो वे दो चतुर्दिष्ट (U) तथा (V) के घटक U_μ और V_ν के गुणनफल हों। इनमें से उन घटकों (Component) को छोड़कर जिनमें संकेतांक 4 केवल एक बार आता है और जो बिलकुल काल्पनिक होते हैं, बाकी सब घटक वास्तविक होते हैं। तृतीय तथा उच्चतर कोटियों के टेन्सरों की परिभाषा भी ऐसी ही विधि से प्रस्तुत की जा सकती है। इन टेन्सरों के जोड़, बाकी, गुणन, आकुंचन तथा अवकलन की क्रियाएँ ठीक उसी प्रकार की होती हैं जैसी कि त्रि-विमितीय आकाश के टन्सरों की होती हैं।

चतुर्विमितीय दिक्-काल सांतत्यक के लिए टेन्सर-सिद्धान्त का उपयोग करने से पहले हम विषम-संमित (skew-symmetrical) टेन्सरों का विशेष रूप से अध्ययन करेंगे। द्वितीय कोटि के टेन्सर में सामान्यतः $16 = 4 \times 4$ घटक होते हैं।

विषम-संमिति के कारण वे घटक शून्य हो जाते हैं जिनमें दोनों संकेतांक बराबर हों और जिन घटकों में दोनों संकेतांक बराबर नहीं होते वे ऐसे युग्मों में विभाजित किये जा सकते हैं कि प्रत्येक युग्म के घटक बराबर मान के, किन्तु विपरीत चिह्नवाले हों। इसलिए केवल ६ स्वतंत्र घटक बच रहते हैं जैसा कि विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र में होता है। वस्तुत: जब हम मैक्सवल के समीकरणों पर विचार करेंगे तब यह प्रगट हो जायगा कि वे भी टेन्सर-समीकरण ही समझे जा सकते हैं यदि हम यह मान लें कि विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र विषम-संमित टेन्सर समझा जा सकता है। और यह भी स्पष्ट है कि तृतीय कोटि के विषम-संमित टेन्सर में (जिसमें विषम-संमिति समस्त संकेतांक-युग्मों के लिए विद्यमान हो) केवल 4 ही स्वतंत्र घटक होते हैं क्योंकि ऐसे संचय Combination केवल 4 ही होते हैं जिनके तीनों संकेतांक भिन्न हों।

अब हम मैक्सवैल समीकरण (19*a*), (19*b*), (20*a*), (20*b*) पर विचार करेंगे। और इसके लिए निम्नलिखित संकेतन (Notation)* का उपयोग करेंगे।

$$\left.\begin{matrix} \phi_{23} & \phi_{31} & \phi_{12} & \phi_{14} & \phi_{24} & \phi_{34} \\ h_{23} & h_{31} & h_{12} & -ie_x & -ie_y & -ie_z \end{matrix}\right\} \cdots\cdots\cdots\cdots (30a)$$

$$\left.\begin{matrix} F_1 & F_2 & F_3 & F_4 \\ \frac{1}{c}i_x & \frac{1}{c}i_y & \frac{1}{c}i_z & i\rho \end{matrix}\right\} \cdots\cdots\cdots\cdots (31)$$

और यह भी मान लेंगे कि $\phi_{\mu\nu} = -\phi_{\nu\mu}$ होगा। तब मैक्सवैल समीकरण इस समन्वित रूप में लिखे जा सकते हैं—

$$\frac{\partial \phi_{\mu\nu}}{\partial x_\nu} = F_\mu \cdots\cdots\cdots\cdots (32)$$

$$\frac{\partial \phi_{\mu\nu}}{\partial x_\sigma} + \frac{\partial \phi_{\mu\sigma}}{\partial x_\mu} + \frac{\partial \phi_{\sigma\mu}}{\partial x_\nu} = 0 \cdots\cdots\cdots\cdots (33)$$

समी० (30*a*) तथा (31) द्वारा विहित प्रतिस्थापन से इनका सत्यापन सुगमता

* किसी भी तरह की गड़बड़ न होने पाये इस दृष्टि से अब हम त्रिविमितीय आकाश के प्रसंग में संकेतांक 1, 2, 3 के स्थान में *x*, *y*, *z* का उपयोग करेंगे और संख्यात्मक संकेतांक चतुर्विमितीय दिक्-काल सांतत्यक के लिए प्रयुक्त करेंगे।

से हो सकता है। इन समीकरणों, (32) तथा (33), में टेन्सरों के गुण हैं क्योंकि हमने पहले ही मान लिया है कि $\phi_{\mu\nu}$ तथा F_μ टेन्सर हैं। अतः ये समीकरण लोरेन्ट्ज़—रूपान्तरण के प्रति सहचर हैं। फलतः एक अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्र से किसी अन्य अवस्थितित्वीय तंत्र में रूपान्तरण के नियम अनन्य रूप में निर्णीत हो जाते हैं। विद्युत्–गतिविज्ञान की प्रक्रियाओं में विशिष्ट आपेक्षिकता सिद्धान्त के कारण जो प्रगति हुई है वह मुख्यतः इस बात में है कि इससे स्वतंत्र परिकल्पनाओं की संख्या में कमी हो गयी है। उदाहरण के लिए यदि हम समीकरण (19a) पर केवल दिशा की आपेक्षिकता की दृष्टि से विचार करें, जैसा कि हमने पहले किया था, तो हम देखेंगे कि उनमें तीन पद तर्कतः स्वतंत्र होते हैं। वैद्युत तीव्रता (electric intensity) इन समीकरणों में जिस विधि से प्रविष्ट हुई है वह उस विधि से सर्वथा भिन्न जान पड़ती है जिससे कि चुम्बकीय तीव्रता प्रविष्ट हुई है। यदि कदाचित् $\frac{\partial e_\mu}{\partial l}$ के स्थान में $\frac{\partial^2 e_\mu}{\partial l^2}$ होता अथवा यह पद अनुपस्थित ही होता तो भी कोई आश्चर्य नहीं होता। दूसरी ओर समीकरण (32) में स्वतंत्र पद केवल दो ही हैं। विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र एक वैधानिक मात्रक के रूप में प्रविष्ट हुआ है और वैद्युत क्षेत्र के प्रविष्ट होने की विधि चुम्बकीय क्षेत्र के प्रवेश की विधि पर अवलम्बित है। विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के अतिरिक्त केवल विद्युत्-धारा का घनत्व ही स्वतंत्र सत्ता के रूप में उपस्थित है। प्रक्रिया की इस प्रगति का कारण यह तथ्य है कि वैद्युत तथा चुम्बकीय क्षेत्रों के पृथक् अस्तित्व गति की आपेक्षिकता में विलीन हो जाते हैं। एक निर्देशांक-तंत्र की दृष्टि से जो क्षेत्र शुद्धतः वैद्युत जान पड़ता है, दूसरे अवस्थितित्वीय तंत्र की दृष्टि से उसी में चुम्बकीय घटकों का भी अस्तित्व दिखाई देता है। यदि रूपान्तरण के व्यापक नियम का उपयोग विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के लिए किया जाय तो विशिष्ट लोरेन्ट्ज़-रूपान्तरण के लिए निम्नलिखित समीकरण प्राप्त हो जाते हैं—

$$\left.\begin{aligned} ex' &= e_x & h_x' &= h_x \\ e_y' &= \frac{e_y - vh_z}{\sqrt{1-v^2}} & h_y' &= \frac{h_y + ve_z}{\sqrt{1-v^2}} \\ e_z' &= \frac{e_z + vh_y}{\sqrt{1-v^2}}, & h_z' &= \frac{h_z - ve_y}{\sqrt{1-v^2}} \end{aligned}\right\} \quad \ldots \ldots (34)$$

यदि K–तंत्र की अपेक्षा केवल चुम्बकीय क्षेत्र h ही विद्यमान हो और वैद्युत क्षेत्र

e का अभाव हो तो K′–तंत्र की अपेक्षा वैद्युत क्षेत्र e' का अस्तित्व भी प्रगट हो जायगा और यह K′ में स्थित अचल वैद्युत कण पर अपना बल लगायेगा। K–तंत्र में स्थित अचल प्रेक्षक इस बल को बियो-सवार्ट (Biot-Savart) बल अथवा लोरेन्ट्ज़ विद्युद्वाहक बल (Lorentz electromotive force) की संज्ञा देगा। इसलिए ऐसा जान पड़ता है मानो यह विद्युद्वाहक बल वैद्युत क्षेत्र से मिल गया है और दोनों के समन्वय से एक ही सत्ता बन गयी है।

इन अनुबंधों के वैधानिक स्पष्टीकरण के लिए हम एक मात्रक आयतन के विद्युत् पर लगनेवाले बल के व्यंजक

$$\mathbf{k} = \rho \mathbf{e} + [\mathbf{i}, \mathbf{h}] \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (35)$$

पर विचार करेंगे। इसमें $\bar{\mathbf{i}}$ विद्युत् का सदिश वेग है और वेग का मात्रक प्रकाश-वेग माना गया है। यदि हम (30a) और (31) के अनुसार F_μ तथा ϕ_μ को निविष्ट करें तो (इस बल के) प्रथम घटक के लिए व्यंजक

$$\phi_{12}\mathcal{J}_2 + \phi_{13}\mathcal{J}_3 + \phi_{14}\mathcal{J}_4$$

प्राप्त होगा। यदि हम यह स्मरण रखें कि टेन्सर (ϕ) की विषम संमिति के कारण $\phi_{11} = 0$ हो जाता है तो $\bar{K}$ के घटक चतुर्विभितीय सदिश

$$K_\mu = \phi_{\mu\nu}\mathcal{J}_\nu \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (36)$$

के प्रथम तीन घटक होंगे और चौथा घटक होगा

$$\begin{aligned} \mathbf{K}_4 &= \phi_{41}\mathcal{J}_1 + \phi_{42}\mathcal{J}_2 + \phi_{43}\mathcal{J}_3 \\ &= i(\bar{\mathbf{e}}_x\bar{\mathbf{i}}_x + \bar{\mathbf{e}}_y\bar{\mathbf{i}}_y + \bar{\mathbf{e}}_z\bar{\mathbf{i}}_z) = i\lambda \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (37) \end{aligned}$$

अतः प्रति मात्रक आयतन पर लगनेवाला बल चतुर्विमितीय सदिश होता है जिसके प्रथम तीन घटक K_1, K_2, K_3 तो भारवाहक बल (Ponderomotive force) प्रति मात्रक आयतन के घटक होते हैं और चतुर्थ घटक क्षेत्र के कार्य करने की प्रति मात्रक आयतन दर $\times\sqrt{-1}$ को व्यक्त करेगा।

समी० (36) तथा (35) की तुलना करने से यह प्रगट होता है कि आपेक्षिकता का सिद्धान्त वैद्युत् क्षेत्र के भारवाहक बल $\rho\bar{e}$ का तथा बियो-सवार्ट अथवा लोरेन्ट्ज़ बल $[\bar{\mathbf{i}} \times \bar{\mathbf{h}}]$ का वैधानिक रूप से समन्वय कर देता है।

द्रव्यमान तथा ऊर्जा (Mass and Energy)—चतुर्दिष्ट K_μ के अस्तित्व और उसकी अभिव्यक्ति द्वारा एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

मान लीजिए कि किसी काय (body) पर विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र कुछ काल तक कार्य कर रहा है। तब सांकेतिक चित्र (२) में Ox_1, तो x–अक्ष को तथा Ol
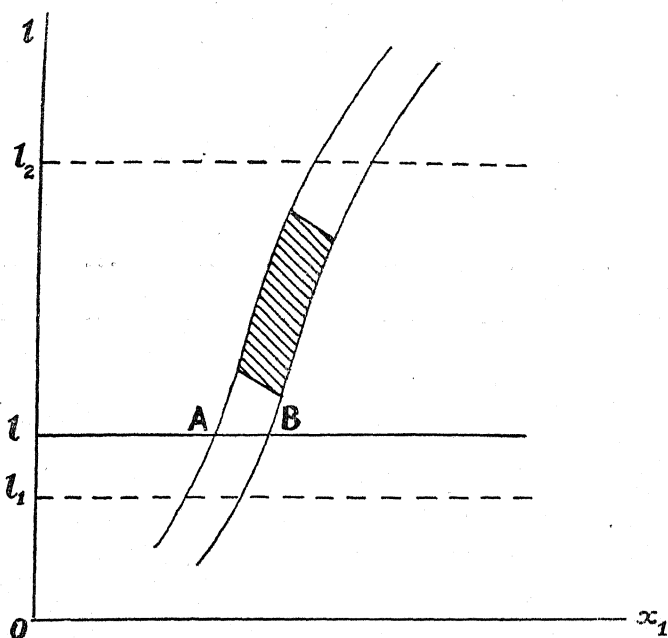
चित्र—२

वास्तविक काल के अक्ष को प्रदर्शित करती हैं। Ox_1, वास्तव में तीनों आकाशीय अक्षों Ox_1, Ox_2, Ox_3 का प्रतिनिधित्व करती है। इस रेखाचित्र में एक परिमित (finite) विस्तार के काय को किसी निश्चित समय l पर अन्तराल AB के द्वारा प्रदर्शित किया गया है और उस काय का सम्पूर्ण दिक्-कालीय अस्तित्व उस पट्टी (strip) द्वारा प्रदर्शित होता है जिसकी बाह्य सीमा के तथा l–अक्ष के बीच का कोण सर्वत्र ४५° से कम है। $l = l_1$ तथा $l = l_2$ वाले काल-खंडों के बीच में इस पट्टी का एक भाग छायान्वित (shaded) है, किन्तु यह उन कालखंडों तक विस्तृत नहीं है। यह भाग दिक्-कालीय बहुविमितिक (manifold) के उस भाग को व्यक्त करता है जिसमें विद्युत्-चुम्बकीय बल उस काय पर लगता है अथवा उ विद्यमान वैद्युत आवेशों पर लगकर अपना प्रभाव उस काय पर डालता है।

इस क्रिया के कारण उस काय के संवेग और ऊर्जा में जो परिवर्तन होते हैं उन पर अब हम विचार करेंगे।

हम यह मान लेंगे कि संवेग और ऊर्जा सम्बन्धी नियम उस काय के लिए मान्य हैं। इसलिए संवेग की वृद्धि $\triangle I_x$, $\triangle I_y$, $\triangle I_z$ तथा ऊर्जा की वृद्धि $\triangle E$ को व्यक्त करनेवाले व्यंजक होंगे

$$\triangle I_x = \int_{l_2}^{l_1} dl \int \overline{\mathbf{K}}_x \, dx \;\; dy \;\; dz = \frac{I}{i} \int K_1 \, dx \, , dx_2 \, dx_3 \, dx_4$$

... ...

... ...

$$\triangle E = \int_{l_2}^{l_1} dl \int \lambda \, dx \, dy \, dz = \frac{I}{i} \int \frac{I}{i} K_4 \, dx_1 dx_2 dx_3 dx_4$$

चूँकि चतुर्विमितीय आयतन खंड निश्चर होता है और K_1, K_2, K_3, K_4 के द्वारा एक चतुर्दिष्ट संघटित होता है अतः छायान्वित भाग पर विस्तृत चतुर्विमितीय अनुकल रूपान्तरित होकर चतुर्दिष्ट बन जाता है और यही दशा l_1 तथा l_2 सीमाओं के अन्तर्गत अनुकल की होती है क्योंकि जो भाग छायान्वित नहीं है वह अनुकल में कुछ भी नहीं जोड़ता। फलतः यह स्पष्ट हो जाता है कि $\triangle I_x$, $\triangle I_y$, $\triangle I_z$, $i \triangle E$ भी एक चतुर्दिष्ट की सृष्टि करते हैं। यह समझना भी स्वाभाविक है कि राशियों का रूपान्तरण उसी प्रकार का होगा जैसा कि उनकी वृद्धियों का होता है। अतः यह प्रगट होता है कि I_x, I_y, I_z और iE इन चार राशियों के समन्वय में भी सदिश के गुण विद्यमान हैं। इन राशियों का सम्बन्ध उस काय की तात्क्षणिक अवस्था (यथा समय $l = l_1$ पर विद्यमान अवस्था) से है।

यदि उस काय को हम द्रव्य-कण समझें तो इस चतुर्दिष्ट को हम उसके द्रव्यमान m तथा वेग के द्वारा भी व्यक्त कर सकते हैं। इस व्यंजक को प्राप्त करने के लिए पहले तो हम यह देखते हैं कि समीकरण

$$\left. \begin{aligned} -ds^2 = d\tau^2 &= -(d_{x1}^{\;2} + d_{x2}^{\;2} + d_{x3}^{\;2}) - d_{x4}^{\;2} \\ &= dl^2 \, (1 - q^2) \end{aligned} \right\} \quad \dots \quad \dots \quad (38)$$

ऐसा निश्चर है जिसका सम्बन्ध उस द्रव्य-कण की गति को निरूपित करनेवाली चतुर्विमितीय रेखा के अनन्त-सूक्ष्म खंड से है। निश्चर dt की भौतिक अभिव्यक्ति सुगमता से बतायी जा सकती है। यदि समय का अक्ष इस प्रकार चुना जाय कि उसकी दिशा वही हो जो विचाराधीन रैखिक अवकल की है अथवा दूसरे शब्दों में यदि हम उस द्रव्य-कण को विराम अवस्था में रूपान्तरित कर दें तो $d\tau = dl$ हो जायगा और इसका माप उस प्रकाश-सेकंड-दर्शी घड़ी के द्वारा हो जायगा जो उस द्रव्य-कण के ही स्थान पर विराम अवस्था में रखी हो। अतः τ को हम उस द्रव्य-कण के नैज काल (Proper time) की संज्ञा दे देते हैं। dl तो निश्चर नहीं होता, किन्तु $d\tau$ निश्चर होता है और उन समस्त गतियों के लिए जिनका वेग प्रकाश-वेग की तुलना में बहुत ही कम हो, यह $d\tau$ लगभग dl के बराबर ही होता है। अतः

$$u_\sigma = \frac{dx_\sigma}{d\tau} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (39)$$

में भी dx_ν की तरह ही सदिश के लक्षण हैं। u_σ को वेग का चतुर्विमितीय सदिश अथवा संक्षेप में 4-दिष्ट (चतुर्दिष्ट) कहेंगे। समी० (38) के अनुसार इसके घटक इस प्रतिबन्ध का पालन करेंगे—

$$\sum u_\sigma^2 = -1 \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (40)$$

यह भी प्रगट है कि केवल यही चतुर्दिष्ट ऐसा है जिसके घटक साधारण संकेतन में

$$\frac{q_x}{\sqrt{1-q^2}}, \quad \frac{q_y}{\sqrt{1-q^2}}, \quad \frac{q_z}{\sqrt{1-q^2}}, \quad \frac{i}{\sqrt{1-q^2}} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (41)$$

होते हैं और जो द्रव्य-कण के वेग के उन घटकों के द्वारा संघटित हो सकता है जिनकी त्रिविमितीय परिभाषा है—

$$q_x = \frac{dx}{dl}\,; \quad q_y = \frac{dy}{dl}\,; \quad q_z \frac{dz}{dl}$$

फलतः हम देखते हैं कि आवश्यक रूप से

$$m\left(\frac{dx_\mu}{d\tau}\right) \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (42)$$

ही वह चतुर्दिष्ट है जिसको हमें संवेग और ऊर्जा के उस चतुर्दिष्ट के बराबर रखना है जिसके अस्तित्व को हम ऊपर प्रमाणित कर चुके हैं। दोनों के घटकों को बराबर रखने से त्रिविमितीय संकेतन में ये समीकरण प्राप्त होते हैं—

$$\left.\begin{array}{l} I_x = \dfrac{mq_x}{\sqrt{1-q^2}} \\ \cdots\ \cdots\ \cdots \\ \cdots\ \cdots\ \cdots \\ E = \dfrac{m}{\sqrt{1-q^2}} \end{array}\right\} \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad (43)$$

इन समीकरणों से हम तुरन्त देख सकते हैं कि प्रकाश-वेग की अपेक्षा बहुत मंद वेगों के लिए तो संवेग के ये घटक वस्तुतः चिरप्रतिष्ठित यांत्रिकी के घटकों के बिलकुल बराबर हो जाते हैं। किन्तु बहुत प्रचंड वेगों के लिए, संवेग की वेग-सापेक्ष वृद्धि रैखिक वृद्धि की अपेक्षा अधिक तेज़ी से होती है और जब वेग बढ़कर प्रकाश-वेग के बराबर हो जाता है तब तो संवेग का मान अनन्त हो जाता है।

अब यदि (43) के अंतिम समीकरण का उपयोग किसी अचल द्रव्य-कण ($q=0$) के लिए किया जाय तो प्रगट होता है कि अचल काय की ऊर्जा E_0 उसके द्रव्यमान के बराबर होती है। यदि काल का मात्रक सेकंड ही लिया जाता तो हम पाते कि

$$E_0 = mc^2 \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad (44)$$

अतएव द्रव्यमान और ऊर्जा वस्तुतः एक-से होते हैं। वे केवल एक ही वस्तु के विभिन्न व्यंजक हैं। वस्तु का द्रव्यमान नियत नहीं होता। वह तो ऊर्जा के साथ-साथ बदलता रहता है।* (43) के अंतिम समीकरण से यह भी प्रगट है कि जब $q=1$ हो जाता है अर्थात् जब q प्रकाशवेग के बराबर हो जाता है, तब E का मान अनन्त हो जाता है। यदि E का q^2 के घातों की पद-संहति के रूप में विस्तार किया जाय तो

$$E = m + \frac{m}{2}q^2 + \frac{3}{8}mq^4 + \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad (45)$$

इस व्यंजक का द्वितीय पद चिर-प्रतिष्ठित यांत्रिकी में द्रव्य-कण की गतिज ऊर्जा का अनुरूपी है।

* स्वोत्सर्जी या रेडियमधर्मी (radio-active) क्रियाओं में ऊर्जा के उत्सर्जन का सम्बन्ध स्पष्टतः इस तथ्य से है कि परमाणु-भार पूर्णाङ्की नहीं होते। पिछले कुछ वर्षों में अचल अवस्था में द्रव्यमान और ऊर्जा की जो तुलना समीकरण (44) द्वारा व्यक्त होती है उसका समर्थन अनेक उदाहरणों के द्वारा हो चुका है। स्वोत्सर्जी विघटन (disintegration) में मूल परमाणु के द्रव्यमान की अपेक्षा विघटित खण्डों के द्रव्यमानों का जोड़ सदैव कम पाया जाता है। यह अन्तर नव-निर्मित कणों की गतिज ऊर्जा के रूप में तथा उत्सर्जित विकिरण (radiation) की ऊर्जा के रूप में प्रगट होता है।

द्रव्य-कणों के गति-समीकरण—समीकरण (43) का अवकलन करने पर और संवेग-नियम के उपयोग से, त्रिविमितीय सदिशों के संकेतन में हम देखते हैं कि

$$\overline{K} = \frac{d}{dt}\left(\frac{mq}{\sqrt{1-q^2}}\right) \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; (46)$$

इस समीकरण का उपयोग पहले लोरेन्ट्ज़ ने इलक्ट्रानों की गति के लिए किया था और β–किरणों के प्रयोगों के द्वारा अब इसकी सत्यता अत्यधिक यथार्थतापूर्वक प्रमाणित हो गयी है।

विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र का ऊर्जा-टेन्सर (energy Tensor)—आपेक्षिकता के सिद्धान्त के विकास से पहले ही यह ज्ञात था कि विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के लिए ऊर्जा और संवेग के नियम अवकल रूप में व्यक्त किये जा सकते हैं। इन्हीं नियमों के चतुर्विमितीय निरूपण से ऊर्जा-टेन्सर की एक महत्त्वपूर्ण धारणा प्राप्त होती है और आपेक्षिकता-सिद्धान्त के विकास की प्रगति में इसका बड़ा महत्त्व है।

यदि प्रति मात्रक आयतन पर लगनेवाले बल के चतुर्दिष्ट के व्यंजक

$$K_\mu = \phi_m F_\nu$$

में क्षेत्र-समीकरण (field equation) (32) की सहायता से हम f^μ को क्षेत्र की तीव्रता $\phi_{\mu\nu}$ के पदों में व्यक्त करें तो थोड़े से रूपान्तरण के बाद तथा क्षेत्र-समीकरण (32) तथा (33) का पुनः-पुनः उपयोग करने पर हमें यह व्यंजक प्राप्त हो जाता है—

$$K_\mu = -\frac{\partial T_{\mu\nu}}{\partial x_\nu} \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots (47)$$

जिसमें $$T_{\mu\nu} = -\tfrac{1}{4}\phi_{\alpha\beta}{}^2\delta_{\mu\nu} + \phi_{\mu\alpha}\phi_{\nu\alpha} \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots (48)$$

लिख दिया गया है और जिसमें संकेतांक α तथा β के लिए संकलन करना होगा।

समीकरण (47) का भौतिक अर्थ तब स्पष्ट होता है जब एक नवीन संकेतन का उपयोग करके इस समीकरण के स्थान में हम यह लिख दें कि—

$$\left.\begin{array}{l} K_x = -\dfrac{\partial p_{xx}}{\partial x} - \dfrac{\partial p_{xy}}{\partial y} - \dfrac{\partial p_{xz}}{\partial z} - \dfrac{\partial (ib_x)}{\partial (il)} \\ \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \\ \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \; \cdot \\ i\lambda = -\dfrac{\partial (is_x)}{\partial x} - \dfrac{\partial (is_x)}{\partial y} - \dfrac{\partial (is_x)}{\partial z} - \dfrac{\partial (-\eta)}{\partial (il)} \end{array}\right\} \ldots\ldots (47a)$$

अथवा काल्पनिक राशियों का निरसन (elimination) करने पर

$$\left.\begin{array}{l} K_x = -\frac{\partial p_{xx}}{\partial x} - \frac{\partial p_{xy}}{\partial y} - \frac{\partial p_{xz}}{\partial z} - \frac{\partial b_x}{\partial l} \\ \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots \\ \cdots\cdots\cdots\cdots\cdots \\ \lambda = -\frac{\partial S_x}{\partial x} - \frac{\partial S_y}{\partial y} - \frac{\partial S_z}{\partial z} - \frac{\partial \eta}{\partial l} \end{array}\right\} \cdots\cdots (47b)$$

इस अंतिम रूप में हम देखते हैं कि पहले तीन समीकरण तो संवेग-नियम को व्यक्त करते हैं। इनमें $p_{xx} \ldots p_{zx}$ विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के मैक्सवैलीय प्रतिबल हैं और (b_x, b_y, b_z) उसी क्षेत्र का सदिश संवेग प्रति मात्रक आयतन है। (47b) का अंतिम समीकरण ऊर्जा-नियम को व्यक्त करता है। इसमें S ऊर्जा-प्रवाह (flow of energy) का सदिश है और η क्षेत्र का ऊर्जा-घनत्व (energy density) है। वस्तुतः विद्युत्-गतिविज्ञान के सुविख्यात व्यंजकों को समी० (48) में निविष्ट करने पर

$$\left.\begin{array}{l} p_{xx} = -h_x h_x + \tfrac{1}{2}(h_x^2 + h_y^2 + h_z^2) - e_x e_x + \tfrac{1}{2}(e_x^2 + e_y^2 + e_z^2) \\ p_{xy} = -h_x h_y - e_x e_y \\ p_{xz} = -h_x h_z - e_x e_z \\ \cdots\cdots\cdots \\ \cdots\cdots\cdots \\ b_x = S_x = e_y h_z - e_z h_y \\ \cdots\cdots\cdots \\ \cdots\cdots\cdots \\ \eta = +\tfrac{1}{2}(e_x^2 + e_y^2 + e_z^2 + h_x^2 + h_y^2 + h_z^2) \end{array}\right\} (48a)$$

समी० (48) से यह भी मालूम हो जाता है कि विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र का ऊर्जा-टेन्सर संमित होता है। इसी बात से इस तथ्य का भी सम्बन्ध है कि संवेग प्रति मात्रक आयतन और ऊर्जा-प्रवाह बराबर होते हैं (ऊर्जा तथा अवस्थितित्व का सम्बन्ध)।

इस विवेचन से हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि ऊर्जा-घनत्व में भी टेन्सर के गुण होते हैं। यद्यपि यह बात प्रत्यक्ष रूप से केवल विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के ही लिए प्रमाणित हुई है तथापि हम इसकी सत्यता को सार्वत्रिक (universal) समझ सकते हैं। यदि वैद्युत आवेशों (charges) और धाराओं का वितरण ज्ञात हो तो

मैक्सवेल-समी-करणों* के द्वारा विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र निर्णीत हो जाता है। किन्तु हमें वे नियम ज्ञात नहीं हैं जिनके द्वारा धाराएँ और आवेश नियंत्रित होते हैं। यह तो हमें अवश्य ही ज्ञात है कि विद्युत् कणमयी होती है अर्थात् कुछ मूल कणों (इलैक्ट्रानों तथा धनाविष्ट नाभिकों (nucleus) का समुदाय मात्र होता है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से यह बात हमारी समझ में नहीं आती। हम उन ऊर्जागत कारणों (energy factors) को नहीं जानते जिनके द्वारा निश्चित विस्तार और आवेशवाले कणों में विद्युत् का वितरण निर्णीत होता है। इस दिशा में सिद्धान्त को पूर्ण बनाने के जितने प्रयत्न किये गये हैं वे सब असफल हुए हैं। अतएव यदि हम सिद्धान्त का निर्माण मैक्सवैल के समीकरणों के आधार पर कर भी सकें तो विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र का ऊर्जा-टेन्सर केवल आविष्ट-कणों से बाह्यवर्ती प्रदेश में ही ज्ञात हो सकेगा।

आविष्ट कणों से बहिर्वर्ती ये प्रदेश ही ऐसे प्रदेश हैं जिनके लिए हम विश्वास कर सकते हैं कि हमें ऊर्जा-टेन्सर का सम्पूर्ण व्यंजक ज्ञात है। इनके लिए समी० (47) के अनुसार

$$\frac{\partial T_{\mu\nu}}{\partial x_\nu} = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \qquad (47c)$$

अविनाशित्व के नियमों के व्यापक व्यंजक (General Expressions for the Conservation Principles)—इस धारणा को टालना हमारे लिए कठिन है कि अन्य समस्त परिस्थितियों में भी ऊर्जा का आकाशीय वितरण संमित टेन्सर $T_{\mu\nu}$ द्वारा ही व्यक्त होगा और पूर्ण ऊर्जा का यह टेन्सर सर्वत्र अनुबंध (47*c*) का पालन करेगा। जो भी हो, इस परिकल्पना (assumpiton) के द्वारा हमें अनुकलित (integral) ऊर्जा के नियम का सही रूप प्राप्त हो जाता है।

मान लीजिए कि कोई संवृत (closed) अर्थात् आकाश में सीमित काय-संघ (system of bodies) ऐसा है कि जिसके बाह्यवर्ती प्रदेश में $T_{\mu\nu}$ शून्य हो

१ ज्ञान की इस कमी को दूर करने के प्रयत्न यह मान कर किये गये हैं कि आविष्ट कण शुद्ध विचित्रताएँ (proper singularities) ही हैं। किन्तु मेरी राय में इसका अर्थ यह है कि हमने द्रव्य की संरचना (structure) को सत्यरूप में समझने की आशा ही छोड़ दी। मैं तो समझता हूँ कि केवल आभासी समाधान से सन्तुष्ट हो जाने की अपेक्षा तो हमारी इस समय की अशक्यता को स्वीकार कर लेना ही अधिक श्रेयस्कर है।

जाता है और जिसे हम चतुर्विमितीय रेखाचित्र में पट्टी के रूप में निर्दशित कर सकते हैं। अब समीकरण $(47c)$ को इस आकाश-खंड की सीमाओं के अन्दर अनुकलित करिए। तब

$$\frac{\partial}{\partial l}\left\{\int T_{\mu_4} \quad dx_1 \ dx_2 \ dx_3\right\}=0 \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \quad (49)$$

क्योंकि अनुकलन के सीमान्तों पर $T_{\mu\nu}$ के शून्य होने के कारण $\frac{\partial T\mu_1}{\partial x_1}$, $\frac{\partial T\mu_2}{\partial x_2}$ तथा $\frac{\partial T\mu_3}{\partial x_3}$ के अनुकल भी शून्य हो जायेंगे। कोष्ठक के भीतर संपूर्ण काय-संघ के संवेग के i से गुणित व्यंजक तथा ऋणात्मक ऊर्जा के व्यंजक विद्यमान हैं। अतः समी० (49) अविनाशित्व के नियम को अनुकलित रूप में प्रस्तुत करता है। नीचे
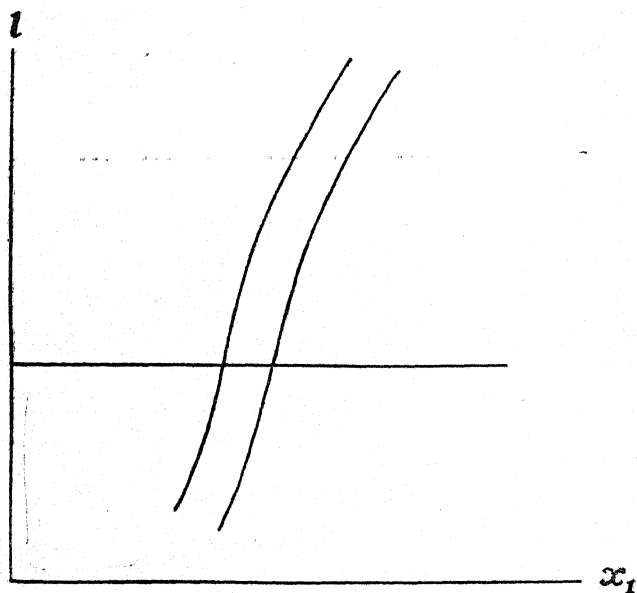
चित्र—३

दिये हुए विवेचन से प्रगट हो जायगा कि इस समीकरण से ऊर्जा तथा अविनाशित्व के नियमों की धारणाएँ यथातथ रूप में उपलब्ध हो जाती हैं।

द्रव्य के ऊर्जा-टेन्सर का घटनामूलक निरूपण
(Phenomenological Representation of the Energy Tensor of Matter)

द्रव-गतिकी के समीकरण (Hydrodynamical Equations)—हमें यह तो ज्ञात है कि द्रव्य आविष्ट कणों से बना हुआ है, किन्तु हमें वे नियम नहीं मालूम जिन पर इन कणों की रचना आश्रित है। अतः यांत्रिक समस्याओं के विवेचन में हमें द्रव्य के ऐसे अयथार्थ वर्णन का सहारा लेना पड़ता है जो चिर-प्रतिष्ठित यांत्रिकी के वर्णन के सदृश ही है। भौतिक पदार्थों के घनत्व σ की तथा द्रव-गतिकीय दाब की मौलिक धारणाओं पर ही यह वर्णन अवलम्बित है।

मान लो कि उस द्रव्य का घनत्व उसी के साथ-साथ गमन करनेवाले किसी निर्देशांक-तंत्र की दृष्टि से अनुमानित किसी स्थान पर σ है। तब विराम अवस्था में घनत्व $\sigma_\circ$ निश्चर होगा। यदि हम उस द्रव्य की गति को मनमानी समझ लें और दाब की उपेक्षा करें (यथा शून्याकाश में धूल के कण—उनके विस्तार तथा टेम्परेचर की उपेक्षा करने पर) तो ऊर्जा-टेन्सर वेग के घटक u_ν पर तथा $\sigma_\circ$ पर आश्रित होंगे। $T_{\mu\nu}$ में टेन्सर के लक्षणों को सुरक्षित रखने के लिए हम मान लेंगे कि

$$T_{\mu\nu} = \sigma_\circ u_\mu u_\nu \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \quad (50)$$

जहाँ त्रिविमितीय निरूपण में u_μ समी० (41) से प्राप्त होते हैं। वस्तुतः समी० (50) से यह परिणाम निकलता है कि जब $q=0$ होगा तब $T_{44}=\sigma_\circ$ हो जायगा (जो प्रति मात्रक आयतन की ऋणात्मक ऊर्जा के बराबर होता है)। और द्रव्यमान तथा ऊर्जा की तुल्यता के नियम तथा ऊर्जा-टेन्सर के उपर्युक्त भौतिक निर्वचन (physical interpretation) के अनुसार ऐसा ही होना भी चाहिए। यदि इस द्रव्य पर कोई बाह्य बल (चतुर्विमितीय सदिश K_μ) लग रहा हो तो संवेग तथा ऊर्जा के नियमों के अनुसार समीकरण—

$$K_\mu = \frac{\partial T_{\mu\nu}}{\partial x_\nu}$$

का सन्तुष्ट होना आवश्यक है। अब हम यह प्रमाणित करेंगे कि इस समीकरण से हमें द्रव्य-कण की गति का वही नियम प्राप्त हो जाता है जो हम पहले प्राप्त कर चुके हैं। कल्पना करिए कि इस द्रव्य का आकाश में विस्तार अनन्ततः सूक्ष्म है अर्थात् वह

एक चतुर्विमितीय सूत (thread) है। तब आकाशीय निदशांक x_1, x_2, x_3, की अपेक्षा उस पूरे सूत पर अनुकलन करने से हम देखेंगे कि—

$$\int K_1 dx_1 dx_2 dx_3 = \int \frac{\partial T_{14}}{\partial x_4} dx_1 dx_2 dx_3 = -i\frac{d}{dl}\left\{\int \sigma_\circ \frac{dx_1}{d\tau}\frac{dx_4}{d\tau} dx_1 dx_2 dx_3\right\}$$

अब $\int dx_1 dx_2 dx_3 dx_4$ तो निश्चर है ही। अतः $\int \sigma_\circ dx_1 dx_2 dx_3 dx_4$ भी निश्चर है। हम इस अनुकल का परिकलन (calculation) एक तो अपने चुने हुए अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा करेंगे और दूसरे उस तंत्र की अपेक्षा करेंगे जिसमें उस द्रव्य का वेग शून्य हो। यह अनुकलन उस सूत के ऐसे तन्तु (filament) पर किया जायगा जिसके पूरे खंड (section) में $\sigma_\circ$ का मान अचर समझा जा सके। यदि उन दोनों निर्देशांक-तंत्रों की अपेक्षा उस तन्तु के आकाशीय आयतन dv तथा $dv_\circ$ हों तो

$$\int \sigma_\circ dv dl = \int \sigma_\circ dv_\circ d\tau$$

और इसलिए

$$\int \sigma_\circ dv = \int \sigma_\circ dv_\circ \frac{d\tau}{dl} = \int d_m \cdot i\frac{d\tau}{dx_4}$$

यदि हम पहलेवाले अनुकल के दक्षिण पक्ष में इस समीकरण के दक्षिण पक्ष का प्रतिस्थापन कर दें और $\frac{dx_1}{d\tau}$ को अनुकल-चिह्न के बाहर रख दें तो—

$$K_x = \frac{d}{dl}\left(m\frac{dx_1}{d\tau}\right) = \frac{d}{dl}\left(\frac{mq_x}{\sqrt{1-q^2}}\right)$$

अतः स्पष्ट हो जाता है कि ऊर्जा-टेन्सर की व्यापकीकृत (generalised) धारणा हमारे पूर्व-लब्ध परिणाम से सुसंगत है।

आदर्श तरलों (Perfect fluids) **के लिए आयलर** (Eülar) **के समीकरण**—वास्तविक द्रव्य के आचरण के अधिक समीप पहुँचने के लिए हमें ऊर्जा-टेन्सर में एक पद और जोड़ना पड़ेगा जो दाब का अनुरूपी हो। आदर्श तरल का सरलतम उदाहरण वह है जिसमें दाब किसी अदिष्ट p के द्वारा निर्णीत होता है। इस दशा में स्पर्शरेखीय (tangential) प्रतिबलों के अभाव के कारण ऊर्जा-टेन्सर में दाब का अंशदान $p\delta_{\nu\mu}$ के रूप में होना चाहिए। अतः हमें लिखना होगा कि—

$$T_{\mu\nu} = \sigma u_\mu u_\nu + p\delta_{\mu\nu} \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (51)$$

तब विराम अवस्था में द्रव्य का घनत्व अथवा ऊर्जा प्रति मात्रक आयतन σ न होकर $\sigma - p$ हो जायगा क्योंकि—

$$-T_{44} = -\sigma \frac{dx_4}{dt} \cdot \frac{dx_4}{dt} - p\delta_{44} = \sigma - p$$

यदि बल का बिलकुल अभाव हो तो

$$\frac{\partial T_{\mu\nu}}{\partial x_\nu} = \sigma u_\nu \frac{\partial u_\mu}{\partial x_\nu} + u_\mu \frac{\partial(\sigma u_\nu)}{\partial x_\nu} + \frac{\partial p}{\partial x_\mu} = 0$$

यदि हम इस समीकरण को $\mu_u = \frac{dx_\mu}{dt}$ से गुणा करके समस्त u-ओं के लिए प्राप्त समीकरणों को जोड़ दें तो (40) की सहायता से

$$-\frac{\partial(\sigma u_\nu)}{\partial x_\nu} + \frac{dp}{dt} = 0 \quad \text{..............................} (52)$$

जिसमें हमने $\frac{\partial p}{\partial x_\mu} \cdot \frac{dx_\mu}{dt}$ के स्थान में $\frac{dp}{dt}$ लिख दिया है। यही सांतत्य-समीकरण (equation of continuity) है। इसमें और चिर-प्रतिष्ठित यांत्रिकी के समीकरण में केवल पद $\frac{dp}{dt}$ का ही भेद है और यह पद इतना छोटा होता है कि व्यावहारिक दृष्टि से यह लगभग शून्य के बराबर ही समझा जा सकता है। समी० (52) को ध्यान में रखने से अविनाशित्व के नियम यह रूप धारण कर लेते हैं—

$$\sigma \frac{du_\mu}{dt} + u_\mu \frac{dp}{dt} + \frac{\partial p}{\partial x_\mu} = 0 \quad \text{..........................} (53)$$

प्रथम तीन संकेतांकों के लिए तो स्पष्टतः यह समीकरण आयलर के समीकरणों के अनुरूप है ही और व्यापकीकृत ऊर्जा-नियम का इस बात से और भी अधिक समर्थन हो जाता है कि प्रथम सन्निकटन (first approximation) तक समी० (52) और (53) चिर-प्रतिष्ठित यांत्रिकी के द्रव-गतिकीय समीकरणों के भी अनुरूप हैं। द्रव्य के (या ऊर्जा के) घनत्व में भी टेन्सर के लक्षण विद्यमान होते हैं। विशेषतः वह संमित टेन्सर होता है।

तीसरा अध्याय

आपेक्षिकता का व्यापक सिद्धान्त

(The General Theory of Relativity)

प्रथम खंड

अब तक का विवेचन इस संकल्पना पर आधारित था कि भौतिक घटनाओं के विवरण के लिए समस्त अवस्थितित्वीय निदशांक-तंत्र तुल्यरूपी होते हैं और प्रकृति के नियमों को वैधानिक रूप देने के लिए ये अन्य प्रकार की गतिवाले निर्देशाकाशों की अपेक्षा अधिक वांछनीय होते हैं। किन्तु उस विवेचन के अनुसार न तो प्रेक्ष्य वस्तुओं में और न गति की धारणा में हम किसी भी ऐसे कारण की कल्पना कर सकते हैं कि जिससे किसी विशिष्ट प्रकार की गति अन्य प्रकार की गतियों की अपेक्षा वरिष्ठ समझी जा सके। इसके विपरीत हमें इस तथ्य को दिक्-काल-सांतत्यक का ही एक स्वतंत्र लक्षण समझना पड़ता है। विशेषतः ऐसा जान पड़ता है कि अवस्थितित्व का नियम ही हमें दिक्-काल-सांतत्यक में कुछ वस्तुनिष्ठ भौतिक गुणों का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए बाध्य करता है। जैसे न्यूटन के दृष्टिकोण से ये दोनों बातें कहना ठीक था कि "काल निरपेक्ष है" और "आकाश भी निरपेक्ष है" उसी तरह विशिष्ट आपेक्षिकता के दृष्टिकोण से हमें यह कहना पड़ता है कि "दिक्-काल-सांतत्यक निरपेक्ष है"। इस अंतिम वक्तव्य में निरपेक्ष का अर्थ केवल "भौतिकीय दृष्टि से वास्तविक" ही नहीं है, किन्तु "अपने भौतिक गुणों से स्वतंत्र" भी है अर्थात् उसमें भौतिक गुण तो विद्यमान हैं, किन्तु स्वयं उस पर भौतिक परिस्थितियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

जब तक अवस्थितित्व (inertia) का नियम भौतिक विज्ञान का आवश्यक आधार समझा जाता है तब तक तो केवल यही दृष्टिकोण तर्कसंगत समझा जा सकता है। किन्तु इस प्रचलित धारणा के विरुद्ध दो गंभीर आपत्तियाँ हैं। पहली बात तो यह है कि किसी ऐसी वस्तु (दिक्-काल-सांतत्यक) की कल्पना भी विज्ञान की विचार-शैली

के विरुद्ध है जो स्वयं तो अन्य वस्तुओं पर कार्य कर सकती है, किन्तु जिस पर अन्य वस्तुओं की क्रिया नहीं हो सकती। यही कारण है जिससे मैख (E. Mach) ने यांत्रिकी के तंत्र में से आकाश को "सक्रिय कारण" (active cause) के स्थान से हटाने का प्रयत्न किया था। उसके मतानुसार, द्रव्य-कण आकाश की अपेक्षा नहीं, किन्तु विश्व के अन्य सब भौतिक द्रव्यों के केन्द्र की अपेक्षा अत्वरित वेग से गमन करता है। इस प्रकार न्यूटन तथा गलीलियो की यांत्रिकी के प्रतिकूल, यांत्रिक घटनाओं के कारणों की परम्परा सीमित हो गयी। क्रिया के माध्यम-मूलक आधुनिक सिद्धान्त की सीमाओं में इस धारणा का विकास करने के लिए, दिक्-काल-सांतत्यक के अवस्थितित्व-जनक गुणों को विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के सदृश ही किसी क्षेत्र के गुण समझना चाहिए। चिर-प्रतिष्ठित यांत्रिकी की धारणाओं में से ऐसा करने का कोई रास्ता नहीं निकलता। इसलिए मैख का प्रयत्न उस समय असफल हो गया। इस दृष्टिकोण पर हम पुनः लौटकर आयेंगे। दूसरी बात यह है कि चिर-प्रतिष्ठित यांत्रिकी में एक त्रुटि रह गयी है जिसकी सीधी माँग यह है कि आपेक्षिकता के सिद्धान्त को अधिक विस्तृत बनाकर ऐसा रूप दे दिया जाय कि वह ऐसे निर्देशाकाशों पर भी लागू हो सके जिनकी अन्योन्य सापेक्ष गति एक समान (अचर वेगवाली) न हो। यांत्रिकी में दो वस्तुओं के द्रव्यमानों के अनुपात को निर्धारित करने की दो रीतियां हैं और उन दोनों में मौलिक भिन्नता है। एक परिभाषा के अनुसार तो यह (द्रव्यमानों का अनुपात) एक ही वाहक बल के द्वारा उन वस्तुओं में उत्पन्न त्वरणों के अनुपात के व्युत्क्रम (reciprocal) के बराबर होता है (अवस्थितित्वीय द्रव्य-मान=inertial mass)। दूसरी परिभाषा के अनुसार यह एक ही गुरुत्वीय-क्षेत्र में उन वस्तुओं पर लगनेवाले बलों के अनुपात के बराबर होता है (गुरुत्वीय, द्रव्यमान= gravitational mass)। इतनी अधिक भिन्न रीतियों से निर्धारित होने पर भी द्रव्यमानों के इन दोनों अनुपातों की समता ऐसा तथ्य है जिसका समर्थन बड़ी उत्कृष्ट यथार्थतावाले प्रयोगों से (इयोटवो = Eötvös के प्रयोगों से) हो चुका है। किन्तु चिर-प्रतिष्ठित यांत्रिकी इस समता का स्पष्टीकरण किसी प्रकार भी नहीं कर सकती। किन्तु यह स्पष्ट है कि विज्ञान इस सांख्यिक समता को मान्यता देने का अधिकारी पूर्णतः तब ही हो सकता है जब यह सांख्यिक समता इन दोनों स्वतंत्र धारणाओं में निहित वास्तविकताओं की एकरूपता में परिणत हो जाय।

नीचे दिये हुए विवेचन से यह प्रगट हो जायगा कि आपेक्षिकता के सिद्धान्त के विस्तारण से यह उद्देश्य सचमुच सफल हो सकता है। थोड़ा ही सा विचार करने से

यह स्पष्ट हो जाता है कि अवस्थितित्वीय तथा गुरुत्वीय द्रव्यमानों की समता के नियम का अभिप्राय यही है कि गुरुत्वीय-क्षेत्र के कारण वस्तुओं में जो त्वरण उत्पन्न होता है वह उन वस्तुओं के गुणों पर अवलम्बित नहीं होता क्योंकि गुरुत्वीय (gravitational) क्षेत्र में न्यूटन के गति-समीकरण का पूर्ण रूप यह है :

(अवस्थितित्वीय द्रव्यमान) ×त्वरण=(गुरुत्वीय क्षेत्र की तीव्रता)× (गुरुत्वीय द्रव्यमान), स्पष्ट है कि वस्तु के गुण से त्वरण केवल उसी दशा में स्वतंत्र हो सकता है जब अवस्थितित्वीय द्रव्यमान और गुरुत्वीय द्रव्यमान सांख्यिक रूप से बराबर हों। अब मान लीजिए कि K कोई अवस्थितित्वीय-तंत्र है। इस तंत्र की अपेक्षा वे सब द्रव्य-पुंज त्वरण विहीन होंगे जो एक दूसरे से पर्याप्त दूरी पर अवस्थित हों। यदि कोई दूसरा निर्देशांक-तंत्र K′ऐसा हो जिसकी K-सापेक्ष गति का त्वरण एक-समान (अचर) हो तो उसकी अपेक्षा इन्हीं द्रव्य-पुंजों की गति कैसी होगी ? K′ की अपेक्षा इन समस्त पुंजों का त्वरण बराबर तथा समान्तर दैशिक होगा अर्थात् उनका आचरण बिलकुल ऐसा होगा मानो K′ तो त्वरणविहीन है, किन्तु उसमें एक गुरुत्वीय क्षेत्र विद्यमान है। "इस गुरुत्वीय-क्षेत्र का कारण क्या है ?" इस प्रश्न का विवेचन यदि आगे के लिए स्थगित कर दिया जाय तो इस गुरुत्वीय-क्षेत्र को वास्तविक न समझने का हमारे पास कोई कारण नहीं रह जाता। अर्थात् चाहे हम K′ को अचल समझकर गुरुत्वीय-क्षेत्र के अस्तित्व को स्वीकार कर लें चाहे यह मान लें कि गुरुत्वीय-क्षेत्र का अस्तित्व तो नहीं है, किन्तु K ही ऐसा निर्देशांक-तंत्र है जो इस दशा में "अनुप्रयोज्य" (allowable) समझा जा सकता है। दोनों ही बातें बिलकुल एक-सी अथवा तुल्यरूपी (equivalent) हैं। K तथा K′ निर्देशांक-तंत्रों की पूर्ण भौतिक तुल्यता का ही नाम "तुल्यता का सिद्धान्त" (principle of equivalence) है। स्पष्टतः ही इस सिद्धान्त में और अवस्थितित्वीय तथा गुरुत्वीय द्रव्यमानों की समता के नियम में घनिष्ठ सम्बंध है। इससे यह प्रगट होता है कि आपेक्षिकता का सिद्धान्त विस्तारित रूप में ऐसे निर्देशांक-तंत्रों पर भी लागू हो सकता है जिनकी अन्योन्य सापेक्ष गति का वेग एक-समान (अचर) न हो। वस्तुतः इस परिकल्पना के द्वारा हमें अवस्थितित्व तथा गुरुत्व की एकात्मकता का परिचय मिलता है। क्योंकि हमारे इस दृष्टिकोण से, K की अपेक्षा जो द्रव्य-पुंज केवल अवस्थितित्व के अधीन दिखाई देते हैं वे ही K′ की अपेक्षा अवस्थितित्व तथा गुरुत्व के सम्मिलित प्रभाव के अधीन जान पड़ते हैं। मेरा विश्वास तो यह है कि अवस्थितित्व तथा गुरुत्व की संख्यात्मक समता को इन दोनों की प्राकृतिक एकात्मकता पर आश्रित समझने

की संभावना से आपेक्षिकता के सिद्धान्त को चिर प्रतिष्ठित यांत्रिकीय धारणाओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठता प्राप्त हो जाती है और इस सिद्धान्त के विकास में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उन्हें इस प्रगति की तुलना में बहुत छोटी समझना चाहिए।

अन्य समस्त निर्देशांक-तंत्रों से अवस्थितित्वीय-तंत्रों की वरिष्ठता अनुभव के द्वारा इतनी दृढ़ता से प्रमाणि त हो चुकी है कि अब इस मान्यता को त्यागने का समर्थन किस तरह किया जा सकता है? अवस्थितित्व के सिद्धान्त में कमजोरी यह है कि उसमें चक्रीय तर्क (argument in a circle) का उपयोग किया गया है। द्रव्य-पुंज की गति त्वरण विहीन तब होती है जब वह अन्य द्रव्य-पुंजों से पर्याप्त दूरी पर अवस्थित हो और वह अन्य पुंजों से पर्याप्त दूरी पर है इस बात को हम तभी जान सकते हैं जब हमें यह तथ्य मालूम हो कि उसकी गति त्वरणविहीन है। क्या कोई अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्र वास्तव में ऐसे हैं जो दिक्-काल-सांतत्यक के अत्यन्त विस्तीर्ण प्रदेशों के लिए अथवा सम्पूर्ण विश्व के लिए उपयोगी हों? यदि हम सूर्य तथा ग्रहों के कारण उत्पन्न हुए विक्षोभों (parturbations) को उपेक्षणीय समझ लें तो हम यह मान सकते हैं कि हमारे ग्रह-मंडलीय आकाश (planetary Space) में अवस्थितित्व के सिद्धान्त की सत्यता अति उच्च कोटि के सन्निकटन तक प्रमाणित हो गयी है। इसी बात को अधिक यथार्थता पूर्वक हम यों कह सकते हैं कि ऐसे भी कुछ परिमित प्रदेश विद्यमान हैं जहां किसी समुचित प्रकार से चुने हुए निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा द्रव्य-कण स्वतंत्रता पूर्वक बिना त्वरण के गमन करते हैं और जिनमें विशिष्ट आपेक्षिकता-सिद्धान्त के नियमों का पालन विलक्षण यथार्थता पूर्वक होता है। ऐसे प्रदेशों का नाम हम "गलीलीय प्रदेश" (Galilean region) रख देंगे। प्रारम्भ में हम ज्ञात गुणों और लक्षणोंवाले ऐसे प्रदेशों का ही विवेचन करेंगे।

तुल्यता के सिद्धान्त के अनुसार यह आवश्यक है कि गलीलीय प्रदेशों के लिए अवस्थितित्वीय तंत्रों के समान ही अन-अवस्थितित्वीय (non-inertial) तंत्रों का अर्थात् ऐसे तंत्रों का भी व्यवहार कर सकते हैं जिनकी गति अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्रों की अपेक्षा त्वरण-विहीन अथवा घूर्णन-विहीन न हो। इसके अतिरिक्त यदि हम कतिपय निर्देशांक-तंत्रों की वरिष्ठता के वस्तुनिष्ठ कारण सम्बंधी कष्ट-दायक प्रश्न से पूरा छुटकारा पाना चाहते हैं तो मनमानी गति से चलनेवाले निर्देशांक-तंत्रों के उपयोग को भी मान्य समझना आवश्यक है।* किन्तु गंभीरतापूर्वक ऐसा प्रयत्न करते ही आकाश और काल की उस भौतिक अभिव्यक्ति से विरोध खड़ा हो जाता है जो हमें विशिष्ट

आपेक्षिकता के सिद्धान्त से प्राप्त हुई थी। मान लीजिए कि K′ ऐसा निर्देशांक-तंत्र है जिसका z'–अक्ष K′ के z–अक्ष का संपाती है और जो इस अक्ष पर एक समान कोणीय वेग से घूम रहा है। तब क्या K′ की अपेक्षा अचल परिदृढ़ वस्तुओं का संरूपण (configuration) यूक्लिडीय ज्यामिति के नियमों का पालन करेगा ? K′ तंत्र के अवस्थितित्वीय न होने के कारण हम नहीं जानते कि K′ की अपेक्षा परिदृढ़ वस्तुओं के संरूपण के नियम अथवा व्यापक रूप से प्राकृतिक नियम क्या हैं। किन्तु अवस्थितित्वीय-तंत्र K की अपेक्षा हमें ये नियम मालूम हैं और इस कारण हम K′ की अपेक्षा भी उन नियमों के रूप का अनुमान कर सकते हैं। K′ के $x'y'$ समतल में मूल बिन्दु को केन्द्र मानकर खींचे हुए एक वृत्त तथा उसके व्यास की कल्पना करिए। और यह भी कल्पना करिए कि हमारे पास बराबर नाप की परिदृढ़ छड़ें बहुत बड़ी संख्या में विद्यमान हैं। मान लीजिए कि ये छड़ें उस वृत्त की परिधि तथा व्यास की रेखाओं पर श्रेणी-बद्ध रूप में बिछा दी गयी हैं और ये सब K′ की अपेक्षा अचल हैं। तव यदि परिधि पर रखी हुई छड़ों की संख्या U है और व्यास पर रखी हुई छड़ों की संख्या D है और यदि K की अपेक्षा K′ घूर्णन नहीं करता है तो हम देखेंगे कि—

$$\frac{U}{D}=\pi$$

किन्तु यदि K′ घूर्णन करता हो तो परिणाम दूसरा ही निकलेगा। मान लीजिए कि K के किसी निश्चित समय t पर हम समस्त छड़ों के सिरों के स्थानों का निर्णय करना चाहते हैं। K की अपेक्षा परिधि की सभी छड़ों में लोरेन्ट्ज़ आकुंचन हो जायगा, किन्तु व्यास की छड़ों में लम्बाई की दिशा में यह आकुंचन नहीं होगा !* अतः परिणाम यह होगा कि—

$$\frac{U}{D}>\pi$$

इससे यह प्रगट होता है कि परिदृढ़ वस्तुओं के संरूपण के K′–सापेक्ष नियमों में तथा यूक्लिड की ज्यामिति द्वारा निर्धारित नियमों में सांगत्य नहीं है। और यदि हम K′ के साथ-साथ घूर्णन करनेवाली दो बिलकुल एक-सी घडियां लेकर एक को उस वृत्त

* इस विवेचन में मान लिया गया है कि छड़ों और घड़ियों का आचरण वेग पर तो अवलम्बित होता है, किन्तु त्वरण पर नहीं अथवा कम से कम त्वरण का प्रभाव वेग के प्रभाव का विरोधी तो नहीं होता।

की परिधि पर रख दें और दूसरी को केन्द्र पर तो K के दृष्टि-कोण से यह मालूम होगा कि केन्द्र की घड़ी की तुलना में परिधिवाली घड़ी सुस्त है। यदि हम K′ की अपेक्षा काल की परिभाषा सर्वथा अप्राकृतिक रीति से न कर दें (अर्थात् इस प्रकार न कर दें कि K′ की अपेक्षा प्राकृतिक नियम काल पर स्पष्टतः अवलम्बित हों) तो K′ के दृष्टिकोण से भी ऐसा ही होना चाहिए, अतः आकाश और काल की जो परिभाषा विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त में अवस्थितित्वीय तंत्रों की अपेक्षा दी गयी थी वही K′ की अपेक्षा नहीं दी जा सकती। किन्तु तुल्यता के सिद्धान्त के अनुसार यह भी समझा जा सकता है कि K′ तंत्र स्थिर है, किन्तु उसमें एक गुरुत्वीय क्षेत्र विद्यमान है [अपकेन्द्र बल (centrifugal force) तथा कोरियोलिस बल (Coriolis force) का क्षेत्र]। फलतः हम इस परिणाम पर पहुँच जाते हैं कि दिक्-काल-सांतत्यक के मापन सम्बंधी नियम गुरुत्वीय क्षेत्र द्वारा प्रभावित होते हैं—यहां तक कि वे उसी के द्वारा निर्णीत भी होते हैं। यदि हम आदर्श परिदृढ़ वस्तुओं के संरूपण को ज्यामितीय विधि से व्यक्त करना चाहें तो गुरुत्वीय क्षेत्र की उपस्थिति में अनुप्रयोज्य ज्यामिति यूक्लिडीय नहीं हो सकती।

जिस उदाहरण पर अभी हम विचार कर रहे थे ठीक वैसा ही उदाहरण हमें वक्रतलों (curved surfaces) के द्वि-विमितीय विवेचन में भी मिलता है। इसमें भी दीर्घवृत्तज (ellipsoid) के पृष्ठ के जसे किसी वक्र-तल पर ऐसे निर्देशांकों का निर्धारण असंभव है जिनमें मापन की अभिव्यक्ति सुगम हो। किन्तु समतल पृष्ठ पर कार्तीय निर्देशांक, x_1, x_2 प्रत्यक्षतः उन लम्बाइयों का निरूपण करते हैं जो माप-दंड से नापी जा सकती हैं। गाउस (Gauss) ने अपने वक्रतलों के सिद्धान्त में इस कठिनाई को दूर करने के लिए वक्ररेखीय निर्देशांकों का उपयोग किया था जो संततता के प्रतिबंधो का तो पालन करते थे, किन्तु थे बिलकुल मनमाने। बाद में तो इन निर्देशांकों का सम्बंध उन वक्र-तलों के मापीय (metrical) गुणों के साथ भी स्थापित हो गया था। ठीक उसी तरह हम भी आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त में ऐसे मनमाने निर्देशांकों (x_1, x_2, x_3, x_4) को प्रस्तुत करेंगे जो दिक्-काल के बिन्दुओं को संख्याओं के द्वारा अनन्य रूप से इस प्रकार निरूपित कर सकें कि निकटवर्ती घटनाओं का सम्बंध इन निर्देशांकों के निकटवर्ती मानों के साथ स्थापित हो जाय। इस बात के सिवाय इन निर्देशांकों का चुनाव सर्वथा मनमाना है। आपेक्षिकता के सिद्धान्त के साथ अत्यन्त व्यापक रूप से यथार्थ सांगत्य को सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्राकृतिक नियमों को ऐसा रूप दे दिया जाय कि वे प्रत्येक चतुर्विमितीय निर्देशांक-

तंत्र में मान्य बने रहें अर्थात् उन नियमों को व्यक्त करनेवाले समीकरण किसी भी प्रकार के मनमाने रूपान्तरण के प्रति सहचर हों।

गाउस के वक्रतलों के सिद्धान्त में और आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त में सबसे महत्त्वपूर्ण सम्पर्क-बिन्दु उन मापीय गुणों में अवस्थित है जिन पर दोनों ही सिद्धान्तों की धारणाएँ मुख्यतः आधारित हैं। वक्रतलों के सिद्धान्त में गाउस का तर्क यह है। समतल ज्यामिति (plane geometry) दो अनन्ततः समीप बिन्दुओं की दूरी ds पर आधारित की जा सकती है। दूरी की इस धारणा में कुछ भौतिक अभिव्यक्ति विद्यमान है क्योंकि यह दूरी किसी परिदृढ़ माप-दंड के द्वारा प्रत्यक्षतः नापी जा सकती है। समुचित कार्तीय निर्देशांकों को चुनकर इस दूरी को इस सूत्र के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

$$ds^2 = dx_1^2 + dx_2^2$$

इस राशि के आधार पर अल्पान्तरी (geodesic) $[\delta \int ds = 0]$ द्वारा परिभाषित सरल रेखा की धारणा को तथा अन्तराल, वृत्त तथा कोण की उन धारणाओं को भी आधारित किया जा सकता है जिनके द्वारा यूक्लिड की समतल ज्यामिति का निर्माण हुआ है। इसी प्रकार किसी अन्य संतत वक्र-तल पर भी एक ज्यामिति का निर्माण हो सकता है, यदि हम इस बात को ध्यान में रखें कि उस वक्रतल का अनन्ततः स्वल्प खंड भी अपेक्षाकृत अत्यल्प राशियों तक समतल ही समझा जा सकता है (अर्थात् ऐसा समझने में संभाव्य भूल अपेक्षाकृत अत्यल्प राशियों से अधिक नहीं हो सकती)। उस वक्र-तल के ऐसे अत्यल्प खंड पर कार्तीय निर्देशांक x_1 x_2, स्थापित किये जा सकते हैं और दो बिन्दुओं की माप-दंड के द्वारा नापी हुई दूरी को

$$ds^2 = dx_1^2 + dx_2^2$$

के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

यदि हम उस वक्रतल पर मनचाहे वक्र-रेखीय निर्देशांक x_1, x_2 स्थापित करें तो dx_1, dx_2 को dx_1, dx_2 के रैखिक (एक घात) पदों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। तब उस तल पर सर्वत्र

$$ds^2 = g_{11}dx_1^2 + 2g_{12}dx_1dx_2 + g_{22}dx_2^2$$

जहाँ g_{11}, g_{12}, g_{22} के मान उस वक्रतल के लक्षणों तथा चुने हुए निर्देशांकों के स्वरूप द्वारा निर्णीत होंगे। यदि ये राशियाँ ज्ञात हो जायँ तो यह भी ज्ञात हो जायगा कि उस तल पर परिदृढ़ छड़ों का जाल कैसे बिछाया जाय। दूसरे शब्दों में, वक्र-तलों की

ज्यामिति भी ds^2 के इस व्यंजक के आधार पर उसी तरह बनायी जा सकती है जिस तरह इसके अनुरूपी व्यंजक के आधार पर समतल-ज्यामिति का निर्माण हुआ था।

भौतिकी के चतुर्विमितीय दिक्-काल सांतत्यक में भी इसी प्रकार के अनुबंधों का उपयोग किया जाता है। यदि किसी प्रेक्षक का किसी गुरुत्वीय क्षेत्र में निर्बाध (freely) पतन हो रहा हो तो उसके अत्यन्त निकटवर्ती प्रदेश में उसे गुरुत्वीय क्षेत्र के अस्तित्व का भान नहीं होता। इसलिए दिक्-काल सांतत्यक के किसी भी अनन्ततः स्वल्प खंड को हम सदैव गलीलीय मान सकते हैं। इस अनन्ततः स्वल्प खंड में एक अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्र भी होगा (जिसमें आकाशीय निर्देशांक x_1, x_2, x_3 होंगे और काल का निर्देशांक x_4 होगा) और इस तंत्र की अपेक्षा विशिष्ट आपेक्षिकता के नियम भी मान्य होंगे। फलतः जिस राशि को हम अपने माप-दंडों तथा घड़ियों के द्वारा प्रत्यक्षतः नाप सकते हैं अर्थात्

$$dx_1^2 + dx_2^2 + dx_3^2 - dx_4^2$$

अथवा इसी की ऋणात्मक राशि

$$ds^2 = -dx_1^2 - dx_2^2 - dx_3^2 + dx_4^2 \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (54)$$

का मान दो निकटवर्ती घटनाओं (अर्थात् चतुर्विमितीय सांतत्यक के बिन्दुओं) के लिए अनन्यतः निर्णीत निश्चर होगा, किन्तु शर्त यह है कि हमारे माप-दंड ऐसे हों जो एक ही स्थान पर लाकर अध्यारोपित करने पर बिलकुल बराबर लम्बाई के निकलें और हमारी घडियां भी ऐसी हों जिन्हें एक ही स्थान पर लाकर देखने से उनकी चाल में बिलकुल फ़र्क न निकले। इसमें यह भौतिक संकल्पना आवश्यक है कि दो माप-दंडों की आपेक्षिक लम्बाइयाँ और दो घड़ियों की आपेक्षिक चालें सिद्धान्ततः उनके पूर्व इतिहास पर अवलम्बित नहीं होतीं। किन्तु इस संकल्पना का समर्थन तो अनुभव से हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो अत्यन्त तीक्ष्ण (sharp) स्पैक्ट्रम-रेखाओं का अस्तित्व भी संभव न होता क्योंकि एक-ही तत्त्व के विभिन्न परमाणुओं का पूर्व इतिहास निस्सन्देह एक-सा नहीं हो सकता। और यदि यह मान लिया जाय कि पूर्व इतिहास के अनुसार परमाणुओं के गुणों में अन्योन्य-सापेक्ष परिवर्तन हो जाता है तो यह मानना बिलकुल तर्क-विरुद्ध हो जायगा कि उन परमाणुओं के द्रव्यमान अथवा उनकी नैज आवृत्तियाँ (proper frequencies) किसी भी समय बराबर रही हों।

किन्तु परिमित विस्तारवाले दिक्-कालीय प्रदेश साधारणतः गलीलीय नहीं होते। अतः परिमित प्रदेश में मान्य किसी भी प्रकार के निर्देशांक ऐसे नहीं हो सकते जिनके उपयोग से गुरुत्वीय क्षेत्र की उपस्थिति का निराकरण हो सके। और इसीलिए ऐसे भी

कोई निर्देशांक नहीं चुने जा सकते जिनकी अपेक्षा विशिष्ट आपेक्षिकता-सिद्धान्त के मापीय अनुबंध किसी परिमित प्रदेश में मान्य समझे जा सकें। किन्तु उस सांतत्यक के दो निकटवर्ती बिन्दुओं (घटनाओं) के लिए निश्चर ds का अस्तित्व सदैव निश्चित है। यह निश्चर मनचाहे निर्देशांकों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। यदि हम यह स्मरण रखें कि स्थानीय (local) dx_ν निर्देशांकों के अवकलों (dx) के एक घात पदों के द्वारा व्यक्त हो सकता है तो ds^2 को हम यों व्यक्त कर सकते हैं—

$$ds^2 = g_{\mu\nu} dx_\mu dx_\nu \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (55)$$

इस मनमाने निर्देशांक-तंत्र के सापेक्ष, यह फलन $g_{\mu\nu}$ दिक्-काल-सांतत्यक के मापीय अनुबंधों को भी प्रगट करता है और गुरुत्वीय क्षेत्र को भी। आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धान्त के समान ही, यहां भी हमें चतुर्विमितीय सांतत्यक के आकाश रूपी तथा काल-रूपी रेखा-खंडों में विभेद करना पड़ेगा। हमने चिह्न का जो परिवर्तन कर दिया है उसके कारण, काल रूपी रेखा-खंडों का ds वास्तविक होगा और आकाश-रूपी रेखा खंडों का ds काल्पनिक होगा। काल-रूपी ds का माप समुचित रूप से चुनी हुई घड़ी के द्वारा किया जा सकता है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त का निर्माण करने के लिए निश्चरों के और टेन्सरों के सिद्धान्तों का व्यापकीकरण (Generalisation) भी आवश्यक है। प्रश्न यह है कि उन समीकरणों का रूप कैसा होना चाहिए जो मनमाने बिन्दु-रूपान्तरणों के प्रति सहचर रहें। व्यापकीकृत टेन्सर-कलन (Tensor calculus) का विकास तो आपेक्षिकता-सिद्धान्त से बहुत पहले ही गणितज्ञों द्वारा कर लिया गया था। गाउस की विचारधारा का विस्तार करके रीमान (Riemann) ने ही सबसे पहले उसे बहु-विमितीय सांतत्यकों के लिए उपयोगी बनाया। भविष्य-द्रष्टा की भांति उन्होंने यूक्लिड की भूमिति के इस व्यापकीकरण का भौतिक अर्थ समझ लिया। और तब टेन्सर-कलन के रूप में इस सिद्धान्त का विकास किया गया—मुख्यतः रिकी (Ricci) और लेवी-सिविटा (Levi-Civita) द्वारा। इस टेन्सर-कलन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गणितीय धारणाओं और प्रक्रियाओं का संक्षिप्त विवरण देने का यही उचित स्थान है।

प्रतिचर (contra-variant) सदिश उसे कहते हैं जिसके चारों घटक A^ν प्रत्येक निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा, x_ν के ऐसे फलन होते हैं जिनका किसी अन्य निर्देशांक

तंत्र में रूपान्तरण निर्देशांकों के अवकलों (dx_ν) के अनुपात में होता है। अर्थात्

$$A^{\mu'} = \frac{\partial x_\mu'}{\partial x_\nu} A \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (56)$$

इन प्रतिचर सदिशों के अतिरिक्त कुछ सहचर (Co-variant) सदिश भी होते हैं। यदि B_ν किसी सहचर सदिश के घटक हों तो उस के रूपान्तरण का नियम होगा—

$$B'_\mu = \frac{dx_\nu}{dx_\mu'} B_\nu \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (57)$$

सहचर सदिश की परिभाषा ऐसी बनायी गयी है कि जिससे एक सहचर सदिश और एक प्रतिचर सदिश मिलकर निम्नलिखित योजना के अनुसार एक अदिष्ट की सृष्टि कर सकें—

$$\phi = B_\nu A^\nu \text{ (}\nu\text{के लिए संकलित)}$$

क्योंकि $B_\mu' A^{\mu'} = \frac{\partial x_\alpha}{\partial x_\mu'} \cdot \frac{\partial x_\mu'}{\partial x_\beta} = B_\alpha A^\beta = B_\alpha A^\alpha$

विशेषत: किसी अदिष्ट ϕ के व्युत्पन्न $\frac{\partial \phi}{\partial x_\alpha}$ किसी ऐसे सहचर सदिश के घटक होते हैं जो निर्देशांक-अवकलों के साथ मिलकर अदिष्ट $\frac{\partial \phi}{\partial x_\alpha} \cdot dx_\alpha$ का निर्माण करता है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सहचर सदिश की यह परिभाषा कितनी स्वाभाविक है।

किसी भी कोटि के टेन्सर ऐसे हो सकते हैं जिनमें प्रत्येक निर्देशांक की अपेक्षा सहचरता के अथवा प्रतिचरता के लक्षण विद्यमान हों। सदिशों के समान ही ये लक्षण भी संकेतांकों के स्थान के द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। उदाहरण के लिए A_μ^ν द्वितीय श्रेणी का ऐसा टेन्सर है जो संकेतांक μ की अपेक्षा तो सहचर है और संकेतांक ν की अपेक्षा प्रतिचर है। टेन्सर होने के कारण इसका रूपान्तर-समीकरण है—

$$A_{\mu}^{\nu'} = \frac{dx_{\alpha}}{dx'_{\mu}} \cdot \frac{dx'_{\nu}}{dx_{\beta}} \cdot A_{\alpha}^{\beta} \quad \ldots\ldots\ldots \quad (58)$$

लम्बकोणिक रैखिक प्रतिस्थापनों (orthogonal linear substitution) के निश्चरों के सिद्धान्त की तरह ही समान कोटि के और समान लक्षणोंवाले टेन्सरों को जोड़ने और घटाने से भी टेन्सर प्राप्त हो सकते हैं, यथा—

$$A_{\mu}^{\nu} + B_{\mu}^{\nu} = C_{\mu}^{\nu} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \quad (59)$$

C_{μ}^{ν} के टेन्सर-लक्षण का प्रमाण समीकरण (58) से प्राप्त होता है।

और ठीक लम्बकोणिक रैखिक प्रतिस्थापनों की तरह ही संकेतांकों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों को सुरक्षित रखकर टेन्सरों के गुणन से भी टेन्सर बनाये जा सकते हैं, यथा

$$A_{\mu}^{\nu} B_{\sigma\tau} = C_{\mu\sigma\tau}^{\nu} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \quad (60)$$

यह भी रूपान्तरण के नियम का प्रत्यक्ष परिणाम है।

दो विभिन्न लक्षणोंवाले संकेतांकों की अपेक्षा आकुंचन करके भी नये टेन्सर बनाये जा सकते हैं, यथा—

$$A_{\mu\sigma\tau}^{\mu} = B_{\sigma\tau} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \quad (61)$$

$A_{\mu\sigma\tau}^{\mu}$ के टेन्सर-लक्षण के द्वारा ही $B_{\sigma\tau}$ का टेन्सर-लक्षण निर्णीत होता है। प्रमाण यह है—

$$A_{\mu\sigma\tau}^{\mu'} = \frac{\partial x_{\alpha}}{\partial x'_{\mu}} \cdot \frac{\partial x'_{\mu}}{\partial x_{\beta}} \cdot \frac{\partial x_{s}}{\partial x'_{\sigma}} \cdot \frac{\partial x_{t}}{\partial x'_{\tau}} \cdot A_{\alpha st}^{\beta} = \frac{\partial x_{s}}{\partial x'_{\sigma}} \cdot \frac{\partial x_{t}}{\partial x'_{\tau}} \cdot A_{\alpha st}^{\alpha}$$

समान लक्षणोंवाले दो संकेतांकों की अपेक्षा इन टेन्सरों के संमिति अथवा विषम संमिति के गुणों का भी वही अर्थ है जो विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त में होता है।

टेन्सरों के बीजीय गुणों के सम्बंध में जानने योग्य आवश्यक बातें इतनी ही हैं।

मूल टेन्सर (The Fundamental Tensor)। समी० (55) से संगत संमिति के प्रतिबंध के विषय में, किसी भी मनमाने dx_{ν} की अपेक्षा ds^2 की निश्चरता से यह परिणाम निकलता है कि $g_{\mu\nu}$ किसी संमित सहचर टेन्सर (मूल टेन्सर) के घटक

हैं। अब समस्त $g_{\mu\nu}$–समूह से एक डिटर्मिनेन्ट (सारणिक) (determinant) g बनाइए और प्रत्येक $g_{\mu\nu}$ के लिए एक-एक सह-गुणक (co-factor) बनाकर उसमें g का भाग दे दीजिए। ये g से भाजित सह-गुणक $g^{\mu\nu}$ के द्वारा व्यक्ति किये जायेंगे। इनका सहचर लक्षण अभी ज्ञात नहीं है।

तब

$$g_{\mu\alpha}\, g^{\mu\beta} = \delta_{\alpha}^{\beta} = \left.\begin{matrix} 1 \text{ यदि } \alpha = \beta \\ 0 \text{ यदि } \alpha \neq \beta \end{matrix}\right\} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (62)$$

यदि हम अनन्ततः सूक्ष्म राशियाँ $d\xi_{\mu}$ (सहचर सदिश) बनावें तो

$$d\xi_{\mu} = g_{\mu\alpha}\, dx_{\alpha} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (63)$$

इन्हें $g^{\mu\beta}$ से गुणा करके समस्त μ–समूह के लिए जोड़ने पर समी० (६२) की सहायता से प्राप्त होगा —

$$dx_{\beta} = g^{\beta\mu}\, d\xi_{\mu} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots (64)$$

$d\xi_{\mu}$ के अनुपातों के मान बिलकुल मनमाने हैं तथा dx_{β} तथा $d\xi_{\mu}$ दोनों ही सदिशों के घटक हैं। अतः यह परिणाम निकलता है कि $g^{\mu\nu}$ –समूह किसी प्रतिचर टेन्सर के घटक हैं (प्रतिचर मूल-टेन्सर)।*

*यदि हम समी० (64) को $\frac{\partial x'_{\alpha}}{\partial x_{\beta}}$ से गुणा करके समस्त β— समूह के लिए जोड़ दें और तब $d\xi_{\mu}$ को तंत्र में रूपान्तरित करके प्रति स्थापित कर दें तो

$$dx'_{\alpha} = \frac{\partial x'_{\sigma}}{\partial x_{\mu}} \cdot \frac{\partial x'_{\alpha}}{\partial x_{\beta}} \cdot g^{\mu\beta}\, d\xi'_{\sigma}$$

इसी में से उपर्युक्त परिणाम निकल आयेगा क्योंकि समी० (64) से $dx'_{\alpha} = g^{\sigma\alpha'} d\xi'_{\sigma}$ भी होगा और इन दोनों समीकरणों का सन्तुष्ट होना आवश्यक है, चाहे $d\xi'_{\sigma}$ का चुनाव कैसा भी क्यों न हो।

फलतः मिश्र मूल टेन्सर (mixed fundamental Tensor) δ_{α}^{β} का टेन्सर-लक्षण समी० (६२) से ज्ञात हो जाता है। इस मूल टेन्सर की सहायता से सहचर संकेतांकोंवाले टेन्सरों के स्थान में हम प्रतिचर संकेतांकोंवाले टेन्सर प्राप्त कर सकते हैं तथा इससे विपरीत क्रिया भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए

$$A^{\mu} = g^{\mu\alpha} . A_{\alpha}$$

$$A_{\mu} = g_{\mu\chi} . A^{\alpha}$$

$$T_{\mu}^{\sigma} = g^{\sigma\nu} . T\mu\nu$$

आयतन निश्चर (Volume Invariants)—आयतन-खंड

$$\int dx_1 \, dx_2 \, dx_3 \, dx_4 = dx$$

निश्चर नहीं होता क्योंकि याकोबी के प्रमेय (Jacobis' Theorem) से

$$dx^1 = \left| \frac{dx'_{\mu}}{dx_{\nu}} \right| dx \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (65)$$

किन्तु हम dx को किसी परिपूरक (complement) के द्वारा निश्चर बना सकते हैं। यदि हम निम्नलिखित राशियों से एक डिटर्मिनैन्ट बनावें

$$g'_{\mu\nu} = \frac{\partial x_{\alpha}}{\partial x'_{\mu}} \cdot \frac{\partial x_{\beta}}{\partial x'_{\nu}} g_{\alpha\beta}$$

तो डिटर्मिनैन्टों के गुणन के नियम का दो बार उपयोग करके हम देखेंगे कि—

$$g' = \left| g'_{\mu\nu} \right| = \left| \frac{\partial x_{\nu}}{\partial x'_{\mu}} \right|^2 \cdot \left| g_{\mu\nu} \right| = \left| \frac{\partial x'_{\mu}}{\partial x_{\nu}} \right|^{-2} \cdot g \quad \ldots \quad \ldots \quad (66)$$

अतः हमें यह निश्चर प्राप्त हो जाता है—

$$\sqrt{g'} \cdot dx' = \sqrt{g} \cdot dx$$

अवकलन के द्वारा निश्चरों का निर्माण—यद्यपि टेन्सर-निर्माण की बीजीय क्रियाएँ (Algebrical operations) उतनी ही सुगम प्रमाणित हुई हैं जितनी कि लम्बकोणिक रैखिक रूपान्तरणों की विशिष्ट निश्चरता से सम्बंधित

क्रियाएँ होती हैं, फिर भी दुर्भाग्यवश सामान्य परिस्थितियों में ये निश्चर अवकलीय क्रियाएँ अधिक जटिल समझी जाती हैं। इसका कारण यह है। यदि A^{μ} प्रतिचर सदिश हो तो स्थान की अपेक्षा रूपान्तर-गुणांक $\frac{dx'_{\mu}}{dx_{\nu}}$ स्वतंत्र तभी हो सकते हैं जब रूपान्तरण रैखिक हो। तब निकटवर्त्ती स्थान पर इस सदिश के घटक $A^{\mu} + \frac{\partial A_{\mu}}{\partial x_{\alpha}} dx_{\alpha}$ भी ठीक A^{μ} की तरह ही रूपान्तरित होंगे। इसी बात से इस सदिश के व्युत्पन्नों का सदिश लक्षण तथा $\frac{\partial A^{\mu}}{\partial x_{\alpha}}$ का टेन्सर लक्षण स्पष्ट हो जाता है। किन्तु यदि ये $\frac{\partial x'_{\mu}}{\partial x_{\nu}}$ चर हों तो यह बात सत्य नहीं होगी।

फिर भी साधारण परिस्थितियों में टेन्सरों की निश्चर अवकलीय क्रियाओं के अस्तित्व का संतोषप्रद परिचय निम्नलिखित विधि से लग सकता है। इस विधि का प्रतिपादन लेवी-सिविटा (Levi-Civita) तथा वेल (Weyl) ने किया था। मान लीजिए कि (A^{μ}) कोई प्रतिचर सदिश है और x_{ν} के निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा उसके घटक ज्ञात हैं तथा P_1, और P_2 उस सांतत्यक में दो अनन्ततः निकटवर्ती बिन्दु हैं। तब हमारी उपर्युक्त विचारधारा के अनुसार, P_1 के चारों ओर के निकटवर्ती अनन्त सूक्ष्म प्रदेश में X_{ν} का (तथा काल्पनिक X_4 का) एक निर्देशांक-तंत्र ऐसा होगा जिसके लिए वह सांतत्यक यूक्लिडीय समझा जा सकता है। मान लीजिए कि P_1, बिन्दु पर सदिश के निर्देशांक A^{μ} (1) हैं और कल्पना करिए कि बिन्दु P_2 पर कोई समान्तर सदिश खींचा गया है जिसके निर्देशांक भी स्थानीय x_{ν}–तंत्र की अपेक्षा ये ही हैं। तब प्रगट है कि P_1, पर खींचे हुए सदिश के द्वारा तथा विस्थापन के द्वारा यह समान्तर सदिश अनन्यतः निर्णीत हो जायगा। इस क्रिया की अनन्यता का प्रमाण तो पीछे दिया जायगा। अभी तो हम इस क्रिया का वर्णन इन शब्दों द्वारा करेंगे कि यह सदिश A^{μ} का "P_1 से अनन्ततः निकटवर्ती विन्दु P_2 तक का समान्तर विस्थापन" है।

P_1 विन्दु के सदिश (A^{μ}) को, P_1 से P_2 तक समान्तर विस्थापन द्वारा प्राप्त सदिश में से घटाकर जो सदिश अंतर प्राप्त होता है वह उस दिये हुए विस्थापन (dx_{ν}) के लिए सदिश (A^{μ}) का अवकल समझा जा सकता है।

स्वभावतः इस सदिश विस्थापन का वर्णन x_{ν} के निर्देशांक-तंत्र के दृष्टि-कोण से भी किया जा सकता है। यदि P_1 पर उस सदिश के निर्देशांक A^{ν} हों और अन्तराल (dx_{ν}) पर स्थित P_2 तक विस्थापित सदिश के निर्देशांक $A^{\nu}+\delta A^{\nu}$ हों तो प्रगट है कि इस दशा में δA^{ν} के मान शून्य नहीं होंगे। हमें ज्ञात है कि इन राशियों का, जिनमें सदिशों के लक्षण विद्यमान नहीं हैं, dx_{ν} पर तथा A^{ν} पर रैखिक तथा समघात रूप से (homogeneously) अवलम्बित होना आवश्यक है। अतः हम लिख सकते हैं कि इसके

$$\delta A^{\nu} = -\Gamma^{\nu}_{\alpha\beta} A^{\alpha} dx_{\beta} \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (67)$$

इसके अतिरिक्त हम यह भी कह सकते हैं कि $\Gamma^{\nu}_{\alpha\beta}$ संकेतांक α,β की अपेक्षा अवश्य ही संमित होगा। कारण यह है कि यक्लिडीय तंत्र के स्थानीय निर्देशांकों द्वारा किये हुए निरूपण की सहायता से हम यह संकलपना कर सकते हैं कि किसी रेखा-खंड $d^{(1)}x_{\nu}$ का किसी अन्य रेखा-खंड $d^{(2)}x_{\nu}$ के बराबर (दिशा तथा मान में) विस्थापन करने से जो समान्तर-चतुर्भुज प्राप्त होगा वही $d^{(2)}x_{\nu}$ का $d^{(1)}x_{\nu}$ के बराबर विस्थापन करने से भी प्राप्त होगा। अतः यह आवश्यक होगा कि—

$$d^{(2)}x_{\nu} + \left(d^{(1)}x_{\nu} - \Gamma^{\nu}_{\alpha\beta}\, d^{(1)}x_{\alpha}\, d^{(2)}x_{\beta} \right)$$
$$= d^{(1)}x_{\nu} + \left(d^{(2)}x_{\nu} - \Gamma^{\nu}_{\alpha\beta}\, d^{(2)}x_{\alpha} \cdot d^{(1)}x_{\beta} \right)$$

इसके दक्षिण पक्ष में संकलन के संकेतांकों (α,β) का व्यतिहार अथवा विनिमय (interchange) करने से ऊपर दिया हुआ वक्तव्य प्रमाणित हो जाता है।

सांतत्यक के सभी मापीय गुण $g_{\mu\nu}$ राशियों के द्वारा निर्णीत हो जाते हैं। अतः उन्हीं से $\Gamma^{\nu}_{\alpha\beta}$ भी निर्णीत हो जायेंगे। सदिश (A^{ν}) का निश्चर अर्थात् उसके मान $g_{\mu\nu}\ A^{\mu}\ A^{\nu}$ का वर्ग जो निश्चर है समान्तर विस्थापन में बदल नहीं सकता। अतः

$$o = \delta\left(g_{\mu\nu}\ A^{\mu}\ A^{\nu}\right) = \frac{\partial g_{\mu\nu}}{\partial x_{\alpha}} A^{\mu}\ A^{\nu}\, dx_{\alpha} + g_{\mu\nu}\ A^{\mu}\delta A^{\nu}$$

$$+ g_{\mu\nu}\ A^{\nu}\delta A^{\mu}$$

अथवा (67) से

$$\left(\frac{\partial g_{\mu\nu}}{\partial x_{\alpha}} - g_{\mu\beta}\Gamma^{\beta}_{\nu\alpha} - g_{\nu\beta}\Gamma^{\beta}_{\mu\alpha}\right) A^{\mu}A^{\nu}\, dx_{\alpha} = o$$

μ,ν की अपेक्षा कोष्ठक गत व्यंजक की संमिति के कारण, यह समीकरण सदिश (A^{ν}) और dx_{ν} के किसी भी मनमाने चुनाव के लिए मान्य केवल तभी हो सकता है जब उन संकेतांकों के समस्त संचयों (combinations) के लिए कोष्ठकगत व्यंजक का मान शून्य रहे। इन संकेतांकों (μ, ν, α) का चक्रीय व्यतिहार (cyclic interchange) करने से हमें तीन समीकरण प्राप्त होते हैं और उनसे $\Gamma^{\alpha}_{\mu\nu}$ के संमिति गुण के कारण हमें यह समीकरण प्राप्त हो जाता है—

$$\begin{bmatrix} \mu\nu \\ \alpha \end{bmatrix} = g_{\alpha\beta}\Gamma^{\beta}_{\mu\nu} \qquad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \qquad (68)$$

जिसमें क्रिस्टोफ़ैल (Christoffel) के निम्नलिखित संक्षेपण (abbreviation) का उपयोग किया गया है—

$$\begin{bmatrix} \mu\nu \\ \alpha \end{bmatrix} = \tfrac{1}{2}\left(\frac{\partial g_{\mu\alpha}}{\partial x_{\nu}} + \frac{\partial g_{\nu\alpha}}{\partial x_{\mu}} - \frac{\partial g_{\mu\nu}}{\partial x_{\alpha}}\right) \qquad \ldots \quad \ldots \qquad (69)$$

अब यदि (68) को $g^{\alpha\sigma}$ से गुणा करके α'—समूह के लिए संकलन करें तो

$$\Gamma^{\sigma}_{\mu\nu} = \frac{1}{2} g^{\sigma\alpha} \left(\frac{\partial g_{\mu\alpha}}{\partial x_{\nu}} + \frac{\partial g_{\nu\alpha}}{\partial x_{\mu}} - \frac{\partial g_{\mu\nu}}{\partial x_{\alpha}} \right) = \left\{ {\mu\nu \atop \sigma} \right\} \quad \ldots \quad (70)$$

इसमें $\left\{ {\mu\nu \atop \sigma} \right\}$ क्रिस्टोफ़ैल का द्वितीय प्रकार का संक्षेपण है। इस प्रकार $g_{\mu\nu}$ से Γ राशियां निगमित हो जाती हैं। नीचे दिया हुआ विवेचन समीकरण (67) तथा (70) पर ही आधारित है।

टेन्सरों का सहचर अवकलन (Covariant differentiation)—यदि P_1 से P_2 तक के अनन्त सूक्ष्म समान्तर विस्थापन से प्राप्त सदिश $(A^{\mu} + \delta A^{\mu})$ हो और P_2 पर सदिश (A^{μ}) बदलकर $(A\mu + dA^{\mu})$ हो जाय तो इन दोनों का

अन्तर $$dA^{\mu} - \delta A^{\mu} = \left(\frac{\partial A\mu}{\partial x_{\sigma}} + \Gamma^{\mu}_{\sigma\alpha} A^{\alpha} \right) dx_{\sigma}$$

भी सदिश ही होगा। यह बात dx_{σ} के किसी भी मनमाने निर्धारण के लिए सही है। अतः

$$A^{\mu}_{\sigma} = \frac{\partial A^{\mu}}{\partial x_{\sigma}} + \Gamma^{\mu}_{\sigma\alpha} A^{\alpha} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (71)$$

एक टेन्सर होगा जिसका नाम हम प्रथम कोटि के टेन्सर (सदिश) का सहचर व्युत्पन्न (covariant derivative) रख देंगे। इस टेन्सर के आकुंचन से हमें प्रतिचर टेन्सर A^{μ} का अपसरण (divergence) प्राप्त हो जाता है। इसमें ध्यान देने की बात यह है कि (70) के अनुसार

$$\Gamma^{\sigma}_{\mu\sigma} = \frac{1}{2} g^{\sigma\alpha} \cdot \frac{\partial g_{\sigma\alpha}}{\partial x_{\mu}} = \frac{1}{\sqrt{g}} \frac{\partial \sqrt{g}}{\partial x_{\mu}} \quad \ldots \quad \ldots \quad (72)$$

अब यदि हम यह लिख दें कि—

$$A^{\mu} \sqrt{g} = \mathcal{A}^{\mu} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (73)$$

जिसमें वेल (Weyl) के अनुसार $\mathfrak{A}^{\mu}$ का नाम प्रथम श्रेणी का प्रतिचर टेन्सर-घनत्व* (Tensor-density) है, तो यह परिणाम निकलेगा कि यदि

$$\mathfrak{A} = \frac{\partial \mathfrak{A}^{\mu}}{\partial x_{\mu}} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (74)$$

हो तो $\mathfrak{A}$ अदिष्ट घनत्व होगा।

यदि हम समान्तर विस्थापन पर यह प्रतिबंध लगा दें कि वह इस प्रकार सम्पन्न किया जायगा कि उसमें अदिष्ट

$$\phi = A^{\mu} B_{\mu}$$

अपरिवर्तित रहे और इसलिए (A^{μ}) का मान चाहे जो हो फिर भी

$$A^{\mu} \delta B_{\mu} + B_{\mu} \delta A^{\mu}$$

का मान सदा शून्य ही रहे तो हमें सहचर सदिश B_{μ} के समान्तर विस्थापन का नियम ज्ञात हो सकता है। तब हम देखेंगे कि

$$\delta B_{\mu} = \Gamma^{\alpha}_{\mu\sigma} A_{\alpha} dx_{\sigma} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (75)$$

जिस क्रिया से हमें समी० (71) प्राप्त हुआ था, वही क्रिया इस समीकरण पर करने से हम सहचर सदिश का सहचर व्युत्पन्न प्राप्त कर सकते हैं।

$$B_{\sigma\mu} = \frac{\partial B_{\mu}}{\partial x_{\sigma}} - \Gamma^{\alpha}_{\mu\sigma} B_{\alpha} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (76)$$

इसमें संकेतांक μ और σ का व्यतिहार करके घटाने से विषम संमित टेन्सर $\phi_{\mu\sigma}$ प्राप्त हो जाता है—

$$\phi_{\mu\sigma} = \frac{\partial B_{\mu}}{\partial x_{\sigma}} - \frac{\partial B_{\sigma}}{\partial x_{\mu}} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (77)$$

*यह व्यंजक इस कारण समर्थनीय है कि $A^{\mu}\sqrt{g}\, dx = \mathfrak{A}^{\mu} dx$ में टेन्सर के लक्षण विद्यमान हैं। किसी भी टेन्सर को $\sqrt{g}$ से गुणा करने से वह टेन्सर घनत्व बन जाता है। टेन्सर-घनत्व के लिए हम गाथिक (Gothic) लिपि के बड़े (Capital) अक्षरों का उपयोग करेंगे।

द्वितीय तथा उच्चतर कोटियों के टेन्सरों के सहचर अवकलन के लिए हम उसी क्रिया का उपयोग कर सकते हैं जिससे (75) प्राप्त किया गया था। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि $(A_{\sigma\tau})$ द्वितीय कोटि क सहचर टेन्सर है। तब यदि E और F सदिश हों तो $A_{\sigma\tau} E^{\sigma} F^{\tau}$ अदिष्ट होगा। δ–विस्थापन के द्वारा इस व्यंजक में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए। इसी बात को सूत्र के द्वारा व्यक्त करके (67) का उपयोग करने से हमें $\delta A_{\sigma\tau}$ मिल जायगा और फिर उससे अभीष्ट सहचर व्युत्पन्न $A_{\sigma\tau;\rho}$ प्राप्त हो जायगा।

$$A_{\sigma\tau;\rho} = \frac{\partial A_{\sigma\tau}}{\partial x_{\rho}} - \Gamma^{\alpha}_{\sigma\rho} A_{\alpha\tau} - \Gamma^{\alpha}_{\tau\rho} A_{\sigma\alpha} \quad \ldots\ldots\ldots (78)$$

सहचर अवकलन के व्यापक नियम को स्पष्टतः समझने के लिए हम यहाँ एक-समान क्रियाओं द्वारा प्राप्त किये हुए दो सहचर व्युत्पन्न लिखेंगे—

$$A^{\tau}_{\sigma;\rho} = \frac{\partial A^{\tau}_{\sigma}}{\partial x_{\rho}} - \Gamma^{\alpha}_{\sigma\rho} A^{\tau}_{\alpha} + \Gamma^{\tau}_{\alpha\rho} A^{\alpha}_{\sigma} \quad \ldots \quad \ldots \quad (79)$$

$$A^{\sigma\tau}_{;\rho} = \frac{\partial A^{\sigma\tau}}{\partial x_{\rho}} + \Gamma^{\sigma}_{\alpha\rho} A^{\alpha\tau} + \Gamma^{\tau}_{\alpha\rho} A^{\sigma\alpha} \quad \ldots \quad (80)$$

इनसे निर्माण का व्यापक नियम स्पष्ट हो जाता है। इन्हीं सूत्रों से हम कुछ अन्य सूत्र भी प्राप्त करेंगे जो इस सिद्धान्त के भौतिक उपयोगों के लिए लाभदायक होंगे।

यदि $A_{\sigma\tau}$ विषमसंमित हो तो हमें चक्रीय व्यतिहार (cyclic interchange) करके जोड़ने से यह टेन्सर मिलेगा—

$$A_{\sigma\tau\rho} = \frac{\partial A_{\sigma\tau}}{\partial x_{\rho}} + \frac{\partial A_{\rho\tau}}{\partial x_{\sigma}} + \frac{\partial A_{\rho\sigma}}{\partial x_{\tau}} \quad \ldots \quad \ldots \quad (81)$$

यह भी समस्त संकेतांक-युग्मों के लिए विषम-संमित है।

यदि (78) में हम $A_{\sigma\tau}$ के स्थान में मूल-टेन्सर $g_{\sigma\tau}$ रख दें तो दक्षिण पक्ष स्वतः ही शून्य हो जाता है और (80) में $g^{\sigma\tau}$ रख देने से भी ऐसा ही होगा।

अर्थात् मूल-टेन्सर के सहचर व्युत्पन्नों का मान शून्य होता है। स्थानीय निर्देशांक-तंत्र के उपयोग से तो प्रत्यक्ष प्रगट हो जाता है कि ऐसा होना बिलकुल आवश्यक है।

यदि $A^{\sigma\tau}$ विषय संमित हो तो (80) का τ तथा ρ की अपेक्षा आकुंचन करने से हम देखेंगे कि—

$$\mathcal{A}^{\sigma} = \frac{\partial \mathcal{A}^{\sigma\tau}}{\partial x_{\tau}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \quad (82)$$

सामान्य परिस्थिति में τ तथा ρ की अपेक्षा आकुंचन करके (79) तथा (80) से निम्न समीकरण प्राप्त होंगे—

$$\mathcal{A}_{\sigma} = \frac{\partial \mathcal{A}^{\alpha}_{\sigma}}{\partial x_{\alpha}} - \Gamma^{\alpha}_{\sigma\beta} \mathcal{A}^{\beta}_{\alpha} \quad \ldots\ldots\ldots \quad (83)$$

$$\mathcal{A}^{\sigma} = \frac{\partial \mathcal{A}^{\sigma\alpha}}{\partial x_{\alpha}} + \Gamma^{\sigma}_{\alpha\beta} \mathcal{A}^{\alpha\beta} \quad \ldots\ldots\ldots \quad (84)$$

रीमान-टेन्सर (Riemann Tensor)—यदि हमें एक वक्र ऐसा दिया हुआ है जो सांतत्यक continuum के बिन्दु P से बिन्दु G तक विस्तृत है तो P पर जो सदिश
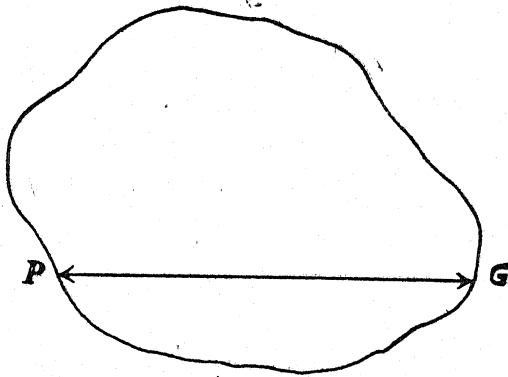
चित्र—४

A^{μ} दिया हुआ है वही समान्तर विस्थापन के द्वारा वक्र का अनुसरण करके G पर

पहुँचाया जा सकता है। यदि सांतत्यक यूक्लिडीय हो (अधिक व्यापक रूप में यदि निर्देशांकों के समुचित निर्वाचन के कारण समस्त $g_{\mu\nu}$ अचर हो जावें) तो ऐसे विस्थापन के द्वारा G पर जो सदिश प्राप्त होगा वह P और G को जोड़ने वाले चक्र के निर्वाचन पर अवलम्बित नहीं होगा। फलतः ऐसी परिस्थिति में यदि किसी सदिश A^{μ} को संवृत (बंद) वक्र के किसी बिन्दु P से उस वक्र के मार्ग से पुनः P पर ही पहुँचा दिया जाय तो उस सदिश में परिवर्तन $\triangle A^{\mu}$ केवल दिशा का होगा, परिमाण का नहीं। अब हम इस सदिश परिवर्तन

$$\triangle A^{\mu} = \oint \delta A^{\mu}$$

का परिकलन करेंगे। जैसे किसी सदिश के संवृत वक्रानुगामी चाक्रिक रेखा-अनुकल (line-integral) सम्बन्धी स्टोक के प्रमेय (Stoke's Theorem) में किया जाता है, उसी तरह इस समस्या को भी अनन्त सूक्ष्म रैखिक परिमाण के संवृत वक्र के अनुगामी चाक्रिक अनुकल का रूप दिया जा सकता है। हम अपना विवेचन केवल इसी समस्या तक सीमित रखेंगे।

पहले तो (67) के अनुसार,

$$\triangle A^{\mu} = -\oint \Gamma^{\mu}_{\alpha\beta} A^{\alpha} dx_{\beta}$$

इसमें $\Gamma^{\mu}_{\alpha\beta}$ अनुकल-पथ के किसी चर बिन्दु G पर इस राशि का मान है। यदि हम लिख दें कि—

$$\xi^{\mu} = (x_{\mu})_G - (x_{\mu})_P$$

और $\Gamma^{\mu}_{\alpha\beta}$ के P बिन्दुवाले मान को $\overline{\Gamma^{\mu}_{\alpha\beta}}$ के द्वारा व्यक्त करें तो पर्याप्त यथार्थता पूर्वक

$$\Gamma^{\mu}_{\alpha\beta} = \overline{\Gamma^{\mu}_{\alpha\beta}} + \overline{\frac{\partial \Gamma^{\mu}_{\alpha\beta}}{\partial x_{\nu}}} \xi^{\nu}$$

और मान लीजिए कि उस वक्र के अनुगामी पथ से P से G तक के समान्तर विस्थापन द्वारा $\overline{A^{\alpha}}$ से जो मान प्राप्त होता है वह A^{α} है। अब (67) की सहायता से यह प्रमाणित करना सुगम है कि $A^{\mu} - \overline{A^{\mu}}$ तो प्रथम कोटि (First order) की अनन्त-सूक्ष्म राशि है, किन्तु प्रथम कोटि के अनन्त-सूक्ष्म परिमाणवाले वक्र के लिए $\triangle A^{\mu}$ द्वितीय कोटि (Second order) की अनन्त-सूक्ष्म राशि है। अतः हम यदि कहें कि—

$$A^{\alpha} = \overline{A^{\alpha}} - \overline{\Gamma^{\alpha}_{\sigma T}}\ \overline{A^{\sigma}}\ \xi^{\overline{T}}$$

तो भूल द्वितीय कोटि की ही होगी।

अब यदि उस अनुकल में हम $\Gamma^{\mu}_{\alpha\beta}$ तथा A^{α} के ये मान निविष्ट कर दें तो द्वितीय कोटि से उच्चतर कोटियों की सूक्ष्म राशियों को उपेक्षणीय समझने से

$$\triangle A^{\mu} = -\left(\frac{\partial \Gamma^{\mu}_{\sigma\beta}}{\partial x_{\alpha}} - \Gamma^{\mu}_{\rho\beta}\ \Gamma^{\rho}_{\sigma\alpha}\right) A^{\sigma} \oint \xi^{\alpha}\, d\xi^{\beta} \quad . \quad . \quad (85)$$

अनुकलन चिह्न की अधीनता से जो राशि हटा दी गयी है उसका सम्बन्ध बिन्दु P से है। अनुकल्य (Integrand) में से $\frac{1}{2} d\,(\xi^{\alpha}\xi^{\beta})$ को घटाने पर

$$\tfrac{1}{2}\oint \left(\xi^{\alpha}\, d\xi^{\beta} - \xi^{\beta}\, d\xi^{\alpha}\right)$$

का मान ज्ञात हो जायगा।

द्वितीय कोटि का यह विषम-संमित टेन्सर $f^{\alpha\beta}$ उस वक्र से परिसीमित पृष्ठ-खंड के स्थान तथा परिमाण को व्यक्त करता है। यदि (85) में कोष्ठक-गत व्यंजक संकेतांक α, β की अपेक्षा विषम-संमित हो तो (85) ही से उसका टेन्सर-लक्षण प्रगट हो जायगा। यह काम संकलन के संकेतांकों (α, β) का व्यतिहार करने से प्राप्त समीकरण को (85) में जोड़ने से हो सकता है। तब हम देखेंगे कि—

$$2\triangle A^{\mu} = -R^{\mu}_{\sigma\alpha\beta} \; A^{\sigma} f^{\alpha\beta} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (86)$$

जिसमें $$R^{\mu}_{\sigma\alpha\beta} = -\frac{\partial\Gamma^{\mu}_{\sigma\alpha}}{\partial x_{\beta}} + \frac{\partial\Gamma^{\mu}_{\sigma\beta}}{\partial x_{\alpha}} + \Gamma^{\mu}_{\rho\alpha}\,\Gamma^{\rho}_{\alpha\beta} - \Gamma^{\mu}_{\rho\beta}\cdot\Gamma^{\rho}_{\sigma\alpha} \quad (87)$$

$R^{\mu}_{\sigma\alpha\beta}$ का टेन्सर-लक्षण (86) से प्रगट हो जाता है। यह चतुर्थ कोटि का रीमानीय वक्रता-टेन्सर (Riemann curvature tensor) है। इसके संमितीय लक्षणों के विवेचन की आवश्यकता नहीं है। यदि हम निर्वाचित निर्देशांकों की वास्तविकता की उपेक्षा करें तो सांतत्यक के यूक्लिडीय होने के लिए पर्याप्त प्रतिबंध इतना ही है कि इस टेन्सर का मान शून्य हो।

इस रीमान टेन्सर का μ, β संकेतांकों की अपेक्षा आकुंचन करने से हमें द्वितीय कोटि का संमित टेन्सर

$$R_{\mu\nu} = -\frac{\partial\Gamma^{\alpha}_{\mu\nu}}{\partial x_{\alpha}} + \Gamma^{\alpha}_{\mu\beta}\Gamma^{\beta}_{\nu\alpha} + \frac{\partial\Gamma^{\alpha}_{\mu\alpha}}{\partial x_{\nu}} - \Gamma^{\alpha}_{\mu\nu}\Gamma^{\beta}_{\alpha\beta} \quad \ldots \ldots \quad (88)$$

प्राप्त हो जाता है। यदि निर्देशांक-तंत्र का निर्वाचन ऐसा किया जाय कि $g =$ अचर हो तो अंत के दो पद शून्य हो जायेंगे। $R_{\mu\nu}$ से हम अदिष्ट

$$R = g^{\mu\nu} R_{\mu\nu} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (89)$$

बना सकते हैं।

सरलतम अल्पान्तरी (Geodesic) **रेखाएँ**—एक रेखा ऐसी भी बनायी जा सकती है कि उसके उत्तरोत्तरवर्ती सूक्ष्म-खंड पारस्परिक समान्तर विस्थापन द्वारा प्राप्त किये जायँ। यही यूक्लिडीय ज्यामिति की सरल रेखा का स्वाभाविक व्यापकीकरण है। ऐसी रेखा के लिए

$$\delta\left(\frac{dx_{\mu}}{ds}\right) = -\Gamma^{\mu}_{\alpha\beta}\frac{\partial x_{\alpha}}{ds}\,dx_{\beta}$$

इसके वामपक्ष के स्थान में $\frac{d^2 x_\mu}{ds^2}$ *लिखना होगा और तब इस समीकरण का रूप हो जायगा—

$$\frac{d^2 x_\mu}{ds^2} + \Gamma^{\mu}_{\alpha\beta} \frac{dx_\alpha}{ds} \cdot \frac{dx_\beta}{ds} = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad (90)$$

यदि हम ऐसी रेखा का पता लगायें कि जिस पर दो बिन्दुओं के बीच में अनुकल

$$\int ds \quad \text{अथवा} \quad \int \sqrt{g_{\mu\nu}\, dx_\mu\, dx_\nu}$$

का मान स्थावर (Stationary) हो तो भी हमें यही रेखा मिलेगी (अल्पान्तरी रेखा)।

* वक्र पर स्थित किसी भी दिये हुए बिन्दु के दिशा-सदिश (direction vector) का रेखा-खंड (dx_β) के अनुगामी समान्तर विस्थापन करने से निकटवर्ती बिन्दु का दिशा-सदिश प्राप्त हो जाता है।

अध्याय ४

आपेक्षिकता का व्यापक सिद्धान्त

(द्वितीय खंड)

आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त के लिए आवश्यक गणितीय सामग्री अब हमें प्राप्त हो गयी है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन को क्रमबद्ध पूर्णता देने का प्रयत्न नहीं किया जायगा, किन्तु ज्ञात तथ्यों से तथा प्राप्त फलों की सहायता से कुछ विशिष्ट परिणामों का तथा संभावनाओं का उत्तरोत्तर विकास किया जायगा। हमारे ज्ञान की वर्तमान अपूर्ण तथा अस्थायी अवस्था को देखते हुए ऐसा ही प्रतिपादन सब से अच्छा रहेगा।

जिस द्रव्य-कण पर कोई बल न लग रहा हो वह अवस्थित्व के नियमानुसार, एक समान वेग से सरल रेखा पर गमन करता है। विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त में काल-निर्देशांक वास्तविक होता है और उसके चतुर्विमितीय सांतत्यक में गमन-पथ की यह सरल रेखा भी वास्तविक होती है। निश्चरों के व्यापक (रीमानीय) सिद्धान्त की विचारधारा से उस सरल रेखा का स्वाभाविक अर्थात् सबसे सुगम और अर्थपूर्ण व्यापकीकरण वह सरलतम रेखा है जो अल्पान्तरी (geodesic) कहलाती है। इसलिए हमें यह संकल्पना करनी पड़ती है कि तुल्यता के सिद्धान्त की दृष्टि से, केवल अवस्थित्व तथा गुरुत्व की उपस्थिति में द्रव्य-कण का गति समीकरण होगा—

$$\frac{d^2x_\mu}{ds^2}+\Gamma^\mu_{\alpha\beta}\frac{dx_\alpha}{ds}\cdot\frac{dx_\beta}{ds}=0 \qquad \dots \qquad \dots \qquad (90)$$

वस्तुतः यदि गुरुत्वीय क्षेत्र के समस्त घटक $\Gamma^\mu_{\alpha\beta}$, शून्य हो जायँ तो यही समीकरण सरल रेखा का समीकरण बन जाता है।

इन समीकरणों से न्यूटन के गति-समीकरणों का सम्बन्ध किस प्रकार का है ? विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार किसी अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा (अर्थात् ज़ब काल-निर्देशांक वास्तविक हो और ds^2 के चिह्न का समुचित निर्वाचन किया गया हो) $g_{\mu\nu}$ तथा $g^{\mu\nu}$ इन दोनों ही के मान हो जायेंगे--

$$\left.\begin{matrix} -1 & 0 & 0 & 0 \\ 0 & -1 & 0 & 0 \\ 0 & 0 & -1 & 0 \\ 0 & 0 & 0 & -1 \end{matrix}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (91)$$

तब गति-समीकरण हो जायगा

$$\frac{d^2 x_\mu}{ds^2} = 0$$

इसे हम $g_{\mu\nu}$ --क्षेत्र का "प्रथम सन्निकटन" कहेंगे। सन्निकटनों का विचार करते समय बहुधा यह लाभदायक होता है कि विशिष्ट आपेक्षिकता--सिद्धान्त के समान ही किसी काल्पनिक x_4 --निर्देशांक का उपयोग किया जाय क्योंकि तब प्रथम सन्निकटन तक $g_{\mu\nu}$ का मान

$$\left.\begin{matrix} -1 & 0 & 0 & 0 \\ 0 & -1 & 0 & 0 \\ 0 & 0 & -1 & 0 \\ 0 & 0 & 0 & -1 \end{matrix}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (91a)$$

हो जाता है।

इन मानों को एकत्र करने से जो अनुबंध प्राप्त होता है वह है

$$g_{\mu\nu} = -\delta_{\nu\mu}$$

तब द्वितीय सन्निकटन तक हम लिख सकते हैं कि

$$g_{\mu\nu} = \delta_{\mu\nu} + \gamma_{\mu\nu} \quad \ldots \quad \ldots \quad (92)$$

जहां $\gamma_{\mu\nu}$ को हमें प्रथम कोटि की स्वल्प राशियां समझना होगा।

अतः हमारे गति समीकरण के दोनों पद प्रथम कोटि की स्वल्प राशियां हैं। यदि हम उन पदों को उपेक्षणीय समझ लें जो इनकी तुलना में कोटि श्रेणी की स्वल्प राशियां हैं तो हमें लिखना पड़ेगा कि—

$$ds^2 = -dx^2_{\nu} = dl^2 (1 - q^2) \quad \ldots \quad \ldots \quad (93)$$

$$\Gamma^{\mu}_{\alpha\beta} = -\delta_{\mu\alpha}\begin{bmatrix}\alpha\beta\\ \sigma\end{bmatrix} = -\begin{bmatrix}\alpha\beta\\ \mu\end{bmatrix}$$

$$= \tfrac{1}{2}\left(\frac{\partial\gamma_{\alpha\beta}}{\partial x_{\mu}} - \frac{\partial\gamma_{\alpha\beta}}{\partial x_{\beta}} - \frac{\partial\gamma_{\beta\mu}}{\partial x_{\alpha}}\right) \quad \ldots \quad (94)$$

अब हम एक दूसरे ही प्रकार के सन्निकटन का उपयोग करेंगे। मान लीजिए कि द्रव्यकण का वेग प्रकाश के वेग की तुलना में बहुत कम है। तब ds काल-अवकल dl के बराबर ही हो जायगा। इसके अतिरिक्त $\frac{dx_4}{ds}$ की तुलना में $\frac{dx_1}{ds}$, $\frac{dx_2}{ds}$, $\frac{dx_3}{ds}$ भी शून्य ही हो जायेंगे। और हम यह भी मान लेंगे कि गुरुत्वीय क्षेत्र का काल-सापेक्ष परिवर्तन इतना थोड़ा होता है कि $\gamma_{\mu\nu}$ के x_4–सापेक्ष व्युत्पन्न भी उपेक्षणीय समझे जा सकते हैं। तब $\mu = 1, 2, 3$ के लिए गतिसमीकरण हो जायगा

$$\frac{d^2x_{\mu}}{dl^2} = \frac{\partial}{\partial x_{\mu}}\left(\frac{\gamma_{44}}{2}\right) \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (90a)$$

यह समीकरण और गुरुत्वीय क्षेत्र में द्रव्य-कण का न्यूटनीय गति-समीकरण बिलकुल अभिन्न हो जाते हैं यदि हम यह स्वीकार कर लें कि $\left(\frac{\gamma_{44}}{2}\right)$ ही गुरुत्वीय क्षेत्र का विभव (potential) है। ऐसा करना तर्कसंगत समझा जा सकता है या नहीं, यह बात स्वभावतः ही गुरुत्व के क्षेत्र-समीकरणों पर निर्भर है। अर्थात् यह इस बात पर निर्भर है कि यह राशि प्रथम सन्निकटन तक क्षेत्र के उन्हीं नियमों का पालन करती है या नहीं जिनका पालन गुरुत्वीय क्षेत्र न्यूटन के सिद्धान्त में करता है। (90) तथा (90a) पर दृष्टिपात करते ही यह प्रगट हो जाता है कि $\Gamma^{\mu}_{\beta\alpha}$ वास्तव में वही काम करते हैं जो गुरुत्वीय क्षेत्र की तीव्रता (intensity) करती है। इन राशियों में टेन्सर-लक्षण विद्यमान नहीं हैं।

समीकरण (90) द्रव्य-कण पर अवस्थितित्व तथा गुरुत्व के प्रभाव को प्रगट करते हैं। वैधानिक रीति से अवस्थितित्व और गुरुत्व की एकता इस बात से प्रगट होती है कि निर्देशांकों के किसी भी रूपान्तरण के लिए (90) का पूरा वामपक्ष तो टेन्सर-लक्षण युक्त है, किन्तु उसके दोनों पद अलग-अलग टेन्सर-लक्षण युक्त नहीं हैं। न्यूटन के समीकरणों से तुलना करने से प्रथम पद तो अवस्थितित्व का प्रतीक समझा जा सकता है और द्वितीय पद गुरुत्वीय बल का।

इसके बाद गुरुत्वीय क्षेत्र के नियमों के अन्वेषण का प्रयत्न आवश्यक है। इसके लिए न्यूटन के सिद्धान्त का पायसाँ (Poisson) का समीकरण

$$\triangle \phi = 4\pi K\rho$$

अवश्य ही अनुकरणीय समझा जा सकता है। यह समीकरण इस धारणा के आधार पर प्राप्त हुआ है कि गुरुत्वीय क्षेत्र भार युक्त (ponderable) द्रव्य के घनत्व का परिणाम है। आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त में भी यही धारणा मान्य होनी चाहिए। किन्तु आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धान्त सम्बंधी अन्वेषणों से यह ज्ञात हो गया है कि द्रव्य के अदिष्ट घनत्व के स्थान में हमें ऊर्जा-घनत्व (ऊर्जा प्रतिमात्रक आयतन) के टेन्सर का उपयोग करना चाहिए। इस टेन्सर से केवल भारयुक्त द्रव्य की ऊर्जा का टेन्सर ही नहीं समझना चाहिए, किन्तु विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा का टेन्सर भी उसमें सम्मिलित है। वस्तुतः हम यह भी देख चुके हैं कि अधिक पूर्ण विश्लेषण करने पर ऊर्जा-टेन्सर द्रव्य के निरूपण के लिए केवल एक अन्तरिम (provisional) साधन ही समझा जा सकता है। वास्तव में द्रव्य विद्युत् के आविष्ट कणों से बना हुआ है और स्वयं उसे भी विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र का ही एक अंश—वस्तुतः मुख्य अंश—समझना चाहिए। केवल संघनित (concentrated) आवेशों के विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र सम्बंधी हमारे अपर्याप्त ज्ञान के ही कारण ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी कि हमें सिद्धान्त के प्रतिपादन में इस टेन्सर के यथार्थ रूप को अनिर्णीत ही छोड़ देने के लिए बाध्य होना पड़ा था। इस दृष्टि-कोण से इस समय तो यही उचित है कि हम द्वितीय कोटि का एक ऐसा टेन्सर $T_{\mu\nu}$ प्रस्तुत करें कि जिसकी संरचना चाहे अभी ज्ञात न हो फिर भी जो विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के तथा भारयक्त द्रव्य के ऊर्जा-घनत्वों का कम से कम अन्तरिम रूप से तो सम्मेलन कर सके। आगामी विवेचन में हम इसे "द्रव्य के ऊर्जा-टेन्सर" के नाम से व्यक्त करेंगे।

हमारे पूर्व वर्णित परिणामों के अनुसार संवेग और ऊर्जा के नियम इस कथन के द्वारा व्यक्त किये जाते हैं कि इस टेन्सर का अपसरण (divergence) शून्य होता है (47c)। आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त में भी यह संकल्पना करनी पड़ेगी कि इसी

का अनुरूपी व्यापक सहचर समीकरण मान्य है। यदि $(T_{\mu\nu})$ द्रव्य का सहचर ऊर्जा-टेन्सर हो, और $\mathfrak{T}_{\sigma}^{\nu}$ अनुरूपी मिश्र टेन्सर-घनत्व हो तो (83) के अनुसार यह आवश्यक होगा कि

$$0 = \frac{\partial \mathfrak{T}_{\sigma}^{\alpha}}{\partial x_{\alpha}} - \Gamma_{\sigma\beta}^{\alpha} \mathfrak{T}_{\alpha}^{\beta} \quad \dots \quad \dots \quad \dots \quad (95)$$

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि द्रव्य के ऊर्जा-घनत्व के अतिरिक्त विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र का ऊर्जा-घनत्व भी दिया रहना चाहिए ताकि अकेले द्रव्य के ऊर्जा और संवेग की अविनाशिता के सिद्धान्तों का प्रश्न ही न उठ सके। यह बात गणितीय भाषा में (95) के द्वितीय पद के अस्तित्व के द्वारा प्रगट होती है। इस पद के कारण (49) के सदृश अनुकल समीकरण के अस्तित्व का अनुमान ही असंभव हो जाता है। गुरुत्वीय क्षेत्र द्रव्य में संवेग तथा ऊर्जा पहुंचाता है क्योंकि वह उस पर बल लगाता है और उसे ऊर्जा देता है। यह बात (95) के द्वितीय पद के द्वारा प्रगट होती है।

यदि आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त में भी पायसाँ (Poisson) के समीकरण का अनुरूपी समीकरण संभव हो तो वह गुरुत्वीय विभव के टेन्सर $g_{\mu\nu}$ का ही टेन्सर-समीकरण होना चाहिए और उसके दक्षिण पक्ष में द्रव्य का ऊर्जा–टेन्सर विद्यमान रहना चाहिए। और उसके वाम पक्ष में $g_{\mu\nu}$ के पदोंवाला अवकल-टेन्सर होना चाहिए। इस अवकल-टेन्सर का पता लगाना आवश्यक है। यह निम्नलिखित तीन प्रतिबंधों द्वारा पूर्णतः निर्णीत हो सकता है।

(१) उसमें $g_{\mu\nu}$ के अवकल-गुणांक द्वितीय से ऊंचे वर्ण (order) के नहीं होने चाहिए।

(२) इन द्वितीय वर्ण के अवकल-गुणांकों की अपेक्षा वह रैखिक (अथवा एक-घाती) होना चाहिए।

(३) उसका अपसरण (divergence) सर्वसमतः (identically) शून्य होना चाहिए।

इन में से प्रथम दो प्रतिबंध तो स्वाभाविक रूप से पायसाँ के समीकरण से ही लिये गये हैं। गणित द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि रीमान के टेन्सर

से ऐसे समस्त अवकल-टेन्सर बीजीय क्रिया से ही (बिना अवकलन के) प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए अभीष्ट टेन्सर

$$R_{\mu\nu} + a g_{\mu\nu} R$$

के रूप का होना चाहिए जिसमें $R_{\mu\nu}$ तथा R समी० (88) और (89) के द्वारा निर्धारित किये गये हैं। और यह भी प्रमाणित किया जा सकता है कि तीसरे प्रतिबंध के अनुसार यह आवश्यक है कि a का मान $-\frac{1}{2}$ ही हो। अतः गुरुत्वीय क्षेत्र के नियम के लिए हमें यह समीकरण प्राप्त हो जाता है—

$$R_{\mu\nu} - \tfrac{1}{2} g_{\mu\nu} R = -\kappa T_{\mu\nu} \quad \ldots\ldots \quad \ldots\ldots \quad (96)$$

समी० (95) इसी समीकरण का परिणाम है। इसमें κ एक नियतांक है जो न्यूटन के गुरुत्वीय नियतांक से संबंधित है।

अब मैं इस सिद्धान्त के सम्बंध की उन बातों की चर्चा करूँगा जो भौतिकी के दृष्टि-कोण से रोचक हैं और इसमें गणित की अपेक्षाकृत जटिल क्रियाओं का यथासंभव कम उपयोग करूँगा। पहले तो यह प्रमाणित करना आवश्यक है कि वामपक्ष का अपसरण वास्तव में शन्य हो जाता है। द्रव्य का ऊर्जा-नियम (83) के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

$$0 = \frac{\partial \mathfrak{T}_\sigma^\alpha}{\partial x_\alpha} \Gamma_{\sigma\beta}^\alpha \mathfrak{T}_\alpha^\beta \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \quad (97)$$

जिसमें $\mathfrak{T}_\sigma^\alpha = T_{\sigma\tau}\, g^{\tau\alpha}\sqrt{-g}$

(96) के वामपक्ष पर भी इसी के अनुरूप क्रिया करने से एक सर्वसमता (identity) प्राप्त हो जायगी।

प्रत्येक विश्व-बिन्दु (world-point) के आसपास के प्रदेश में ऐसे निर्देशांक-तंत्रों का निर्वाचन सम्भव हैं जिनमें यदि निर्देशांक x_μ काल्पनिक लिया जाय तो उस बिन्दु पर

$$g_{\mu\nu} = g^{\mu\nu} = -\delta_{\mu\nu} \begin{cases} = -1 & \text{यदि } \mu = \nu \\ = 0 & \text{यदि } \mu \neq \nu \end{cases}$$

हो जायगा और $g_{\mu\nu}$ तथा $g^{\mu\nu}$ के प्रथम व्युत्पन्न शून्य हो जायेंगे। अब हम इस बात

का सत्यापन करेंगे कि इस बिन्दु पर वामपक्ष के अपसरण का मान शून्य हो जाता है। इस बिन्दु पर $\Gamma^{\alpha}_{\sigma\beta}$ के घटक तो शून्य हो ही जाते हैं। अतः हमें केवल इतना ही प्रमाणित करना है कि

$$\frac{\partial}{\partial x_{\sigma}}\left[\sqrt{-g}\cdot g^{\nu\sigma}\left(R_{\mu\nu} - 2g_{\mu\nu}R\right)\right]$$

भी शून्य हो जाता है। इस व्यंजक में (88) तथा (70) को निविष्ट करने से हम देखेंगे कि केवल वे ही पद बच रहते हैं जिनमें $g_{\mu\nu}$ के तृतीय व्युत्पन्न उपस्थित हैं। और $g_{\mu\nu}$ के स्थान में $-\delta_{\mu\nu}$ तो रखना ही पड़ेगा। अतः अन्त में केवल थोड़े से पद बच जायेंगे और यह समझना सुगम है कि ये पद भी एक दूसरे को नष्ट कर देते हैं। यह भी स्पष्ट है कि हमारी प्राप्त की हुई इस राशि में टेन्सर-लक्षण विद्यमान होने के कारण किसी भी अन्य निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा तथा स्वभावतः किसी भी अन्य चतुर्विमितीय बिन्दु के लिए भी उसका शून्य होना प्रमाणित हो जाता है। इस प्रकार प्रगट हो जाता है कि द्रव्य का ऊर्जा-नियम (97) क्षेत्र-समीकरण (96) का ही गणितीय फल है।

समीकरण (96) में अनुभव से सांगत्य है या नहीं यह जानने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता तो यह देखने की है कि इनके प्रथम सन्निकटन से न्यूटन का सिद्धान्त प्राप्त हो जाता है या नहीं। इस काम के लिए हमें इन समीकरणों में कई सन्निकटनों का उपयोग करना पड़ेगा। यह तो हम पहले से ही जानते हैं कि ग्रह-मंडल के सदृश विस्तीर्ण प्रदेशों में किसी विशेष सन्निकटन तक तो यूक्लिड की ज्यामिति मान्य है ही तथा प्रकाश-वेग की नियत-मानता का नियम भी यथार्थ हैं। यदि विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त समान ही हम चतुर्थ निर्देशांक को काल्पनिक मान लें तो हमें लिखना पड़ेगा कि——

$$g_{\mu\nu} = -\delta_{\mu\nu} + \gamma_{\mu\nu} \quad \ldots\ldots\ldots \quad (98)$$

जहां 1 की तुलना में $\gamma_{\mu\nu}$ इतने छोटे हैं कि हम $\gamma_{\mu\nu}$ के उच्चतर घातों तथा उनके व्युत्पन्नों को उपेक्षणीय समझ सकते हैं। ऐसा करने से गुरुत्वीय क्षेत्र के अथवा खगोलीय विस्तारवाले मापीय आकाश के विषय में तो हमें कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता, किन्तु यह बात हम अवश्य जान सकते हैं कि भौतिक घटनाओं पर निकटवर्ती द्रव्यपुंजों का क्या प्रभाव पड़ता है।

इस सन्निकटन की क्रिया का प्रारम्भ करने से पहले (96) का रूपान्तरण कर लेना आवश्यक है। (96) को $g^{\mu\nu}$ से गुणा करके μ,ν के समस्त मानों के लिए जोड़ लीजिए। तब $g^{\mu\nu}$ की परिभाषा से प्राप्त अनुबंध--

$$g_{\mu\nu} g^{\mu\nu} = 4$$

के कारण यह समीकरण प्राप्त हो जायगा —

$$R = \kappa g^{\mu\nu} T_{\mu\nu} = \kappa T$$

यदि R का यह मान (96) में निविष्ट कर दिया जाय तो

$$R_{\mu\nu} = -\kappa \left(T_{\mu\nu} - \tfrac{1}{2} g_{\mu\nu} T \right) = -\kappa T^{*}_{\mu\nu} \quad . \quad . \quad . \quad (96a)$$

अब उपर्युक्त सन्निकटन की क्रिया करने से वामपक्ष हो जायगा--

$$-\tfrac{1}{2} \left(\frac{\partial^2 \gamma_{\mu\nu}}{\partial x^2_{\alpha}} + \frac{\partial^2 \gamma_{\alpha\alpha}}{\partial x_{\mu} \partial x_{\nu}} - \frac{\partial^2 \gamma_{\mu\alpha}}{\partial x_{\nu} \partial x_{\alpha}} - \frac{\partial^2 \gamma_{\nu\alpha}}{\partial x_{\mu} \partial x_{\alpha}} \right)$$

अथवा $- \tfrac{1}{2} \dfrac{\partial^2 \gamma_{\mu\nu}}{\partial x^2_{\alpha}} - \tfrac{1}{2} \dfrac{\partial}{\partial x_{\nu}} \left(\dfrac{\partial \gamma'_{\mu\alpha}}{\partial x_{\alpha}} \right) + \tfrac{1}{2} \dfrac{\partial}{\partial x_{\mu}} \left(\dfrac{\partial \gamma'_{\nu\alpha}}{\partial x_{\alpha}} \right)$

जिसमें $\gamma'_{\mu\nu} = \gamma_{\mu\nu} - \tfrac{1}{2} \gamma_{\sigma\sigma} \delta_{\mu\nu}$ . . . . (99)

लिख दिया गया है।

अब हम देखते हैं कि समीकरण (96) तो किसी भी निर्देशांक-तंत्र के लिए मान्य है। ऊपर जिस निर्देशांक-तंत्र का उपयोग किया गया है उसके निर्वाचन में यह विशिष्टता रखी गयी थी कि विचाराधीन प्रदेश में $g_{\mu\nu}$ के मानों और $-\delta_{\mu\nu}$ के नियत मानों का अन्तर अनन्ततः सूक्ष्म रहे। किन्तु इस प्रतिबंध का पालन तो निर्देशांकों के किसी भी अनन्त सूक्ष्म परिवर्तन में हो ही जायगा। इसलिए अभी भी $\gamma_{\mu\nu}$ के लिए चार प्रतिबंधों का पालन होना आवश्यक है, किन्तु ये प्रतिबंध $\gamma_{\mu\nu}$ के परिमाण की कोटि को नियंत्रित करनेवाले प्रतिबंधों के प्रतिकूल नहीं हो सकते। अब हम यह कल्पना करेंगे कि निर्देशांक-

तंत्र का निर्वाचन इस प्रकार किया गया है कि निम्नलिखित चारों प्रतिबंधों का पालन होता है—

$$O = \frac{\partial \gamma'_{\mu\nu}}{\partial x_\nu} = \frac{\partial \gamma_{\mu\nu}}{\partial x_\nu} - \frac{1}{2}\frac{\partial \gamma_{\sigma\sigma}}{\partial x_\mu} \quad \ldots\ldots\ldots \quad (100)$$

तब (96) का रूप हो जायगा

$$\frac{\partial^2 \gamma_{\mu\nu}}{\partial x^2_\alpha} = 2\kappa T^*_{\mu\nu} \quad \ldots\ldots\ldots \quad (96\,b)$$

ये समीकरण उसी विमन्दित-विभव-विधि (method of retarded potentials) से हल किये जा सकते हैं जिसका व्यवहार विद्युत्-गतिकी (electrodynamics) में किया जाता है। सुगमता से समझे जाने योग्य संकेतन में इस विधि से निम्नलिखित समीकरण प्राप्त हो जायगा—

$$\gamma_{\mu\nu} = -\frac{\kappa}{2\pi}\int \frac{T^*_{\mu\nu}(x_0, y_0, z_0, t-r)}{r}\, dV_0 \quad \ldots \quad (101)$$

इस सिद्धान्त में न्यूटन का सिद्धान्त किस प्रकार गर्भित है यह देखने के लिए हमें द्रव्य के ऊर्जा-टेन्सर पर अधिक विस्तार के सहित विचार करना पड़ेगा। घटना मूलक दृष्टिकोण से यह ऊर्जा-टेन्सर विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के तथा अधिक संकुचित अर्थ में द्रव्य के ऊर्जा-टेन्सरों से निर्मित होता है। यदि हम इस ऊर्जा टेन्सर के विभिन्न भागों पर पारिमाणिक दृष्टिकोण से विचार करें तो विशिष्ट आपेक्षिकता के अनुबंधों से प्रगट हो जायगा कि भारयुक्त द्रव्य की तुलना में विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र का अंशदान व्यावहारिक दृष्टि से नगण्य होता है। हमारी मात्रक पद्धति में एक ग्राम द्रव्य की ऊर्जा का मान १ होता है और इसकी तुलना में विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र की ऊर्जा उपेक्षणीय होती हैं और द्रव्य के विरूपण (deformation) की ऊर्जा तथा रासायनिक ऊर्जा भी उपेक्षणीय होती हैं। इसलिए यदि हम मान लें कि—

$$\left.\begin{aligned} T^{\mu\nu} &= \sigma \frac{dx_\mu}{ds}\cdot\frac{dx_\nu}{ds} \\ ds^2 &= g_{\mu\nu}dx_\mu dx_\nu \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (102)$$

तो हमें ऐसा सन्निकटन मिल जाता है जो हमारे उद्देश्य के लिए पूर्णतः पर्याप्त है। इसमें σ विराम अवस्थावाला घनत्व है अर्थात् यह साधारण दृष्टि से भारयुक्त द्रव्य समझे जानेवाले पदार्थ के घनत्व का वह मान है जो उस द्रव्य की ही गति से चलनेवाले गलीलीय निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा एक मात्रक लम्बाई के माप-दंडों द्वारा नापने से प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि जिस निर्देशांक-तंत्र को अब हमने चुना है उसमें $g_{\mu\nu}$ के स्थान में $-\delta_{\mu\nu}$ रख देने के कारण हम अपेक्षाकृत बहुत ही थोड़ी भूल करेंगे। अतः हम लिख सकते हैं कि—

$$ds^2 = -\sum_{\mu} dx_{\mu}^2 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (102a)$$

हमारे निर्वाचित गलीलीयाभासी (quasi-Galilean) निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा क्षेत्र को उत्पन्न करनेवाले द्रव्य-पुंज चाहे कितने ही तीव्र वेग से गमन करें फिर भी सिद्धान्त का उपर्युक्त विधि द्वारा विकसित रूप मान्य ही रहेगा। किन्तु खगोल विज्ञान में जिन द्रव्य-पुंजों से हमें काम पड़ता है उनके वेग निर्वाचित निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा प्रकाश-वेग की तुलना में सदैव बहुत स्वल्प होते हैं अर्थात् हमारे निर्वाचित काल के मात्रकों में उनके वेग सदैव 1 की अपेक्षा स्वल्प होते हैं। अतः यदि हम (101) में विमन्दित विभव के स्थान में साधारण (अ-विमन्दित) विभव ही रख दें और यदि क्षेत्र के उत्पादक द्रव्य-पुंजों के लिए हम यह मान लें कि—

$$\frac{dx_1}{ds} = \frac{dx_2}{ds} = \frac{dx_3}{ds} = 0\,; \quad \frac{dx_4}{ds} = \frac{\sqrt{-1}\cdot dl}{dl} = \sqrt{-1} \quad (103)$$

तो जो सन्निकटन प्राप्त होगा वह समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए पर्याप्त होगा। और तब $T^{\mu\nu}$ तथा $T_{\mu\nu}$ के जो मान प्राप्त होंगे वे—

$$\left.\begin{matrix} 0 & 0 & 0 & 0 \\ 0 & 0 & 0 & 0 \\ 0 & 0 & 0 & 0 \\ 0 & 0 & 0 & -\sigma \end{matrix}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (104$$

के बराबर होंगे। अर्थात् T का मान तो σ हो जायगा और $T^*_{\mu\nu}$ का मान हो जायगा

$$\left.\begin{matrix} \frac{\sigma}{2} & 0 & 0 & 0 \\ 0 & \frac{\sigma}{2} & 0 & 0 \\ 0 & 0 & \frac{\sigma}{2} & 0 \\ 0 & 0 & 0 & -\frac{\sigma}{2} \end{matrix}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (104a)$$

इस प्रकार (101) से परिणाम निकलेगा कि

$$\left.\begin{aligned} \gamma_{11} = \gamma_{22} = \gamma_{33} &= -\frac{\kappa}{4\pi}\int\frac{\sigma\, dV_0}{r} \\ \gamma_{44} &= +\frac{\kappa}{4\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r} \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (101a)$$

इनके अतिरिक्त अन्य सब $\gamma_{\mu\nu}$ शून्य हो जाते हैं। समीकरण ($90a$) सहित इस अंतिम समीकरण में न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त गर्भित है। यदि हम l के स्थान में ct लिख दें तो—

$$\frac{d^2x_\mu}{dt^2} = \frac{\kappa c^2}{8\pi}\cdot\frac{\partial}{\partial x_\mu}\int\frac{\sigma dV_0}{r} \quad \ldots \quad \ldots \quad (90b)$$

इससे प्रगट होता है कि न्यूटन के गुरुत्वीय नियतांक K में तथा हमारे इन क्षेत्र-समीकरणों में उपस्थित नियतांक κ में सम्बंध यह है—

$$K = \frac{\kappa c^2}{8\pi} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (105)$$

K के ज्ञात संख्यात्मक मान के द्वारा यह परिणाम निकलता है कि—

$$\kappa = \frac{8\pi K}{c^2} = \frac{8\pi \times 6{\cdot}67 \times 10^{-8}}{9 \times 10^{20}} = 1{\cdot}86 \times 10^{-27} \quad \ldots \quad (105a)$$

समी० (101) से यह प्रगट होता है कि प्रथम सन्निकटन में भी गुरुत्वीय क्षेत्र की संरचना (structure) न्यूटन के सिद्धान्त से संगत संरचना से मूलतः भिन्न है। यह भेद इस बात में है कि गुरुत्वीय विभव में टेन्सर के लक्षण हैं, अदिष्ट के नहीं। अब तक हम इस बात से परिचित नहीं हो पाये थे क्योंकि द्रव्य-कणों के गति-समीकरणों में प्रथम सन्निकटन तक केवल घटक g_{44} ही निविष्ट होता है।

हमारे इन परिणामों के द्वारा माप-दंडों और घड़ियों के आचरण का निर्णय कर सकने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। तुल्यता के सिद्धान्त के अनुसार यूक्लिडीय ज्यामिति के मापीय अनुबंध केवल ऐसे कार्तीय निर्देशांक-तंत्र के लिए ही मान्य हैं जिसका विस्तार अनन्ततः सूक्ष्म हो और जिसकी गति समुचित प्रकार की हो (अर्थात् जिसका बिना घूर्णन के निर्बाध पतन (free fall) हो रहा हो)। यही बात हम ऐसे स्थानीय निर्देशांक-तंत्रों के लिए भी कह सकते हैं जिनमें उपर्युक्त तंत्रों के दृष्टिकोण से जो त्वरण विद्यमान हो वह स्वल्प हो और इसलिए उन तंत्रों के लिए भी कह सकते हैं जो हमारे निर्वाचित निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा स्थिर हों। ऐसे किसी भी स्थानीय तंत्र में दो निकटवर्ती बिन्दुओं के लिए

$$ds^2 = -dX_1^2 - dX_2^2 - dX_3^2 + dT^2 = -ds^2 + dT^2$$

जिस माप दंड के द्वारा ds तथा जिस घड़ी के द्वारा dT प्रत्यक्षतः नापे गये हों, वे यदि उस निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा स्थिर हों, तो ये ds और dT ही लम्बाई तथा काल के प्राकृतिक नाप हैं। किन्तु दूसरी ओर परिमित प्रदेशों में प्रयुक्त निर्देशांक x_ν के द्वारा ds^2 को व्यक्त करने का सूत्र है—

$$ds^2 = g_{\mu\nu} dx_\mu dx_\nu$$

अतः यह संभव हो सकता है कि हमें एक ओर तो लम्बाई तथा काल के प्राकृतिक नाप तथा दूसरी ओर निर्देशांकों के अनुरूपी अन्तर, इन दोनों का सम्बंध ज्ञात हो जाय। दोनों ही निर्देशांक-तंत्रों में आकाश और काल का विभेदन एक-सा होने के कारण, ds^2 के दोनों व्यंजकों का समीकरण बनाने से हमें दो अनुबंध प्राप्त होते हैं। और यदि (101*a*) के अनुसार यह लिख दें कि—

$$ds^2 = -\left(1 + \frac{\kappa}{4\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r}\right)(dx_1^2 + dx_2^2 + dx_3^2) + \lambda\left(1 - \frac{\kappa}{4\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r}\right) dl^2$$

तो, यथेष्ट सन्निकटन तक, ये अनुबंध होंगे—

$$\left.\begin{aligned} \sqrt{dX_1^2 + dX_2^2 + dX_3^2} &= \left(1 + \frac{\kappa}{8\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r}\right)\sqrt{dx_1^2 + dx_2^2 + dx_3^2} \\ dT &= \left(1 - \frac{\kappa}{8\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r}\right) dl \end{aligned}\right\} \quad \ldots\ldots \quad (106)$$

अतः हमारे निर्वाचित निर्देशांक तंत्र की अपेक्षा मात्रक मापदंड की लम्बाई होगी

$$1 - \frac{\kappa}{8\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r}$$

जिस विशेष निर्देशांक-तंत्र का हमने निर्वाचन किया है उससे यह निश्चित हो जाता है कि यह लम्बाई केवल स्थान पर ही निर्भर होगी, दिशा पर नहीं। यदि हम अन्य किसी निर्देशांक-तंत्र को चुन लेते तो यह बात नहीं होती। किन्तु निर्देशांक-तंत्र का चुनाव हम चाहे किसी भी प्रकार क्यों न करें, परिदृढ़ छड़ों के संरूपण-नियम (laws of configuration) यूक्लिडीय ज्यामिति के नियमों से संगत नहीं हो सकते। अथवा यों कहिए कि हमें कोई भी निर्देशांक-तंत्र ऐसा नहीं मिल सकता जिससे किसी भी दिशा में अनुन्यस्त (oriented) मात्रक मापदंड के दोनों सिरों के निर्देशांकों के अन्तर ($\triangle x_1, \triangle x_2, \triangle x_3$) सदैव इस प्रतिबंध का पालन करें कि—

$$\triangle x_1^2 + \triangle x_2^2 + \triangle x_3^2 = 1$$

इस दृष्टि-कोण से आकाश यूक्लिडीय नहीं है, किन्तु "वक्र" (curved) है। और (106) के द्वितीय अनुबंध के अनुसार हमारी मात्रक घड़ी की टिकटिकों का प्राकृतिक कालान्तराल ($dT=1$), हमारे निर्वाचित निर्देशांक-तंत्र के मात्रकों में हो जायगा—

$$1 + \frac{\kappa}{8\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r}$$

अतः इस घड़ी के आसपासवाले भारयुक्त द्रव्य का जितना ही अधिक द्रव्यमान होगा उतनी ही मन्द इस घड़ी की चाल हो जायगी। इससे हम यह निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं कि सूर्य के पृष्ठ पर जो स्पैक्ट्रमीय रेखाएँ उत्पन्न होती हैं वे स्पैक्ट्रम में रक्तवर्ण की ओर विस्थापित हो जायेंगी और पृथ्वी पर उत्पन्न अनुरूपी रेखाओं की तुलना में यह विस्थापन लगभग 2×10^{-6} तरंग-दैर्घ्य (wave-length) के बराबर होगा। पहले तो इस सिद्धान्त का यह महत्त्वपूर्ण परिणाम प्रेक्षण-विरुद्ध दिखाई दिया, किन्तु पिछले कई वर्षों में जो प्रेक्षण किये गये हैं उनके परिणामों ने इस प्रभाव के अस्तित्व को अधिकाधिक प्रायिकत्वपूर्ण (probable) बना दिया है और अब इसमें सन्देह करना कठिन है कि आगामी कुछ ही वर्षों में इस सिद्धान्त के इस परिणाम का सत्यापन अवश्य हो जायगा।

इस सिद्धान्त के जिस दूसरे परिणाम की परीक्षा प्रयोग के द्वोरा हो सकती है उसका सम्बंध प्रकाश-किरण के पथ से है। आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त में भी प्रत्येक

स्थानीय अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्र की अपेक्षा प्रकाश का वेग सर्वत्र एक ही मान का होता है। काल के प्राकृतिक मात्रकों में इस वेग का मान १ है। इसलिए आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त के अनुसार, व्यापकीकृत निर्देशांकों में प्रकाश-संचरण के नियम को व्यक्त करनेवाला समीकरण होगा—

$$ds^2 = 0$$

हमारे निर्वाचित निर्देशांक-तंत्र में और हमारे प्रयुक्त सन्निकटन तक, (106) के अनुसार प्रकाश का वेग निम्न समीकरण के द्वारा व्यक्त होता है

$$\left(1 + \frac{\kappa}{4\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r}\right)\left(dx_1^2 + dx_2^2 + dx_3^2\right) = \left(1 - \frac{\kappa}{4\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r}\right) dl^2$$

अत: हमारे निर्देशांकों में

$$\text{प्रकाश-वेग } L = \frac{\sqrt{dx_1^2 + dx_2^2 + dx_3^2}}{dl} = 1 - \frac{\kappa}{4\pi}\int\frac{\sigma dV_0}{r} \quad \ldots\ldots\ldots (107)$$

इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि किसी बहुत बड़े द्रव्य-पुंज के निकट से जाने में प्रकाश की किरण मुड़ जाती है (विक्षेपित हो जाती है)। यदि हम यह कल्पना करें कि सूर्य का सम्पूर्ण द्रव्यमान M हमारे निर्देशांक-तंत्र के मूल बिन्दु पर एकत्रित है तो x_1x_3 समतल में x_3—अक्ष से समान्तर चलनेवाली प्रकाश-किरण का पूरा विक्षेप मूल बिन्दु से $\triangle$ की दूरी पर—

$$\alpha = \int_{-\infty}^{+\infty} \frac{1}{L}\frac{\partial L}{\partial x_1} dx_3$$

होगा और यह सूर्य की तरफ़ होगा। अनुकलन करने पर यह विक्षेप होगा

$$\alpha = \frac{\kappa M}{2\pi \triangle} \quad \ldots\ldots \quad \ldots\ldots \quad \ldots\ldots \quad (108)$$

और यदि $\triangle$ सूर्य की त्रिज्या के बराबर हो तो इसका मान 1.7′ होगा। इस विक्षेप के अस्तित्व तथा मान का सत्यापन १९१९ में अंग्रेज़ों के सूर्य-ग्रहण अभियान (British Solar Eclipse Expedition) द्वारा विलक्षण यथार्थतापूर्वक हो चुका है और १९२२ में होनेवाले सूर्य-ग्रहण के अवसर पर इसके मान को और भी अधिक यथार्थतापूर्वक नापने की तैयारी अत्यन्त सावधानी से की गयी। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि इस सिद्धान्त के इस परिणाम पर भी निर्देशांक-तंत्र के मनमाने निर्वाचन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अब हम इस सिद्धान्त के एक तीसरे परिणाम की चर्चा करेंगे जिसकी परीक्षा प्रेक्षण द्वारा हो सकती है। इसका सम्बंध बुध ग्रह के परिसौर बिन्दु (perihelion) की गति से है। ग्रहों की कक्षाओं में होनेवाले दीर्घकालिक (secular) परिवर्तन इतनी यथार्थता पूर्वक ज्ञात हैं कि जितने सन्निकटन का उपयोग हमने अब तक किया है वह सिद्धान्त और प्रेक्षण की तुलना के लिए पर्याप्त नहीं है। हमें फिर क्षेत्र-समीकरण (96) का सहारा लेना पड़ेगा। इस समस्या को हल करने के लिए मैंने उत्तरोत्तर सन्निकटन (successive approximations) की विधि का उपयोग किया था। किन्तु उसके पश्चात् श्वार्ज्सचाइल्ड (Shwarzschild) तथा अन्य लोगों ने कैन्द्रिक संमित स्थैतिक गुरुत्वीय क्षेत्र (central symmetrical statical gravitational field) की समस्या को पूर्ण रूप से हल कर लिया है। वेल (H .Weyl) की पुस्तक "दिक्-काल और द्रव्य" (Raum-zeit-materie) में इसकी जो व्युत्पत्ति दी गयी है वह तो विशेषत: सुन्दर है। यदि हम सीधे समीकरण (96) पर लौटने के स्थान में विचरण (variation) के उस नियम का सहारा लें जो इस समीकरण के तुल्य ही है तो परि-कलन सुगम हो सकता है। यहां हम इस प्रक्रिया का केवल इतना ही दिग्दर्शन करेंगे जितना कि इस विधि को समझने के लिए आवश्यक है।

यदि क्षेत्र स्थैतिक हो तो अवश्य ही ds^2 का रूप होगा—

$$\left.\begin{aligned} ds^2 &= -d\sigma^2 + f^2 dx_4^2 \\ d\sigma^2 &= \sum_{1-3} \gamma_{\alpha\beta}\, dx_\alpha\, dx_\beta \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (109)$$

जहाँ अंतिम समीकरण के दक्षिण-पक्ष का संकलन केवल आकाशीय चरों तक ही सीमित रखना होगा। क्षेत्र की कैन्द्रिक संमिति के कारण $\gamma_{\mu\nu}$ का रूप अवश्य ही यह होगा—

$$\gamma_{\alpha\beta} = \mu\,\delta_{\alpha\beta} + \lambda x_\alpha x_\beta \quad \ldots \quad \ldots \quad (110)$$

जहां f^2, μ तथा λ केवल $r = \sqrt{x_1^2 + x_2^2 + x_3^2}$ के फलन हैं। इन तीनों में से एक फलन का निर्वाचन मनमाना हो सकता है क्योंकि हमारा निर्देशांक-तंत्र तो पहले से ही बिलकुल मनमाना चुना गया है, और निम्नलिखित प्रतिस्थापन

$$\begin{aligned} x'_4 &= x_4 \\ x'_\alpha &= F(r)\, x_\alpha \end{aligned}$$

के द्वारा हम सदैव यह निश्चित कर सकते हैं कि इन तीनों फलनों में से एक अवश्य ही r' का कोई विशेषतः निर्धारित फलन होगा। अतः व्यापकता को सीमित किये बिना ही हम (110) के स्थान में लिख सकते हैं कि--

$$\gamma_{\alpha\beta} = \delta_{\alpha\beta} + \lambda x_\alpha x_\beta \quad \ldots \quad \ldots \quad (110a)$$

इस प्रकार इन दोनों राशियों (λ तथा f) के पदों में $g_{\mu\nu}$ व्यक्त किये जा सकते हैं। इन्हें r के फलनों के रूप में प्राप्त करने के लिए पहले तो (109) तथा (110a) के द्वारा $\Gamma^\sigma_{\mu\nu}$ का परिकलन करना होगा और तब इन्हें समीकरण (96) में निविष्ट करना होगा। ऐसा करने पर--

$$\left.\begin{aligned} \Gamma^\sigma_{\alpha\beta} &= \tfrac{1}{2}\frac{x_\sigma}{r}\cdot\frac{x_\alpha x_\beta + 2\lambda r\delta_{\alpha\beta}}{1+\lambda r^2} \ (\alpha,\beta,\sigma = 1,2,3 \text{ के लिए}) \\ \Gamma^4_{44} &= \Gamma^\alpha_{4\beta} = \Gamma^4_{\alpha\beta} = 0 \qquad (\alpha,\beta = 1,2,3 \text{ के लिए}) \\ \Gamma^4_{4\alpha} &= \tfrac{1}{2}f^{-2}\frac{\partial f^2}{\partial x_\alpha} \quad ; \quad \Gamma^\alpha_{44} = -\tfrac{1}{2}g^{\alpha\beta}\frac{\partial f^2}{\partial x_\beta} \end{aligned}\right\} \ldots (110b)$$

इन परिणामों के द्वारा क्षेत्र-समीकरणों से श्वार्ज्सचाइल्ड का हल प्राप्त हो जाता है

$$ds^2 = \left(1 - \frac{A}{r}\right)dl^2 - \left[\frac{dr^2}{1 - \frac{A}{r}} + r^2(\sin^2\theta d\phi^2 + d\theta^2)\right] \ldots (109a)$$

जहाँ हमने यह मान लिया है कि--

$$\left.\begin{aligned} x_4 &= l \\ x_1 &= r\sin\theta\sin\phi \\ x_2 &= r\sin\theta\cos\phi \\ x_3 &= r\cos\theta \\ A &= \frac{\kappa M}{4\pi} \end{aligned}\right\} \ldots \quad (109b)$$

इसमें M सूर्य का द्रव्य मान है जो निर्देशांक-तंत्र के मूल बिन्दु पर संमित (symmetrically) रूप से केन्द्रित माना गया है। हल (109) इस द्रव्य-पुंज से बहिर्वर्ती प्रदेश में ही मान्य है। जहां $T_{\mu\nu}=0$ होते हैं। यदि ग्रह की गति x_1-x_2

समतल में हो तो (109a) के स्थान में हमें लिखना पड़ेगा—

$$ds^2 = \left(1 - \frac{A}{r}\right)dl^2 - \frac{dr^2}{1 - \frac{A}{r}} - r^2 d\phi^2 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (109c)$$

ग्रहीय गति का परिकलन समीकरण (90) पर आश्रित है। (110b) के प्रथम समीकरण तथा (90) से संकेतांक 1, 2, 3 के लिए प्राप्त होगा—

$$\frac{d}{ds}\left(x_\alpha \frac{dx_\beta}{ds} - x_\beta \frac{dx_\alpha}{ds}\right) = 0$$

अथवा यदि इसका अनुकलन करके इसे ध्रुवीय (polar) निर्देशांकों में व्यक्त करें तो

$$r^2 \frac{d\phi}{ds} = \text{स्थिर} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (111)$$

और (90) से ही $\mu=4$ के लिए

$$0 = \frac{d^2 l}{ds^2} + \frac{1}{f^2}\frac{df^2}{dx_\alpha} \cdot \frac{dx^\alpha}{ds} \cdot \frac{dl}{ds} = \frac{d^2 l}{ds^2} + \frac{1}{f^2}\frac{df^2}{ds} \cdot \frac{dl}{ds}$$

इसको f^2 से गुणा करके अनुकुलन करने से—

$$f^2 \frac{dl}{ds} = \text{स्थिर} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (112)$$

(109c), (111) और (112) में चार चरों (s, r, l, ϕ) के तीन समीकरण हैं जिनके ग्रह की गति का परिकलन चिर प्रतिष्ठित यांत्रिकी रीति से ही किया जा सकता है। इससे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह निकलता है कि ग्रह के परिक्रमण की अभिदिशा (sense) में ग्रह की दीर्घ वृत्तीय कक्षा (orbit) का दीर्घकालिक घूर्णन होता रहता है और प्रत्येक परिक्रमा में इस घूर्णन का परिमाण होता है—

$$\frac{24\pi^3 a^2}{(1-e^2)c^2 T^2} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (113)$$

जहाँ a=ग्रहीय कक्षा के अर्धदीर्घ अक्ष (semi–major axis) की लम्बाई सेन्टीमीटरों में है।

e = संख्यात्मक उत्केन्द्रता (eccentricity)।

$c = 3\times 10^{10}$=शून्याकाश में प्रकाश का वेग।

T= परिक्रमा का आवर्तकाल (period) सैकंडों में।

इस व्यंजक से बुध ग्रह के परिसौर की उस गति का स्पष्टीकरण हो जाता है जिसका ज्ञान हमें सौ वर्षों से (अर्थात् लेवेरियर=Leverrier के समय से) है और जिसका कोई भी संतोषजनक स्पष्टीकरण करने में सैद्धान्तिक ज्योतिष अब तक असमर्थ रहा है।

मक्सवैल के विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के सिद्धान्त को आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त की भाषा में व्यक्त करने में कोई कठिनाई नहीं है। यह काम (81), (82) तथा (77) के टेन्सरों के उपयोग से हो जाता है। मान लीजिए कि ϕ_μ प्रथम कोटि का वह टेन्सर है जिसके द्वारा हम विद्युत्-चुम्बकीय चतुर्विमितीय विभव (4–विभव) को व्यक्त करना चाहते हैं। तब इस विद्युत्-चुम्बकीय टेन्सर का पारिभाषिक अनुबंध होगा—

$$\phi_{\mu\nu} = \frac{\partial \phi_\mu}{\partial x_\mu} - \frac{\partial \phi_\nu}{d x_\mu} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (114)$$

और तब इससे प्राप्त टेन्सर–समीकरण के द्वारा मैक्सवल के समीकरण-संघ के द्वितीय समीकरण का रूप हो जायगा

$$\frac{\partial \phi_{\mu\nu}}{\partial x_\rho} + \frac{\partial \phi_{\nu\rho}}{\partial x_\mu} + \frac{\partial \phi_{\rho\mu}}{d x_\nu} = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad (114a)$$

और मैक्सवैल के समीकरण-संघ का प्रथम समीकरण निर्धारित होगा निम्न-लिखित टेन्सर-घनत्व के अनुबंध से—

$$\frac{\partial \mathfrak{F}^{\mu\nu}}{\partial x_\nu} = \mathfrak{J}^\mu \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (115)$$

जिसमें $$\mathfrak{F}^{\mu\nu} = \sqrt{-g}\,.\; g^{\mu\sigma} g^{\nu\tau} \phi_{\sigma\tau}$$

$$\mathfrak{J}^\mu = \sqrt{-g} \;\; \rho \frac{dx_\nu}{ds}$$

यदि हम (96) के दक्षिण पक्ष में विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के ऊर्जा-टेन्सर को निविष्ट कर दें तो (96) का अपसरण (divergence) लेने पर $\mathfrak{J}^\mu = 0$ की विशिष्ट परिस्थिति में हमें (115) प्राप्त हो जाता है। आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त की योजना में विद्युत् के सिद्धान्त को इस प्रकार समाविष्ट करना अनेक

सैद्धान्तिकों के मतानुसार मनमाना है और संतोषजनक नहीं समझा जा सकता और न इस प्रकार हम आविष्ट मूलकणों से बने हुए विद्युत् के संतुलन को समझ सकते हैं। अधिक वांछनीय सिद्धान्त तो वह होगा जिसमें गुरुत्वीय क्षेत्र तथा विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र इस प्रकार समाविष्ट हों कि उन्हें तार्किक दृष्टि से दो अलग-अलग प्रकार की संरचनाएँ न समझा जा सके। वेल (H. Weyl) ने तथा हाल में ही कालुज़ा (Th. Kaluza) ने इस दिशा में कुछ विचक्षण विचार प्रस्तुत किये हैं, किन्तु इनके सम्बन्ध में मेरा सुनिश्चित मत यह है कि ये हमें मूल समस्या के यथार्थ हल के अधिक निकट नहीं पहुँचाते। इस बात को और अधिक न बढ़ाकर अब मैं तथाकथित विश्व-संरचना की समस्या (cosmological problem) का विवेचन करूँगा क्योंकि इसके बिना आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त का विवेचन भी एक प्रकार से अपूर्ण तथा असंतोषजनक ही रह जायगा।

क्षेत्र-समीकरण (96) पर आधारित हमारे पिछले विवेचन के मूल में यह धारणा थी कि लगभग सम्पूर्ण आकाश गलीलीय तथा यूक्लिडीय है, किन्तु कहीं-कहीं उसमें आरोपित द्रव्य-पुंजों के कारण इस लक्षण में विकार उत्पन्न हो जाता है। जब तक हमारा ध्यान लगभग उसी पारमाणिक कोटि के विस्तारवाले आकाश पर सीमित था जिससे ज्योतिष-विज्ञान में हमारा अधिक सम्पर्क रहता है तब तक तो यह धारणा निस्सन्देह समर्थनीय समझी जा सकती थी। किन्तु यह प्रश्न बिलकुल ही भिन्न है कि बिश्व के समस्त प्रदेश यूक्लिडीयाभासी होते हैं चाहे उनका विस्तार कितना ही बड़ा क्यों न हो। इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम पृष्ठ-सिद्धान्त (theory of space) से एक उदाहरण प्रस्तुत करेंगे जिसका उपयोग हम पहले भी कई बार कर चुके हैं। यदि किसी पृष्ठ का थोड़ा-सा भाग हमें लगभग समतल जान पड़े तो हम यह नतीजा नहीं निकाल सकते कि वह पूरा का पूरा पृष्ठ समतल आकृति का है। ऐसा भी तो हो सकता है कि वह पृष्ठ गोलाकार हो और उसकी त्रिज्या बहुत ही बड़ी हो। आपेक्षिकता के सिद्धान्त के विकास से पहले इस प्रश्न पर ज्यामितीय दृष्टिकोण से बहुत विवाद हो चुका था कि "क्या यह विश्व अधिकांशतः अ-यूक्लिडीय है ?" किन्तु आपेक्षिकता के सिद्धान्त के कारण अब इस प्रश्न ने नवीन रूप ले लिया है क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार वस्तुओं के ज्यामितीय गुण स्वतंत्र नहीं होते। वे द्रव्य-पुंजों के वितरण पर अवलम्बित होते हैं।

यदि विश्व यूक्लिडीयाभासी हो तो मैख (Mach) का यह विचार बिलकुल गलत है कि गुरुत्व की भाँति अवस्थितित्व भी वस्तुओं की किसी पारस्परिक क्रिया

का ही फल है क्योंकि ऐसी दशा में किसी समुचित प्रकार से निर्वाचित निर्देशांक-तंत्र के लिए, अनन्त दूरी पर तो $g_{\mu\nu}$ नियत मान के होंगे जैसा कि आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धान्त में होता है, किन्तु उपस्थित द्रव्य-पुंजों के प्रभाव से, कुछ परिमित प्रदेशों में $g_{\mu\nu}$ के मानों में उन नियत मानों की अपेक्षा बहुत थोड़ा-सा फर्क आ जायगा। तब आकाश के भौतिक गुण द्रव्य से सर्वथा स्वतंत्र अथवा अप्रभावित नहीं हो सकते। द्रव्य की उपस्थिति के कारण उन गुणों में कुछ विकृति उत्पन्न हो जायगी, किन्तु यह विकृति होगी बहुत ही थोड़े-से परिमाण की। इस प्रकार की द्वैतयुक्त धारणा स्वयं तो संतोष-जनक है ही नहीं, किन्तु उसके विरुद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण भौतिक तर्क भी हैं जिन पर अब हम विचार करेंगे।

विश्व अनन्त है और अनन्ती (infinity) पर वह यूक्लिडीय है। यह परिकल्पना आपेक्षिकता के दृष्टिकोण से बड़ी जटिल कल्पना है। आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त की भाषा में इस परिकल्पना से यह आवश्यक हो जाता है कि चतुर्थ कोटि का रीमान-टेन्सर (Riemann) अनन्तीपर शून्य हो जाय और इसके लिए आवश्यक प्रतिबंधों की संख्या बीस होगी। किन्तु गुरुत्वीय क्षेत्र के नियमों में वक्रता के केवल दस ही घटक $R_{\mu\nu}$ निविष्ट होते हैं। बिना किसी भौतिक आधार के इतना अधिक कठोर परिसीमन (limitation) निस्सन्देह संतोष-जनक नहीं हो सकता।

किन्तु दूसरी ओर, आपेक्षिकता के सिद्धान्त से यह संभाव्य दिखाई देता है कि अवस्थितित्व को द्रव्यों की पारस्परिक क्रिया का परिणाम समझने में मैख़ सही रास्ते पर था। हम प्रमाणित कर देंगे कि हमारे समीकरणों के अनुसार जड़ द्रव्य-पुंज अवश्य ही अवस्थितित्व की आपेक्षिकता के अर्थ में एक दूसरे पर क्रिया करते हैं चाहे यह क्रिया कितनी ही क्षीण क्यों न हो। मैख़ की विचारधारा के अनुसार क्या क्या बातें आवश्यक होंगी ?

(१) यदि किसी वस्तु के निकट भारयुक्त द्रव्य का संचय कर दिया जाय तो उस वस्तु का अवस्थितित्व बढ़ जायगा।

(२) यदि किसी वस्तु की निकटवर्ती वस्तुओं में त्वरण उत्पन्न कर दिया जाय तो उस वस्तु पर भी त्वरणकारी बल लगेगा और यह बल वस्तुतः उस त्वरण की ही दिशा में लगेगा।

(३) घूर्णित खोखली वस्तु के भीतर गतिमान वस्तुओं को घूर्णन की दिशा में विक्षेपित करनेवाला एक "कोरियोलिस क्षेत्र" (Coriolis field) तथा

एक त्रिज्या अपकेन्द्र बल (radial centrifugal force) स्वयं ही उत्पन्न हो जायेंगे।

अब हम यह बतलायेंगे कि हमारे आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार भी मैख़ की विचारधारा द्वारा प्राप्त इन तीनों प्रभावों का अस्तित्व तो है, किन्तु उनका परिमाण इतना छोटा होता है कि प्रयोगशाला के प्रयोगों से उसके सत्यापन की बात सोची भी नहीं जा सकती। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम पुनः द्रव्य-कण के गति समीकरण (90) की ओर लौटेंगे और समीकरण (90*a*) की अपेक्षा सन्निकटन को अधिक आगे तक ले जायेंगे।

पहले तो हम मान लेंगे कि γ_{44} प्रथम कोटि की स्वल्प राशि है। ऊर्जा-समीकरण के अनुसार गुरुत्व-बल के प्रभाव से गतिमान द्रव्य-पुंजों के वेग के वर्गों के मान भी इसी कोटि के होते हैं। अतः यह समझना तर्क-संगत होगा कि हमारे विचाराधीन द्रव्य-कणों के वेग तथा गुरुत्वीय-क्षेत्र को उत्पन्न करनेवाले द्रव्य-पुंजों के वेग भी स्वल्प हैं और लगभग $\frac{1}{2}$ की कोटि के हैं। अब हम क्षेत्र-समीकरण (101) तथा गति समीकरण (90) से प्राप्त समीकरणों का सन्निकटन इस प्रकार करेंगे कि परिकलन के लिए (90) के द्वितीय भाग में उन वेगों के एक-घात पदों को उपेक्षणीय नहीं समझेंगे। इसके अतिरिक्त हम *ds* और *dl* को भी बराबर नहीं समझेंगे, किन्तु इस उच्चतर सन्निकटन के अनुरूप हम यह लिखेंगे कि—

$$ds = \sqrt{g_{44}}\ .dl = \left(1 - \frac{\gamma_{44}}{2}\right) dl$$

पहले तो (90) से प्राप्त होगा—

$$\frac{d}{dl}\left[\left(1 + \frac{\gamma_{44}}{2}\right)\frac{dx_\mu}{dl}\right] = -\Gamma^\mu_{\alpha\beta}\frac{dx_\alpha}{dl}\cdot\frac{dx_\beta}{dl}\left(1 + \frac{\gamma_{44}}{2}\right) \quad \ldots\ (116)$$

और (101) से, अभीष्ट सन्निकटन तक

$$\left.\begin{aligned} -\gamma_{11} = -\gamma_{22} = -\gamma_{33} = \gamma_{44} &= \frac{\kappa}{4\pi}\int\frac{\sigma dV_\circ}{r} \\ \gamma_{4\alpha} &= -\frac{i\kappa}{2\pi}\int\frac{\sigma\frac{dx_\alpha}{ds}.dV_\circ}{r} \\ \gamma_{\alpha\beta} &= 0 \end{aligned}\right\} \quad \ldots\ \ldots\ \ldots\ \ldots\ (117)$$

जहाँ α तथा β आकाश-सम्बन्धी संकेतांक हैं।

(116) के दक्षिण पक्ष में हम $1+\frac{\gamma_{44}}{2}$ के स्थान में 1 लिख सकते हैं और $-\Gamma^{\alpha\beta}_{\mu}$ के स्थान में $\begin{bmatrix}\alpha\beta\\ \mu\end{bmatrix}$। इसके अतिरिक्त यह समझना भी सुगम है कि इस सन्निकटन तक हमें यह भी मानना पड़ेगा कि—

$$\begin{bmatrix}44\\ \mu\end{bmatrix} = -\tfrac{1}{2}\frac{\partial\gamma_{44}}{\partial x_{\mu}} + \frac{\partial\gamma_{4\mu}}{\partial x_{4}}$$

$$\begin{bmatrix}\alpha 44\\ \mu\end{bmatrix} = \tfrac{1}{2}\left(\frac{\partial\gamma_{4\mu}}{\partial x_{\alpha}} = \frac{\partial\gamma_{4\alpha}}{\partial x_{\mu}}\right).$$

$$\begin{bmatrix}\alpha\beta\\ \mu\end{bmatrix} = 0$$

यहाँ भी α, β तथा μ आकाश-सम्बन्धी संकेतांक हैं। अतः (116) से हम प्रचलित सदिश संकेतन में प्राप्त करेंगे कि—

$$\left.\begin{aligned}\frac{d}{dl}\left[(1+\overline{\sigma})V\right] &= \text{grad}\,\overline{\sigma} + \frac{\partial\mathfrak{A}}{\partial l} + \left[\text{rot}\,\mathfrak{A}\times V\right]\\ \overline{\sigma} &= \frac{\kappa}{8\pi}\int\frac{\sigma dV_{0}}{r}\\ \mathfrak{A} &= \frac{\kappa}{2\pi}\int\frac{\sigma\frac{dx_{\alpha}}{dl}.dV_{0}}{r}\end{aligned}\right\}\quad\ldots(118)$$

अब ये गति-समीकरण (118) यह प्रगट करते हैं कि वस्तुतः

(1) अवस्थितित्वीय द्रव्य-मान $1+\overline{\sigma}$ का अनुपाती होता है। अतः परीक्ष्य वस्तु के निकट भारयुक्त द्रव्य-पुंजों की उपस्थिति के कारण यह द्रव्यमान बढ़ जाता है।

(2) परीक्ष्य वस्तु पर त्वरणयुक्त द्रव्य-पुंजों की कुछ प्रेरक क्रिया होती है

और यह त्वरण की दिशा ही में होती है। पद $\frac{\partial A}{\partial l}$ इसी क्रिया को व्यक्त करता है।

(3) यदि कोई द्रव्य-कण किसी घूर्णनयुक्त खोखली वस्तु के अन्दर घूर्णन के अक्ष से समकोण दिशा में गमन कर रहा हो तो वह घूर्णन की दिशा में विक्षेपित (deflected) हो जाता है (कोरियोलिस क्षेत्र)। घूर्णनयुक्त खोखली वस्तु के भीतर उपर्युक्त अपकेन्द्र बल भी इस सिद्धान्त से प्राप्त हो जाता है। यह बात थिरिंग (Thirring) ने प्रमाणित कर दी है।*

यद्यपि κ का मान इतना छोटा होने के कारण, इन समस्त प्रभावों का सत्यापन प्रयोग द्वारा संभव नहीं है तथापि आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त के अनुसार उनका अस्तित्व असंदिग्ध है। और इन प्रभावों से हमें अवस्थितित्वीय क्रियाओं की आपेक्षिकता सम्बन्धी मैख के विचारों का प्रबल समर्थन मिलता है। यदि इसी विचारधारा का अनुसरण अंत तक किया जाय तो अवश्य ही हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि सम्पूर्ण अवस्थितित्व का अर्थात् पूरे के पूरे $g_{\mu\nu}$-क्षेत्र का कारण विश्व-व्यापी द्रव्य है और केवल अनन्ती के सीमान्त प्रतिबंध ही मुख्य कारण नहीं हैं।

समस्त विश्व में विस्तृत $g_{\mu\nu}$-क्षेत्र की संतोषजनक धारणा के लिए यह तथ्य बहुत अर्थपूर्ण है कि तारों का आपेक्षिक वेग प्रकाश-वेग की तुलना में बहुत ही कम होता है। इस बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि निर्देशांकों का समुचित निर्वाचन किया जाय तो विश्व भर में $g_{\mu\nu}$ लगभग नियत मान का हो जाता है—कम से कम विश्व के उस भाग में जहाँ द्रव्य विद्यमान हो और यह संकल्पना भी स्वाभाविक मालूम देती है कि तारों का अस्तित्व विश्व के सभी भागों में है। अतः यह संकल्पना भी अनुचित नहीं है कि $g_{\mu\nu}$ का मान सर्वत्र बराबर न होने का एकमात्र कारण यह है कि द्रव्य विश्व भर में संतत रूप से (continuously) वितरित नहीं है, किन्तु वह अलग-अलग खगोलीय पिंडों और पिंड-समूहों में संघनित है। यदि हम पूरे विश्व के

* किसी अवस्थितित्वीय-तन्त्र की अपेक्षा एक समान वेग से घूर्णन करनेवाले कार्तीय निर्देशांक-तन्त्र के विशिष्ट उदाहरण में यह बात परिकलन के बिना भी समझ में आ सकती है कि इस अपकेन्द्र क्रिया का अवश्य ही कोरियोलिस क्षेत्र के अस्तित्व से अवियोज्य सम्बन्ध है। ऐसी परिस्थिति में हमारे व्यापक सहचर समीकरण अवश्य ही स्वाभाविक रूप से मान्य होंगे।

ज्यामितीय लक्षणों का कुछ ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से द्रव्य के घनत्व की और $g_{\mu\nu}$ क्षेत्र की विशेषत: स्थानीय विषमांगिताओं (non-uniformity) को उपेक्षणीय समझने के लिए तैयार हों तो द्रव्य-पुंजों के वास्तविक वितरण के स्थान में यह मान लेना स्वाभाविक जान पड़ता है कि द्रव्य का वितरण संतत और एक-समान है और इस वितरण का घनत्व सर्वत्र σ है। इस कल्पित विश्व में समस्त बिन्दु आकाशीय दिशाओं की अपेक्षा तुल्य-रूपी होंगे; आकाशीय विस्तार की दृष्टि से इस विश्व की वक्रता सर्वत्र एक-समान होगी और यह (विश्व) निर्देशांक x_4 की अपेक्षा बेलनाकार होगा। यह संभावना विशेष रूप से संतोषजनक जान पड़ती है कि इस विश्व का आकाशीय विस्तार परिमित है और σ की सार्वत्रिक एक समानता की संकल्पना के अनुसार, उसकी वक्रता भी सर्वत्र एक समान है अर्थात् वह या तो गोलाकार है या बेलनाकार है क्योंकि तब अनन्ती के जो सीमान्त प्रतिबंध आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त की दृष्टि से इतने आपत्तिजनक हैं उनके स्थान में संवृत-आकाश (closed space) के लिए अत्यन्त स्वाभाविक प्रतिबंध प्रतिस्थापित किये जा सकते हैं।

उपर्युक्त कथन के अनुसार हमें यह लिखना होगा

$$ds^2 = dx_4{}^2 - \gamma_{\mu\nu} dx_\mu dx_\nu \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (119)$$

जहाँ संकेतांक μ और ν के मान केवल 1 से 3 तक ही सीमित हैं और $\gamma_{\mu\nu}$ निर्देशांक x_1, x_2, x_3, के ऐसे फलन हैं जिनका सम्बन्ध धन-चिह्नीय नियत वक्रतावाले त्रिविमितीय सांतत्यक से है। अब हमें यह देखना है कि ऐसी संकल्पना से गुरुत्व के क्षेत्र-समीकरण सन्तुष्ट हो सकते हैं या नहीं।

इस अनुसंधान के लिए सबसे पहले तो यह मालूम करना आवश्यक है कि नियत वक्रतायुक्त त्रिविमितीय बहुविमितिक (manifold) किन अवकल समीकरणों का पालन करता है। चतुर्विमितीय* यूक्लिडीय सांतत्यक में अवस्थित त्रिविमितीय गोलाकार बहुविमितिक जिन समीकरणों को सन्तुष्ट करता है वे हैं—

$$x_1{}^2 + x_2{}^2 + x_3{}^2 + x_4{}^2 = a^2$$
$$dx_1{}^2 + dx_2{}^2 + dx_3{}^2 + dx_4{}^2 = ds^2$$

* आकाश की चतुर्थ विमिति की सहायता का केवल एक गणितीय साधन के अतिरिक्त और कोई प्राकृतिक अर्थ नहीं है।

इनमें से x_4 का निरसन करने से यह प्राप्त होता है—

$$ds^2 = dx_1{}^2 + dx_2{}^2 + dx_3{}^2 + \frac{(x_1 dx_1 + x_2 dx_2 + x_3 dx_3)^2}{a^2 - x_1{}^2 - x_2{}^2 - x_3{}^2}$$

x_ν के तृतीय और उच्चतर घातों के पदों को उपेक्षणीय मानकर, मूल बिन्दु के समीपस्थ प्रदेश में लिखा जा सकता है कि—

$$ds^2 = \left(\delta_{\mu\nu} + \frac{x_\mu x_\nu}{a^2}\right) dx_\mu dx_\nu$$

कोष्ठक के भीतरवाला व्यंजक मूल बिन्दु के निकटवर्ती बहुविमितिक के $g_{\mu\nu}$ को व्यक्त करता है। (88) की सहायता से इस बहुविमितिक के लिए मूल बिन्दु पर $R_{\mu\nu}$ का परिकलन बहुत सरल है क्योंकि $g_{\mu\nu}$ के प्रथम व्युत्पन्नों के और इसलिए $\Gamma^\sigma_{\mu\nu}$ के भी मान मूल बिन्दु पर शून्य हो जाते हैं। वहाँ—

$$R_{\mu\nu} = -\frac{2}{a^2}\delta_{\mu\nu} = -\frac{2}{a^2}g_{\mu\nu}$$

यह अनुबंध प्रत्येक निर्देशांक-तंत्र के लिए तथा उस बहुविमितिक में सर्वत्र मान्य है क्योंकि समीकरण $R_{\mu\nu} = -\frac{2}{a^2} g_{\mu\nu}$ सामान्यतः सहचर होता है और उस बहुविमितिक के समस्त बिन्दु ज्यामितीय दृष्टि से तुल्य-रूपी हैं। चतुर्विमितीय तथा त्रिविमितीय सांतत्यकों के सम्बन्ध में भ्रम के निवारण के लिए अब हम त्रिवितीय सांतत्यक सम्बन्धी राशियों को ग्रीक अक्षरों द्वारा व्यक्त करेंगे और यह लिखेंगे कि—

$$P_{\mu\nu} = -\frac{2}{a^2}\gamma_{\mu\nu} \quad \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \quad (120)$$

अब हम क्षेत्र समीकरण (96) का उपयोग इस विशिष्ट उदाहरण के लिए करेंगे। (119) से चतुर्विमितीय बहुविमितिक के लिए

$$\left.\begin{array}{l} R_{\mu\nu} = P_{\mu\nu} \;\; [\, \mu, \nu \text{ के मान 1 से 3 तक} \\ R_{14} = R_{24} = R_{34} = R_{44} = 0 \end{array}\right\} \ldots \ldots \ldots (121)$$

(96) के दक्षिण पक्ष के लिए हमें धूल के गुबार में उपस्थित कणों के समान

वितरित द्रव्य का ऊर्जा-टेन्सर मालूम करना पड़ेगा। इसलिए उपर्युक्त विवेचन के अनुसार हमें विराम की विशिष्ट स्थिति के लिए लिखना पड़ेगा कि—

$$T^{\mu\nu} = \sigma \frac{dx_\mu}{ds} \cdot \frac{dx_\nu}{ds}$$

किन्तु इसके अतिरिक्त एक दाब-मूलक पद भी हम इसमें जोड़ देंगे। इस पद का भौतिक निर्धारण निम्न प्रकार किया जा सकता है। द्रव्य विद्युत् से आविष्ट कणों का बना हुआ है। मैक्सवैल के सिद्धान्त के आधार पर ये कण विचित्रता-विहीन (free from singularities) विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र नहीं समझे जा सकते। तथ्यों से सांगत्य सुरक्षित रखने के लिए ऐसे ऊर्जा-मूलक पदों को निविष्ट करना आवश्यक होगा जो मैक्सवैल के सिद्धान्त में तो उपस्थित नहीं हैं, किन्तु जिनके कारण अलग-अलग होने पर भी और सजातीय आवेशजनित पारस्परिक प्रतिकर्षण (repulsion) विद्यमान होने पर भी, इन वैद्युत् कणों का एकत्रित रहना संभव हो जाय। तथ्यों से सांगत्य प्राप्त करने के लिए पाँइकरे (Poincare') ने यह संकल्पना की थी कि इन कणों के भीतर एक प्रकार का दबाव होता है जो स्थिर वैद्युत् (electrostatic) प्रतिकर्षण का प्रतितोलन (balance) कर देता है। किन्तु यह कह देना संभव नहीं है कि इन कणों से बाहर यह दबाव शून्य हो जाता है। इसलिए यदि हम एक दबाव मूलक पद जोड़ दें तो हमारे घटनामूलक विवेचन में इस परिस्थिति से सांगत्य स्थापित हो सकता है। किन्तु इस दबाव को द्रव-गतिकीय (hydrodynamical) दाब समझने की भूल नहीं करनी चाहिए क्योंकि इसका कार्य तो केवल इतना ही है कि द्रव्य के अन्दर गतिकीय अनुबंधों को ऊर्जा-मूलक रूप में प्रस्तुत कर दे। अतः हम लिखेंगे कि—

$$T_{\mu\nu} = g_{\mu\alpha} g_{\nu\beta}\, \sigma \frac{dx_\alpha}{ds} \cdot \frac{dx_\beta}{ds} - g_{\mu\nu}\, p \quad \dots \quad \dots \quad (122)$$

और हमारे विशिष्ट उदाहरण में, हमें यह लिखना पड़ेगा कि

$$T_{\mu\nu} = \gamma_{\mu\nu} p \qquad [\ \mu, \nu \text{ के मान 1 से 3 तक}$$

$$T_{44} = \sigma - p$$

$$T = \gamma^{\mu\nu} \gamma_{\mu\nu}\, p + \sigma - p = \sigma - 4p$$

फिर क्षेत्र-समीकरण (96) इस रूप में भी लिखा जा सकता है—

$$R_{\mu\nu} = -\kappa \left(T_{\mu\nu} - \tfrac{1}{2} g_{\mu\nu} T \right)$$

अतः (96) से यह समीकरण प्राप्त हो जायगा—

$$+\frac{2}{a^2}\gamma_{\mu\nu} = \kappa \left(\frac{\sigma}{2} - p \right) \gamma_{\mu\nu}$$

$$0 = -\kappa \left(\frac{\sigma}{2} + p \right)$$

अतः

$$\left. \begin{aligned} p &= -\frac{\sigma}{2} \\ a &= \sqrt{\frac{2}{\kappa\sigma}} \end{aligned} \right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (123)$$

यदि यह विश्व यूक्लिडीयाभासी हो और इस कारण उसकी त्रिज्या अनन्त हो तो $\sigma = 0$ होगा। किन्तु इस बात की संभावना बहुत कम है कि विश्व में द्रव्य का औसत घनत्व वास्तव में शून्य हो। विश्व को यूक्लिडीयाभासी मानने के विरुद्ध यह हमारा तीसरा तर्क है। और यह भी संभव नहीं मालूम होता कि हमारे कल्पित दबाव का लोप हो जाय। विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के अधिक अच्छे सैद्धान्तिक ज्ञान के बिना इस दबाव के भौतिक स्वरूप को समझना संभव नहीं है। (123) के द्वितीय समीकरण के अनुसार, विश्व की त्रिज्या a को द्रव्य के सम्पूर्ण द्रव्यमान M के द्वारा व्यक्त करने का समीकरण है—

$$a = \frac{M\kappa}{4\pi^2} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (124)$$

इस समीकरण से यह स्पष्टतः प्रगट हो जाता है कि ज्यामितीय लक्षण भौतिक गुणों पर पूर्णतः अवलम्बित हैं।

अतः अनन्त आकाश की धारणा के विपक्ष में और संवृत परिमित आकाश के पक्ष में हम निम्नलिखित तर्क उपस्थित कर सकते हैं।

(१) आपेक्षिकता के सिद्धान्त के दृष्टिकोण से विश्व की संरचना को यूक्लिडीयाभासी मानकर अनन्ती पर सीमान्त प्रतिबंधों की संकलपना करने की अपेक्षा संवृत विश्व की संकल्पना बहुत ही अधिक सरल है।

(२) मैख की यह धारणा कि अवस्थितित्व वस्तुओं की पारस्परिक क्रिया पर अवलम्बित है प्रथम सन्निकटन तक तो आपेक्षिकता के सिद्धान्त के समीकरणों में ही

निहित है। इन समीकरणों से यह परिणाम निकल आता है कि अवस्थितित्व कम से कम अंशतः तो द्रव्य-पुंजों की पारस्परिक क्रिया पर अवलम्बित है ही। इससे मैख़ की धारणा के सत्य होने की प्रायिकता (probability) बढ़ जाती है क्योंकि यह धारणा संतोषजनक नहीं समझी जा सकती कि अवस्थितित्व का कुछ अंश तो पारस्परिक क्रियाओं पर अवलम्बित होता है और कुछ अंश आकाश के किसी स्वतंत्र गुण पर। किन्तु मैख़ की यह धारणा आकाश में सीमित और परिमित विश्व के अनुकूल तो है, परन्तु यूक्लिडीयाभासी अनन्त विश्व के अनुकूल नहीं है। ज्ञान-शास्त्र के दृष्टिकोण से यह समझना अधिक संतोषजनक है कि आकाश के यांत्रिक गुण पूर्णतः द्रव्य के ही द्वारा निर्णीत होते हैं और ऐसा होना केवल संवृत तथा परिमित विश्व में ही संभव है।

(३) अनन्त विश्व केवल तभी संभव हो सकता है जब विश्व में द्रव्य के घनत्व का मान शून्य हो। यद्यपि तार्किक दृष्टि से ऐसी संकल्पना संभव है, फिर भी इसकी प्रायिकता उस संकल्पना की अपेक्षा कम है जिसमें यह माना जाता है कि विश्व में द्रव्य के औसत घनत्व का मान परिमित है।

परिशिष्ट १

विश्व-रचना की समस्या के विषय में

(On the Cosmological Problem)

इस छोटी-सी पुस्तक के प्रथम संस्करण के पश्चात् आपेक्षिकता के सिद्धान्त में कुछ प्रगतियाँ हुई हैं। उनमें से केवल कुछ की चर्चा हम यहाँ संक्षेप में करेंगे।

इस प्रगति का पहला चरण तो यह है कि प्रकाश के उत्पत्तिस्थान के (ऋणात्मक) गुरुत्वीय विभव के कारण होनेवाले स्पैक्ट्रमीय रेखाओं के रक्त-विस्थापन (देखो पृष्ठ ८८) का अस्तित्व प्रेक्षण द्वारा असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो गया है। यह प्रदर्शन तथा-कथित "वामन तारों" (dwarf stars) के आविष्कार से संभव हुआ है जिनका घनत्व जल की अपेक्षा लगभग 10^4 गुना से भी अधिक होता है (यथा लुब्धक (sirius) तारे का मंदज्योति साथी)। इन तारों का द्रव्यमान तथा उनकी त्रिज्या का नाप हो सकता है* और आपेक्षिकता के सिद्धान्त के अनुसार यह रक्त-विस्थापन जितना सूर्य के प्रकाश के लिए होता है उससे लगभग बीस गुना इन तारों के प्रकाश के लिए होना चाहिए। प्रेक्षित विस्थापन का मान भी वस्तुतः अपेक्षित सीमाओं के भीतर ही पाया गया है।

प्रगति के दूसरे चरण का सम्बन्ध गुरुत्वाकर्षित वस्तु की गति के नियम से है। इसकी चर्चा भी संक्षेप में ही की जायगी। सिद्धान्त के प्रारम्भिक निर्माण में गुरुत्वाकर्षित कण की गति का नियम गुरुत्वीय क्षेत्र के नियम के अतिरिक्त एक स्वतंत्र मौलिक

* स्पैक्ट्रमीय विधि से इस तारे की लुब्धक पर प्रतिक्रिया को नापकर न्यूटन के नियमों के द्वारा उसका द्रव्यमान मालूम हो जाता है तथा उसकी सम्पूर्ण ज्योति को नाप लिया जाता है और उसके विकिरण के द्वारा टेम्परेचर को नापकर उस विकिरण की तीव्रता (intensity) प्रति वर्ग सेन्टीमीटर मालूम कर ली जाती है। इन दोनों से तारे की त्रिज्या निर्णीत हो जाती है।

संकल्पना के रूप म प्रतिपादित किया गया था—देखो समीकरण (90) जिसके अनुसार गुरुत्वाकर्षित कण अल्पान्तरी (geodesic) रेखा पर गमन करता है। यह गलीलियो के अवस्थितित्व सम्बन्धी नियम का ही परिवर्तित रूप है जिसके लिए यह कल्पना कर ली गयी है कि वह "शुद्ध" गुरुत्वीय क्षेत्र के अस्तित्व की परिस्थिति में भी मान्य है। यह प्रमाणित कर दिया गया है कि गति के इस नियम का विशाल गुरुत्वाकर्षित द्रव्य-पुंजों के लिए व्यापकीकृत रूप भी केवल रिक्ताकाश के क्षेत्र-समीकरणों में से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस की व्युत्पत्ति के अनुसार गति का यह नियम इस प्रतिबंध में गर्भित है कि जिन द्रव्य-बिन्दुओं से इस क्षेत्र की उत्पत्ति होती है उनसे बाहर कहीं भी क्षेत्रीय विचित्रताओं (singularities) का अस्तित्व नहीं होना चाहिए।

प्रगति का तीसरा चरण तथा-कथित "विश्व-रचना-समस्या" के सम्बन्ध में है और इस पर हम यहाँ सविस्तर विचार करेंगे क्योंकि एक तो यह मौलिक महत्त्व का विषय है और दूसरे इन समस्याओं के विषय में विवाद का अभी अन्त भी नहीं हुआ है। अधिक गंभीर विवेचन के लिए मुझे यह बात भी प्रेरित करती है कि मैं अपने मन से इस भावना को दूर नहीं कर सकता कि इस समस्या पर अब तक जितना विचार किया गया है उसमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मौलिक दृष्टिकोणों पर यथेष्ट ज़ोर नहीं दिया गया है।

स्थूल रूप में यह समस्या यों प्रस्तुत की जा सकती है। अचल तारों के प्रेक्षणों से हमें इस बात का अच्छी तरह विश्वास हो गया है कि यह अचल तारामंडल मुख्यत: अनन्त रिक्ताकाश में तैरते हुए द्वीप के सदृश नहीं है और जितना द्रव्य विश्व में विद्यमान है उस सबके लिए गुरुत्व-केन्द्र (centre of gravity) के समान किसी बिन्दु का अस्तित्व ही नहीं है। इसके विपरीत हम तो इस विश्वास की ओर अधिक प्रेरित होते हैं कि आकाश में द्रव्य का औसत घनत्व सर्वत्र ही शून्य से भिन्न है अथवा कहीं भी शून्य नहीं है।

इसलिए जो प्रश्न खड़ा होता है वह यह है। क्या इस अनुभव-जात परिकल्पना का समाधान आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त द्वारा हो सकता है?

पहले तो हमें इस समस्या को अधिक परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करना पड़ेगा। मान लीजिए कि इस विश्व का एक परिमित खंड इतना विशाल है कि उसमें विद्यमान द्रव्य का घनत्व सन्निकटत: x_1, x_2, x_3, x_4 का संतत फलन (continuous function) समझा जा सकता है। ऐसे खंडाकाश (subspace) को हम सन्निकटत: अवस्थित्वीय

निर्देश-तंत्र (मिनकाउस्की आकाश) समझ सकते हैं और हम इसी की अपेक्षा तारों की गति का अध्ययन करते हैं। इसके निर्वाचन में ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि इसकी अपेक्षा द्रव्य का औसत वेग सब दिशाओं में शून्य हो। अब गैस के अणुओं की गति के समान प्रत्येक तारे की प्रायः स्वेच्छ गति शेष रह जाती है। अनभव से यह भी ज्ञात हो गया है कि तारों के ये वेग प्रकाश-वेग की तुलना में बहुत ही अल्प होते हैं। इसलिए थोड़ी देर के लिए इस आपेक्षिक गति को पूर्णतः उपेक्षणीय समझ लेना संभव है और हम यह मान सकते हैं कि (इस खंडाकाश में) इन तारों के बदले में द्रव्य की ऐसी धूल भरी है जिसके कणों में किसी प्रकार की भी अन्योन्य सापेक्ष गति विद्यमान नहीं है।

किन्तु समस्या को सुनिश्चित रूप देने के लिए उपर्युक्त प्रतिबंध पर्याप्त नहीं हैं। सबसे सरल और सबसे अधिक मौलिक विशिष्टीकरण का प्रतिबंध यह होगा—इस चतुर्विमितीय आकाश में स्वाभाविक रूप से नापा हुआ द्रव्य का घनत्व ρ सर्वत्र बराबर है, और यदि निर्देशांकों का निर्वाचन यथोचित हो तो मापनिक या मीट्रिक (metric) x_4 से स्वतंत्र होगा और x_1, x_2, x_3 की दृष्टि से समांग (homogeneous) तथा समदिक् (isotropic) होगा।

यह वही परिस्थिति है जिसे मैंने पहले विस्तृत भौतिक आकाश का सबसे अधिक स्वाभाविक तथा आदर्शीकृत वर्णन समझा था। इसका विवेचन इस पुस्तक के पृष्ठ ९८–१०३ में किया गया है। समस्या के इस हल के विरुद्ध आक्षेप यह है कि इसमें ऋणात्मक दबाव को निविष्ट करना पड़ता है और इसका कोई भौतिक समर्थन संभव नहीं है। इस हल को संभाव्य बनाने के लिए गति-समीकरण में मैंने पहले उपर्युक्त दबाव के स्थान में एक ऐसे नवीन पद को निविष्ट किया था जो आपेक्षिकता के सिद्धान्त के दृष्टिकोण से उचित समझा जा सकता है। इस प्रकार प्रवर्धित करने पर गति-समीकरणों का रूप हो गया—

$$(R_{ik} - \tfrac{1}{2} g_{ik} R) + \Lambda g_{ik} + \kappa T_{ik} = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (1)$$

जहाँ Λ एक सार्वत्रिक (universal) नियतांक (विश्व-रचनांक = cosmological constant) है। इस द्वितीय पद के निवेषण से सिद्धान्त में जटिलता अवश्य आ गयी है और उसकी तार्किक सरलता भी बहुत घट गयी है। द्रव्य के परिमित औसत घनत्व के प्रायः अनिवार्य निवेषण से उत्पन्न कठिनाई के द्वारा ही इसका समर्थन किया जा सकता है। प्रसंगवश हम यह भी कह देना चाहते हैं कि न्यूटन के सिद्धान्त में भी यही कठिनाई विद्यमान है।

इस कठिनाई को दूर करने का उपाय गणितज्ञ फ़्रीडमान (Friendmann) ने निकाल लिया।* उनके प्राप्त किये हुए परिणाम को हबल (Hubble) के इस आविष्कार से आश्चर्यजनक समर्थन मिला है कि तारामंडल का विस्तार बढ़ रहा है (स्पैक्ट्रमीय रेखाओं का रक्त-विस्थापन तारों की दूरी के साथ एक-समान अनुपात से बढ़ता जाता है।)

निम्नलिखित विवरण वास्तव में फ़्रीडमान की विचारधारा के स्पष्टीकरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

चतुर्विमितीय आकाश जो तीन विमितियों की अपेक्षा समदिक् है

प्रेक्षण द्वारा हमें यह दिखाई देता है कि तारामंडल में तारे इस प्रकार अवस्थित हैं कि उनके वितरण का घनत्व सब दिशाओं में सन्निकटतः approximately बराबर है। इससे हमें यह कल्पना करने की प्रेरणा मिलती है कि इस आकाशीय समदिक्ता का अनुभव अन्य समस्त प्रेक्षक भी करेंगे और जो प्रेक्षक अपने आसपास के द्रव्य की अपेक्षा विराम अवस्था में होगा वह भी प्रत्येक स्थान तथा प्रत्येक समय पर ऐसा ही अनुभव करेगा। दूसरी ओर अब हमें यह कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है कि आसपास के द्रव्य की अपेक्षा अचल प्रेक्षक के लिए द्रव्य का घनत्व काल की अपेक्षा अपरिवर्त्य रहेगा। यह मान लेने पर हम इस संकल्पना को भी त्याग देंगे कि मापनिक क्षेत्र (metric field) का व्यंजक (expression) काल पर अवलम्बित नहीं होता।

"इस विश्व में आकाशीय समदिक्ता है" इस प्रतिबंध को अब हमें गणितीय रूप देना है। चतुर्विमितीय आकाश के प्रत्येक बिन्दु P में से कण का एक गमन-पथ गुज़रता है। इस गमनपथ को हम संक्षेप में अल्पान्तरी (geodesic) की संज्ञा देंगे। मान लीजिए कि ऐसे अल्पान्तरी पर दो बिन्दु P तथा Q अनन्ततः निकटवर्ती हैं। तब हमें यह प्रतिबंध लगाना पड़ेगा कि यदि P तथा Q स्थिर रहें तो निर्देशांक-तंत्र के किसी भी घूर्णन की अपेक्षा क्षेत्र का व्यंजक निश्चर होना चाहिए। और यही प्रतिबंध प्रत्येक अल्पान्तरी के प्रत्येक स्वल्प खंड के लिए भी मान्य होगा।†

* उन्होंने यह दिखा दिया कि क्षेत्र-समीकरणों का तदर्थ (ad hoc) विस्तारण करने के बिना भी यह प्रमाणित करना सम्भव है कि सम्पूर्ण त्रिविमितीय आकाश में द्रव्य का घनत्व परिमित हो सकता है (Zeitschr. fur Phys. 10, 1922)।

† यह प्रतिबंध केवल मीट्रिक को ही सीमित नहीं करता, किन्तु प्रत्येक अल्पान्तरी के लिए एक ऐसे निर्देशांक-तन्त्र के अस्तित्व को अनिवार्य कर देता है जिसकी अपेक्षा इस अल्पान्तरी के परितः घूर्णन के प्रति यह निश्चरता विद्यमान रहती है।

उपर्युक्त निश्चरता के प्रतिबंध में यह बात भी गर्भित है कि सम्पूर्ण अल्पान्तरी घूर्णन के अक्ष पर अवस्थित होता है और निर्देशांक-तंत्र के घूर्णन में उसके समस्त बिन्दु अचर रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि अल्पान्तरियों की त्रिगुण अनन्ती (triple infinity) के परित: निर्देशांक-तंत्र के समस्त घूर्णनों में भी यह व्यंजक निश्चर रहेगा।

संक्षेप के लिए मैं इस समस्या के हल की नैगमनिक (deductive) व्युत्पत्ति प्रस्तुत नहीं करूँगा। किन्तु यह बात त्रिविमितीय आकाश के लिए तो हमारे अन्तर्बोध से ही स्पष्ट मालूम होती है कि जो मीट्रिक रेखाओं की किसी द्विगुण अनन्ती के परित: घूर्णन में निश्चर रहता है उसमें निर्देशांकों का यथोचित निर्वाचन होने पर अवश्य ही केन्द्रिक संमिति विद्यमान न होगी और घूर्णन के अक्षों के लिए उपयुक्त वे ही त्रिज्या (Radial) सरल रेखाएँ होंगी जो संमिति के कारण अल्पान्तरी भी होंगी। ऐसी दशा में एक समान त्रिज्यावाले पृष्ठ ही ऐसे पृष्ठ होंगे जिनकी वक्रता सर्वत्र एक समान तथा धन चिह्नीय होंगी और वे सर्वत्र (त्रिज्य) अल्पान्तरियों से लम्बकोणिक होंगे। अत: निश्चरों की भाषा में हमें ये नियम प्राप्त होते हैं——

अल्पान्तरियों से लम्बकोणिक पृष्ठों का एक कुल होता है। इनमें से प्रत्येक पृष्ठ एक समान वक्रता वाला पृष्ठ होता है। इस कुल के दो पृष्ठों के बीच में अवस्थित अल्पान्तरी-खंड सब बराबर होते हैं।

अन्तर्बोध द्वारा प्राप्त यह उदाहरण व्यापक नहीं है क्योंकि इस कुल के पृष्ठ नियत ऋणात्मक वक्रतावाले या यूक्लिडीय (अर्थात् शून्य वक्रतावाले) भी हो सकते हैं।

जो चतुर्विमितीय आकाश हमारे विचाराधीन है वह भी बिलकुल इसी के सदृश है और यदि मापनिक आकाश में अवस्थितित्व का संकेतांक 1 हो तो भी कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं होगा। केवल हमें त्रिज्य दिशाओं को तो समय-रूपी समझना होगा और उसी तरह पृष्ठ-कुल के पृष्ठों पर अवस्थित दिशाओं को आकाशरूपी समझना होगा। समस्त बिन्दुओं के स्थानीय प्रकाश-शंकुओं के अक्ष इन त्रिज्य रेखाओं पर संपतित रहेंगे।

निर्देशांकों का निर्वाचन

जिन चार निर्देशांकों के लिए विश्व की समदिक्‌ता अत्यन्त स्पष्टत: दिखाई देती है उनके बदले अब हम दूसरे निर्देशांक ऐसे चुनेंगे जो भौतिक निर्वचन की दष्टि से अधिक सुविधाजनक हैं।

कण के जो अल्पान्तरी केन्द्रीय संमिति की अवस्था में केन्द्र-गत सरल रेखाओं के

रूप में होते हैं उन्हीं को हम समय-रूपी रेखाएँ समझेंगे। इन रेखाओं पर x_1, x_2, x_3 तो अचर रहेंगे और केवल x_4 ही चर होगा और मान लीजिए कि केन्द्र से मापनिक दूरी x_4 है। ऐसे निर्देशांकों में मीट्रिक का रूप होगा—

$$\left.\begin{aligned} ds^2 &= dx_4^2 - d\sigma^2 \\ d\sigma^2 &= \gamma_{ik}\, dx_i\, dx_k \quad (i, k = 1, 2, 3) \end{aligned}\right\} \quad \cdots \quad \cdots \quad (2)$$

यहाँ $d\sigma^2$ ऐसा मीट्रिक है जिसका सम्बन्ध किसी गोलीय अतिपृष्ठ (hyper-surface) से है। केन्द्रीय संमिति के कारण, समस्त अतिपृष्ठों पर विभिन्न अति पृष्ठों के γ_{ik}, एक ही रूप के होंगे और उनमें फर्क होगा केवल एक धनचिह्नीय गुणांक के कारण जो स्वयं केवल x_4 पर अवलम्बित होगा।

$$\gamma_{ik} = \mathring{\gamma}_{ik}\, G^2 \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad (2a)$$

जहाँ $\mathring{\gamma}$ केवल x_1, x_2, x_3 पर अवलम्बित है और G केवल x_4 का फलन है।

तब $\quad d\mathring{\sigma}^2 = \mathring{\gamma}_{ik}\, dx_i dx_k \quad (i, k = 1, 2, 3) \quad \cdots \quad \cdots \quad (2b)$

एक-समान वक्रतावाला एक निश्चित त्रिविमितीय मीट्रिक है। प्रत्येक G के लिए यह अपरिवर्तित ही रहता है।

ऐसे मीट्रिक के समीकरण होंगे—

$$\mathring{R}_{iklm} - B\,(\mathring{\gamma}_{il}\mathring{\gamma}_{km} - \mathring{\gamma}_{im}\mathring{\gamma}_{kl}) = 0 \quad \cdots \quad \cdots \quad (2c)$$

अब हम निर्देशांक-तंत्र (x_1, x_2, x_3) का निर्वाचन ऐसा कर सकते हैं कि स्वल्प रेखा-खंड का रूप यूक्लिडीय हो जाय—

$$\left.\begin{aligned} d\mathring{\sigma}^2 &= A^2\,(dx_1^2 + dx_2^2 + dx_3^2) \\ \text{अर्थात्}\ \ \mathring{\gamma}_{ik} &= A^2 \delta_{ik} \end{aligned}\right\} \quad \cdots \quad \cdots \quad (2d)$$

जहाँ A केवल $r\ (r^2 = x_1^2 + x_2^2 + x_3^2)$ का धन फलन होगा।

समीकरणों में इनका प्रति स्थापन करने से A के लिए ये दो समीकरण प्राप्त होते हैं—

$$\left.\begin{aligned} -\frac{1}{r}\left(\frac{A'}{Ar}\right)' + \left(\frac{A'}{Ar}\right)^2 &= 0 \\ -\frac{2A'}{Ar} - \left(\frac{A'}{A}\right)^2 - BA^2 &= 0 \end{aligned}\right\} \quad \cdots \quad \cdots \quad (3)$$

इनमें से प्रथम समीकरण तो

$$A = \frac{c_1}{c_2 + c_3 r^2} \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad (3a)$$

के द्वारा सन्तुष्ट होगा जहाँ अभी तो स्थिरांक मनमाने हैं। तब द्वितीय समीकरण से प्राप्त होगा कि—

$$B = 4\frac{c_2 c_3}{c_1^2} \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad (3b)$$

c द्वारा व्यक्त स्थिरांकों के विषय में यह ज्ञात होता है कि यदि $r=0$ के लिए A धन-चिह्नीय हो तो c_1 और c_2 समान चिह्नीय होंगे। हम c_1 और c_2 दोनों को धन-चिह्नीय समझ सकते हैं क्योंकि तीनों स्थिरांकों का चिह्न बदलने से A अपरिवर्तित रहता है। हम c_2 को १ के बराबर भी ले सकते हैं और व्यापकता को कम किये बिना ही हम c_1 को भी १ के बराबर ले सकते हैं क्योंकि G^2 में एक धन चिह्नीय गुणांक तो सदा ही समाविष्ट किया जा सकता है। अतः हम लिख सकते हैं कि—

$$A = \frac{1}{1 + cr^2}\ ;\ B = 4c \quad \cdots \quad \cdots \quad \cdots \quad (3c)$$

अब तीन प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं—

$C > 0$ (गोलाकार आकाश) Spherical space

$C < 0$ (कूट-गोलाकार आकाश) Pseudo-spherical space

$C = 0$ (यूक्लिडीय आकाश)

निर्देशांकों के समरूप-रूपान्तरण (similarity transformation) से $x'_1 = ax_i$ जहाँ a स्थिरांक है), प्रथम परिस्थिति में $c = \frac{1}{4}$ हो जायगा और द्वितीय परिस्थिति में $c = -\frac{1}{4}$।

तब तीनों परिस्थितियों में क्रमशः

$$\left.\begin{aligned} A &= \frac{1}{1 + \frac{r^2}{4}}\ ;\ B = +1 \\ A &= \frac{1}{1 - \frac{r^2}{4}}\ ;\ B = -1 \\ A &= 1\ ;\ B = 0 \end{aligned}\right\} \quad \cdots \quad \cdots \quad (3d)$$

गोलीय परिस्थिति में मात्रक आकाश (unit space) अर्थात् $G=1$ की 'परिधि' (circumference) होगी $\int_{\infty}^{\infty} \frac{dr}{1+\frac{r^2}{4}} = 2\pi$ और इस मात्रक आकाश की 'त्रिज्या' होगी १। तीनों ही दशाओं में काल का फलन G यह व्यक्त करता है कि द्रव्य के दो विन्दुओं के आकाशीय खंड में नापी हुई दूरी के काल-सापेक्ष परिवर्तन की दर कितनी है। समय x_4 पर गोलाकार आकाश की त्रिज्या G है।

सारांश—हमारे काल्पनिक विश्व के लिए आकाशीय संमिति की परिकल्पना से मीट्रिक की परिभाषा होगी—

$$ds^2 = dx_4^{\,2} - G^2A^2\,(dx_1^{\,2}+dx_2^{\,2}+dx_3^{\,2}) \quad \ldots \quad \ldots \quad (2)$$

जहाँ G तो केवल x_4 पर और A केवल $r\ (=x_1^{\,2}+x_2^{\,2}+x_3^{\,2})$ पर ही अवलम्बित है तथा

$$A = \frac{1}{1+\frac{z}{4}r^2} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (3)$$

हो जायगा और विभिन्न परिस्थितियाँ क्रमशः $z=1$, $z=-1$ और $z=0$ के द्वारा व्यक्त होंगी।

क्षेत्र-समीकरण (The Field Equations)

अब हमें गुरुत्व के उन क्षेत्र-समीकरणों को सन्तुष्ट करना होगा जिनमें वह विश्व-रचना-मूलक पद उपस्थित नहीं है जो पहले विशिष्ट उद्देश्य से निविष्ट किया गया था—

$$\left(R_{ik} - \tfrac{1}{2}g_{ik}R\right) + \kappa T_{ik} = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad (4)$$

इसमें आकाशीय समदिकृता की परिकल्पना पर आधारित मीट्रिक के व्यंजक को प्रतिस्थापित करके परिकलन करने पर हम देखेंगे कि—

$$R_{ik} - \tfrac{1}{2}g_{ik}R = \left(\frac{z}{G^2} + \frac{G'^2}{G^2} + 2\frac{G''}{G}\right) GA\delta_{ik} \quad \ldots (i, k = 1, 2, 3)$$

$$R_{44} - \tfrac{1}{2}g_{44}R = -3\left(\frac{z}{G^2} + \frac{G'^2}{G^2}\right) \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (4a)$$

$$R_{i4} - \frac{1}{2} g_{i4} R = 0 \qquad (i = 1, 2, 3)$$

इसके अतिरिक्त 'धूल' के लिए द्रव्य का ऊर्जा टेन्सर T_{ik} है

$$T^{ik} = \rho \frac{dx_i}{ds} \cdot \frac{dx_k}{ds} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (4b)$$

जिन अल्पान्तरियों पर द्रव्य गमन करता है वे ऐसी रेखाएँ होती हैं जिन पर चर निर्देशांक केवल x_4 ही होता है। उन पर $dx_4 = ds$ होता है।

अतः

$$T_{44} = \rho \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (4c)$$

ही ऐसा घटक है जो शून्य नहीं है। संकेतांकों को नीचे उतारने पर हमें T_{ik} का केवल एक ही घटक ऐसा मिलता है जो शून्य न हो जाता हो। वह है

$$T_{44} = \rho \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (4d)$$

इसका विचार करने से क्षेत्र-समीकरण हो जाते हैं—

$$\left. \begin{aligned} \frac{z}{G^2} + \frac{G'^2}{G^2} + 2\frac{G''}{G} &= 0 \\ \frac{z}{G^2} + \frac{G'^2}{G^2} - \frac{1}{3}\kappa\rho &= 0 \end{aligned} \right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5)$$

आकाशीय काट (x_4=स्थिर) की वक्रता होगी $\frac{z}{G^2}$ और $\frac{G^2}{G}$ हबल के प्रसरण (Hubble's expansion) को व्यक्त करता है क्योंकि समस्त परिस्थितियों में G दो द्रव्य-कणों की मापनिक दूरी (metric distance) के आपेक्षिक मान को समय के फलन के रूप में व्यक्त करता है। और इन समीकरणों में A की अनुपस्थिति का कारण यह है कि गुरुत्वीय समीकरणों के हलों की संमिति अभीष्ट प्रकार की होने के लिए ऐसा होना आवश्यक है। प्रथम समीकरण में से द्वितीय को घटाने से

$$\frac{G''}{G} + \frac{1}{6}\kappa\rho = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5a)$$

G तथा ρ तो सर्वत्र अवश्य ही धन-चिह्नीय होंगे। अतः जहाँ कहीं ρ शून्य न हो वहाँ सर्वत्र G″ ऋणात्मक होगा। इसलिए फलन $G(x_4)$ न तो किसी बिन्दु पर लघुतम होता है और न कहीं उसमें (वक्रता का) नति परिवर्तन-बिन्दु (point of inflection) होता है। इसके अतिरिक्त ऐसा भी कोई हल नहीं है जिसमें G अपरिवर्ती रहे।

शून्य आकाशीय वक्रता ($z=0$) की विशिष्ट परिस्थिति

[The Special case of Vanishing Spatial Curvature ($z=0$)]

यदि घनत्व ρ शून्य न हो तो सरलतम विशिष्ट परिस्थिति तब होती है जब $z=0$ होता है और काट (x_4=स्थिर) वक्र नहीं होते। इस दशा में यदि हम $\frac{G'}{G}=h$ मान लें तो क्षेत्र-समीकरण हो जायेंगे

$$\left.\begin{aligned} 2h'+3h^2&=0 \\ 3h^2&=\kappa\rho \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5b)$$

हबल के प्रसरण h और औसत घनत्व ρ का जो सम्बन्ध ऊपर के द्वितीय समीकरण से व्यक्त होता है वह कुछ हद तक अनुभव से मिलता है—कम से कम जहाँ तक पारिमाणिक कोटि का सम्बन्ध है। 10^6 पारसैक (parsec) की दूरी के लिए इस प्रसरण का मान 432 किलोमीटर प्रति सेकंड बताया गया है। यदि इसे उस मात्रक-पद्धति में व्यक्त किया जाय जिसका हमने यहाँ उपयोग किया है अर्थात् लम्बाई का मात्रक सेंटीमीटर हो और समय का मात्रक प्रकाश के एक सेंटीमीटर विस्थापन का समय हो तो—

$$h\frac{432\times10^5}{3.25\times10^6\times365\times24\times60\times60}\times\left(\frac{1}{3\times10^{10}}\right)^2=4{\cdot}71\times10^{-28}$$

और $\kappa=1{\cdot}86\times10^{-27}$ होने के कारण (देखो 105a), (5b) के द्वितीय समीकरण से—

$$\rho=\frac{3h^2}{\kappa}=3.5\times10^{-28} \text{ ग्राम प्रति सें॰मी॰}^3$$

यह मान पारिमाणिक कोटि में कुछ-कुछ उस अनुमान से मिलता है जो ज्योतिषियों ने दृश्य तारों और तारा-समुदायों के द्रव्यमानों और लम्बनों (parallaxes) के आधार पर प्राप्त किया था। उदाहरण के लिए मैं लन्दन की फ़िज़ीकल सोसाइटी की प्रोसीडिंग्स के खंड 51 (1939) के पृष्ठ 537 में प्रकाशित जी॰ सी॰ मैकविटी (G. C. Mac Vittie) के लेख में से निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करता हूँ— "औसत घनत्व निश्चय ही 10^{-27} ग्राम/सें॰ मी॰^{3} से अधिक नहीं है। अधिक प्रायिकता तो इस बात की है कि उसका मान 10^{-29} ग्राम/सें॰ मी॰^{3} की कोटि का है।"

इस परिमाण का निर्णय करने में कठिनाई इतनी अधिक है कि इस समय तो मैं इतने ही सांगत्य को संतोषजनक मानता हूँ। और ρ की अपेक्षा h का मान अधिक यथार्थतापूर्वक निर्णीत हो सकता है, इसलिए संभवतः ऐसा कहने में अत्युक्ति नहीं है कि प्रेक्ष्य आकाश की संरचना का निर्णय ρ के अधिक यथार्थतापूर्ण निर्णय पर अवलम्बित है। (5) के द्वितीय समीकरण के अनुसार साधारण परिस्थिति में आकाश की वक्रता निम्नलिखित समीकरण से प्राप्त होती है––

$$z\,G^{-2} = \tfrac{1}{2}\,\kappa p - h^2 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5c)$$

अतः यदि इस समीकरण का दक्षिण पक्ष धन चिह्नीय हो तो आकाश की वक्रता धन-चिह्नीय तथा सर्वत्र एक-समान होगी और फलतः परिमित भी होगी। उसके परिमाण का निर्णय भी उतनी ही यथार्थता से हो सकेगा जितनी से $\frac{1}{2}\kappa p$ और h^2 के अन्तर का निर्णय हो सकता है। यदि (5c) का दक्षिण पक्ष ऋण चिह्नीय हो तो आकाश अनन्त होगा। अभी तो ρ का मान इतनी अच्छी तरह ज्ञात नहीं है कि हम इस समीकरण के द्वारा आकाश के काट x_4=स्थिर की औसत शून्येतर वक्रता का परिकलन कर सकें।

यदि हम आकाशीय वक्रता को उपेक्षणीय समझ लें तो (5c) का प्रथम समीकरण, x_4 के मूल बिन्दु के यथोचित निर्वाचन से,

$$h = \frac{2}{3} \cdot \frac{1}{x_4} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (6)$$

हो जायगा। इस समीकरण से $x_4 = 0$ बिन्दु पर विचित्रता प्रगट होती है, अतः या तो ऐसे आकाश में ऋणात्मक प्रसरण होगा और काल की महत्तम सीमा होगी $x_4=0$ या उसका प्रसरण धनात्मक होगा और उसके अस्तित्व का प्रारम्भ $x_4=0$ से होगा। प्रेक्षण द्वारा हमें जो परिस्थिति दिखाई देती है वह इसी दूसरी परिस्थिति के अनुरूप है।

माप द्वारा h का जो मान प्राप्त हुआ है उससे यह परिणाम निकलता है कि इस विश्व का जन्म अब से $1 \cdot 5 \times 10^9$ वर्ष पहिले हुआ था। पृथ्वी के पृष्ठ पर के दृढ़ स्तर में अवस्थित यूरेनियम के विघटन (disintegration) से भी विश्व की आयु लगभग इतनी ही निकली है। यह परिणाम इतना विरोधाभासी (paradoxical) है कि अनेक कारणों से इसने इस सिद्धान्त की सत्यता में शंका उत्पन्न कर दी है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है "जो कठिनाई आकाश की वक्रता को लगभग उपेक्षणीय मान लेने से पैदा हुई है वह क्या किसी उपयुक्त वक्रता की संकल्पना से दूर हो सकती है? इसमें सहायता मिलेगी (5) के प्रथम समीकरण से जो G की कालाश्रितता को निर्णीत करता है।

शून्येतर आकाशीय वक्रता की परिस्थिति में समीकरणों का हल

आकाशीय काट (x_4 = स्थिर) की आकाशीय वक्रता पर विचार करने के लिए समीकरण हैं—

$$\left.\begin{aligned} zG^{-2} + \left\{2\frac{G''}{G} + \left(\frac{G'}{G}\right)^2\right\} &= 0 \\ zG^{-2} + \left(\frac{G'}{G}\right)^2 - \tfrac{1}{3}\kappa\rho &= 0 \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (5)$$

$z = +1$ हो तो वक्रता धनात्मक होगी और $z = -1$ हो तो ऋणात्मक होगी। इनमें से प्रथम समीकरण अनुकलनीय integrable है। पहले तो हम उसे इस रूप में लिखेंगे—

$$z + 2GG'' + G'^2 = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5d)$$

यदि हम $x_4 (=t)$ को G का फलन समझें तो—

$$G' = \frac{1}{t'} \; ; \; G'' = \left(\frac{1}{t'}\right)' \cdot \frac{1}{t'}$$

यदि $\frac{1}{t'}$ के लिए $u(G)$ लिख दें तो

$$z + 2Guu' + u^2 = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5e)$$

या $$z + (Gu^2)' = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5f)$$

और इसका सरल अनुकलन करने से

$$zG + Gu^2 = G_0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5g)$$

और $u = \dfrac{1}{\frac{dt}{dG}} = \dfrac{dG}{dt}$ होने के कारण

$$\left(\frac{dG}{dt}\right)^2 = \frac{G_\circ - z\,G}{G} \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (5h)$$

जहाँ $G_\circ$ कोई स्थिर राशि है। यदि हम ($5h$) का अवकलन करें और ($5a$) के कारण G'' को ऋणात्मक मानें तो प्रगट हो जाता है कि यह स्थिर राशि ऋणात्मक नहीं हो सकती।

(*a*) **धनात्मक वक्रतावाला आकाश**

इसमें G सदा $0 \angle G \angle G_\circ$ से निर्दिष्ट सीमाओं के अन्तर्गत रहता है। अत: G का पारिमाणिक लेखा-चित्र निम्न आकृति का होगा—
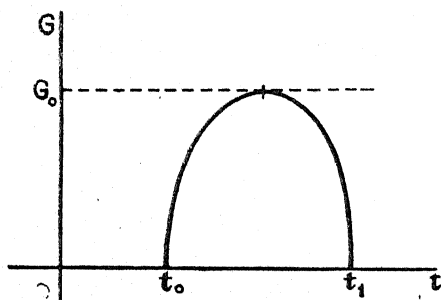
चित्र—५

त्रिज्या G का मान पहले तो 0 से $G_\circ$ तक बढ़ता है और तब संततत: 0 तक घट जाता है। आकाशीय काट परिमित (गोलाकार) होता है—

$$\tfrac{1}{3}\kappa\rho - h^2 > 0 \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (5c)$$

(b) **ऋणात्मक वक्रतावाला आकाश**

$$\left(\frac{dG}{dt}\right)^2 = \frac{G_\circ + G}{G}$$

इसमें समय के साथ $G=0$ से $G+\infty$ तक G बढ़ता जाता है (या $G=\infty$

से G=o तक घटता जाता है)। अतः निम्न लेखाचित्र में प्रदर्शित रीति से $\frac{dG}{dt}$ लगातार $+\infty$ से 1 तक घटता ही जाता है।
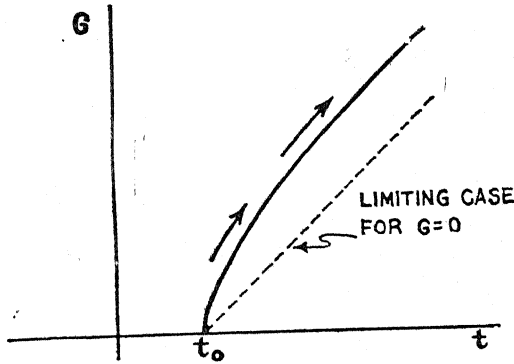
चित्र—६

इसलिए ऐसे आकाश का लगातार प्रसरण ही होता जाता है और आकुंचन बिलकुल नहीं होता। आकाशीय काट अनन्त होता है और

$$\tfrac{1}{3}\kappa\rho - h^2 < 0 \qquad \dots \qquad \dots \qquad \dots \qquad \dots \qquad (5c)$$

पिछले अनुच्छेद में जिस समतल आकाशीय काट का विवेचन किया गया था वह निम्न समीकरण के अनुसार उपर्युक्त दोनों प्रकार के आकाशों के बीच की परिस्थिति में होता है—

$$\left(\frac{dG}{dt}\right)^2 = \frac{G_0}{G} \qquad \dots \qquad \dots \qquad \dots \qquad \dots \qquad (5h)$$

यह भी स्मरणीय है कि ऋणात्मक वक्रता की परिस्थिति ही में शून्य ρ वाली परिस्थिति भी सीमान्त रूप में गर्भित है। इस दशा में $\left(\frac{dG}{dt}\right)^2 = 1$ होगा (देखो चित्र ६)। यह यूक्लिडीय परिस्थिति है क्योंकि परिकलन से ज्ञात हो जाता है कि इसमें वक्रता का टेन्सर शून्य होता है।

शून्येतर ρ वाली ऋणात्मक वक्रता की परिस्थिति क्रमशः इस सीमान्त दशा के अधिकाधिक निकट पहुँचती जाती है। अतः ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा त्यों-त्यों द्रव्य की उपस्थिति पर आकाश की संरचना की निर्भरता घटती चली जायगी।

शून्येतर वक्रतावाली परिस्थिति के विवेचन से यह परिणाम निकलता है कि प्रत्येक शून्येतर आकाशीय वक्रता की परिस्थिति के लिए भी शून्य वक्रतावाली परिस्थिति के समान ही प्रारम्भिक परिस्थिति ऐसी होती है जिसमें $\rho = 0$ होता है और इसी दशा से प्रसरण का प्रारम्भ होता है। अतः इस काट में घनत्व अनन्त होता है और क्षेत्र में विचित्रता होती है। इस नवीन विचित्रता का निवेषण introduction भी स्वयं ही एक समस्या खड़ी कर देता है।*

इसके अतिरिक्त यह भी प्रगट होता है कि प्रसरण के प्रारम्भ से लेकर h के स्थिर मान $\frac{G'}{G}$ तक पहुँचने के कालान्तराल पर आकाशीय वक्रता के निवेषण का प्रभाव पारिमाणिक कोटि की दृष्टि से उपेक्षणीय है। $(5h)$ से सरल परिकलन के द्वारा इस कालान्तराल का मान ज्ञात हो सकता है, किन्तु यहाँ यह परिकलन नहीं दिया जायगा। हम तो अपने विवेचन को शून्य ρ वाले प्रसरणशील आकाश तक ही सीमित रखेंगे। ऊपर बताया जा चुका है कि यह ऋणात्मक आकाशीय वक्रता की ही एक विशिष्ट परिस्थिति है। (5) के द्वितीय समीकरण में प्रथम पद के चिह्न-परिवर्तन को ध्यान में रखकर, हम देखेंगे कि—

$$G' = 1$$

अतः यदि x_4 का मूल बिन्दु यथोचित हो तो—

$$G = x_4$$

तथा
$$h = \frac{G'}{G} = \frac{1}{x_4} \quad \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \quad (6a)$$

इसलिए प्रसरण की अवधि के लिए इस सीमान्त दशा में भी वही परिणाम निकलता है जो शून्य आकाशीय वक्रता की परिस्थिति में निकला था। (समी० 6)। दोनों में अन्तर केवल एक ऐसे गुणांक का है जिसका परिमाण 1 की कोटि का ही है।

* किन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुरुत्वाकर्षण का वर्तमान आपेक्षिकता मूलक सिद्धान्त "गुरुत्वीय क्षेत्र" तथा "द्रव्य" की धारणाओं की पृथकता पर आधारित है। अतः शायद यह समझना अनुचित नहीं है कि इस कारण से द्रव्य के अत्युच्च घनत्व की परिस्थिति के लिए यह सिद्धान्त अपूर्ण है। यह सम्भव हो सकता है कि संश्लिष्ट (unified) सिद्धान्त में ऐसी विचित्रता प्रगट न हो।

समीकरण (6) के सम्बन्ध में यह शंका बतायी गयी थी कि उससे वर्तमान में प्रेक्ष्य तारों और तारा-समूहों के विकास के लिए काल की अवधि आश्चर्यजनक रूप से छोटी प्राप्त होती है। इस शंका का आकाशीय वक्रता के निवेषण से निवारण नहीं हो सकता।

भारयुक्त द्रव्य के लिये समीकरण का व्यापकीकरण और उसके द्वारा उपर्युक्त विवेचन का विस्तारण

अब तक जितने भी हल प्राप्त किये गये हैं उन सबमें एक ऐसी परिस्थिति का भी अस्तित्व है जिसमें मीट्रिक (metric) में विचित्रता उत्पन्न हो जाती है ($G=0$) और घनत्व अनन्त हो जाता है। अब ये प्रश्न उपस्थित होते हैं—क्या इस विचित्रता के प्रादुर्भाव का कारण यह नहीं है कि हमने द्रव्य को ऐसी धूल के रूप में निविष्ट किया था जो संघनन का विरोध नहीं करती ? अलग-अलग तारों की यादृच्छिक गति के प्रभाव की उपेक्षा क्या हमने बिना समुचित कारण के ही तो नहीं कर दी थी ?

उदाहरण के लिए यह संभव है कि अन्योन्य सापेक्ष अचल कणों की धूल के स्थान में हम ऐसी धूल की संकल्पना कर लें जिसके कणों में गैस के अणुओं की गति के ही समान अन्योन्य सापेक्ष यादृच्छिक गति विद्यमान हो। इस प्रकार का द्रव्य स्थिरोष्म (adiabatic) संघनन का विरोध करेगा और संघनन जितना ही अधिक होगा उतना ही यह विरोध भी अधिक होगा। क्या यह संघनन की अनन्ताभिमुखी वृद्धि को रोक नहीं सकेगा ? किन्तु हम नीचे यह प्रमाणित करेंगे कि द्रव्य के स्वरूप की ऐसी परिवर्तित कल्पना से उपर्युक्त हलों के मुख्य लक्षणों में कोई भी परिवर्तन नहीं हो सकता।

विशिष्ट आपेक्षिकता के अनुसार "कण-गैस" (particle-gas) **का विवेचन**

अब हम समान्तर गतियुक्त m द्रव्यमान वाले कणों के समुदाय पर विचार करेंगे। यथोचित रूपान्तरण के द्वारा यह समुदाय अचल समझा जा सकता है। तब कणों का आकाशीय घनत्व लोरेन्ट्ज़ीय अर्थ में निश्चर होगा। किसी मनमाने लोरेन्ट्ज़-तंत्र से सम्बद्ध टेन्सर

$$T^{uv} = m\sigma \frac{dx^u}{ds} \frac{dx^v}{ds} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (7)$$

उस कण-समुदाय का निश्चर ऊर्जा-टेन्सर होगा। यदि ऐसे ही कण-समुदाय अनेक हों तो, संकलन (summation) करने पर, सब समुदायों के लिए

$$T^{uv} = m \sum \sigma_p \left(\frac{dx^u}{ds}\right)_p \left(\frac{dx^v}{ds}\right)_p \quad \ldots \quad \ldots \quad (7a)$$

होजायगा। और इस रूपवाले टेन्सर के सम्बन्ध में हम लोरेन्ट्ज़-तंत्र का काल-अक्ष ऐसा चुन सकते हैं कि $T^{14} = T^{24} = T^{34} = 0$ हो जाय। और उस तंत्र के यथोचित घूर्णन से हम $T^{12} = T^{23} = T^{31} = 0$ भी प्राप्त कर सकते हैं। इस के अतिरिक्त मान लीजिए कि यह कण-गैस समदिक् है। इसका अर्थ यह है कि $T^{11} = T^{22} = T^{33} = \rho$ है। यह निश्चर होगा और $T^{44} = u$ भी निश्चर होगा। अतः निश्चर $\mathcal{F} = T^{uv} g_{uv}$ को हम u तथा ρ के पदों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं :—

$$\mathcal{F} = T^{v} g_{uv} = T^{44} - (T^{11} + T^{22} + T^{33}) = u - 3p \quad \ldots \quad \ldots \quad (7b)$$

T^{uv} के व्यंजक से यह प्रगट होता है कि T^{11}, T^{22}, T^{33} और T^{44} सभी धनात्मक हैं। अतः यही बात T_{11}, T_{22}, T_{33} और T_{44} के लिए भी सत्य है।

अतः अब गुरुत्वीय समीकरण हो जाते हैं—

$$\left.\begin{aligned} 1 + 2\,GG'' + G^2 + \kappa T_{11} = 0 \\ -3G^{-2}(1 + G'^2) + \kappa T_{44} = 0 \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (8)$$

इनमें से प्रथम समीकरण से यह परिणाम निकलता है कि $T_{11} > 0$ होने के कारण यहाँ भी G'' सदैव ऋणात्मक होगा यदि दिये हुए G तथा G' के लिए T_{11} वाला पद सदैव G'' के मान को केवल घटा ही सकता हो।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्य-बिन्दुओं की आपेक्षिक गति को यादृच्छिक मान लेने से भी हमारे परिणामों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता।

सारांश एवं अन्य टिप्पणियाँ

(1) यद्यपि आपेक्षिकता के दृष्टिकोण से गुरुत्व-समीकरणों में विश्व-संरचना-मूलक पद का निवेषण संभव है तथापि तार्किक संक्षेप के दृष्टिकोण से यह परित्याज्य है। फ्रीडमान (Friedmann) ने ही सबसे पहले प्रमाणित कर दिया था कि

यदि हम दो द्रव्य-बिन्दुओं के बीच की मापनिक दूरी (metric distance) का कालानुसारी परिणमन (time-variability) स्वीकार कर लें तो गुरुत्व-समीकरणों के मूल रूप के साथ द्रव्य के घनत्व की सार्वत्रिक परिमितता का समाधान संभव हो सकता है।*

(2) केवल विश्व की आकाशीय समदिक्ता के प्रतिबंध से ही (समीकरणों का) फ्रीडमान वाला रूप प्राप्त होता है। इसलिए निस्सन्देह विश्व-संरचना की समस्या के लिए उपयुक्त उनका व्यापक रूप यही है।

(3) आकाशीय वक्रता की उपेक्षा करने से औसत घनत्व तथा हबल के प्रसरण का अनुबंध प्राप्त हो जाता है और पारिमाणिक कोटि की दृष्टि से इसका आनुभविक समर्थन हो गया है।

इसके अतिरिक्त प्रसरण के प्रारम्भ से अब तक की अवधि का मान 10^9 वर्षों की कोटिका निकलता है। तारों के विकास के सिद्धान्तों में और अवधि की इस स्वल्पता में सांगत्य नहीं है।

(4) न तो आकाशीय वक्रता के निवेषण से ही इस अन्तिम परिणाम में कोई फ़र्क पड़ता है और न तारों तथा तारा-समूहों में अन्योन्य सापेक्ष यादृच्छिक गति का अस्तित्व मान लेने से।

(5) कुछ लोगों ने डापलर प्रभाव (Doppler's effect) से भिन्न अन्य कारणों के द्वारा हबल के स्पैक्ट्रम-रेखा-विस्थापन की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। किन्तु ऐसी धारणा के लिए ज्ञात भौतिकीय अनुभवों से कोई सहारा नहीं मिलता। ऐसी परिकल्पना के अनुसार दो तारों (S_1 और S_2) को एक परिदृढ़ छड़ के द्वारा जोड़ देना संभव होगा। जो एक-वर्ण (mono-chromatic) प्रकाश S_1 से चलकर S_2 पर पहुँचता है और वहाँ से परावर्तित होकर पुनः S_1 पर लौट आता है, उसकी (S_1 की घड़ी से नापी हुई) आवृत्ति (frequency) में परिवर्तन हो सकता है यदि उस छड़ की लम्बाई में वर्तमान तरंग-दैर्घ्यों की संख्या इस यात्रा में समय के साथ बदलती रही हो। इसका अर्थ यह होगा कि एक ही स्थान पर नापे

*यदि आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त के निर्माण के पहले ही हबल के प्रसरण का आविष्कार हो गया होता तो इस विश्व-संरचनामूलक पद का निवेषण कदापि नहीं होता। अब तो क्षेत्र-समीकरणों में ऐसे पद का निवेषण और भी कम समर्थनीय हो गया है क्योंकि विश्व-संरचना की समस्या का स्वाभाविक हल प्राप्त करने का जो उद्देश्य इस निवेषण का था वह सफल नहीं हुआ।

हुए प्रकाश वेग का मान समय पर अवलम्बित होगा। किन्तु यह बात तो आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धान्त के भी विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि S_1 और S_2 के बीच में बार-बार इधर से उधर जानेवाला प्रकाश-संकेत भी एक घड़ी का ही काम देगा। किन्तु S_1 पर स्थित घड़ी (यथा परमाणु-घड़ी) के और इस घड़ी के समयों में कोई नियत सम्बन्ध नहीं रहेगा। और इसका यह अर्थ होगा कि आपेक्षिकता सिद्धान्त में मान्य मीट्रिक का अस्तित्व ही संभव नहीं है। इससे न केवल आपेक्षिकता प्रदत्त अनुबंधों की बोधगम्यता की ही हानि होती है, किन्तु इसके साथ इस तथ्य का सांगत्य भी नहीं हो सकता कि विभिन्न परमाणुओं के कई गुणों का सम्बन्ध "सादृश्य" (similarity) का नहीं, किन्तु "सर्वांग समता" (congruence) का होता है (यथा तीक्ष्ण स्पैक्ट्रमीय रेखाओं, परमाणुओं के आयतन आदि का अस्तित्व)।

किन्तु उपर्युक्त विवेचन तरंग-सिद्धान्त पर आधारित है और यह संभव है कि उपर्युक्त परिकल्पना के कुछ प्रवर्तक यह संकल्पना कर लें कि प्रकाश-प्रचरण की क्रिया पूर्णतः तरंग-सिद्धान्त के अनुसार नहीं होती, किन्तु बहुत कुछ काम्पटन प्रभाव (Compton effect) के सदृश होती है। प्रकीर्णन (scattering) के अभाव में हमारे वर्तमान ज्ञान के द्वारा ऐसी क्रिया की परिकल्पना का समर्थन नहीं हो सकता। मूल आवृत्ति से आपेक्षिक आवृत्ति-विस्थापन की स्वतंत्रता का भी यह कोई कारण नहीं बता सकती। फलतः हबल के आविष्कार का इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ संभव नहीं है कि तारामंडल का प्रसरण हो रहा है।

(6) विश्व का प्रारम्भ (प्रसरण का प्रारम्भ) केवल 10^9 वर्ष पहले ही हुआ था, इस धारणा सम्बन्धी शंकाओं का आधार आनुभविक भी है और सैद्धान्तिक भी। ज्योतिषियों की प्रवृत्ति विभिन्न स्पेक्ट्रमीय लक्षणोंवाले तारों को विकास की एक-समान प्रगति के क्रम में विभिन्न आयु-वर्गों में विभाजित करने की है। और विकास की ऐसी क्रिया के लिए 10^9 वर्षों की अपेक्षा बहुत ही अधिक समय की आवश्यकता है। अतः ऐसे सिद्धान्त का आपेक्षिकीय समीकरणों के प्रमाणित परिणामों से वास्तविक विरोध है। किन्तु मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तारों के विकास-सिद्धान्त का निर्माण क्षेत्र-समीकरणों की अपेक्षा अधिक दुर्बल आधार पर किया गया है।

सैद्धान्तिक शंकाओं का आधार यह तथ्य है, कि विश्व-प्रसरण का प्रारम्भ होने के समय पर मीट्रिक विचित्र हो जाता है और घनत्व ρ अनन्त हो जाता

है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं। आपेक्षिकता का वर्तमान सिद्धान्त इस धारणा पर निर्मित हुआ है कि भौतिक वास्तविकता दो भागों में विभक्त हो सकती है—एक ओर तो है मीट्रिक-क्षेत्र (गुरुत्वाकर्षण) और दूसरी ओर हैं विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र और द्रव्य। वास्तव में आकाश संभवतः एकात्मक (द्वैधहीन) ही है और वर्तमान सिद्धान्त केवल सीमान्त परिस्थिति के लिए ही ठीक है। यदि क्षेत्र तथा द्रव्य के घनत्व बहुत अधिक हों तो क्षेत्र-समीकरणों की—यहाँ तक कि उनमें प्रयुक्त क्षेत्र के चरों की भी—कोई वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं होती। इसलिए क्षेत्र के तथा द्रव्य के अत्युच्च घनत्व की दशा में भी ये समीकरण सत्य होंगे यह मान लेना शायद उचित नहीं है और इसलिए यह निष्कर्ष निकालना भी उचित नहीं होगा कि "प्रसरण के प्रारम्भ" का अर्थ अवश्य ही गणितीय विचित्रता का अस्तित्व है। इतना ही समझ लेना पर्याप्त है कि ऐसे प्रदेशों में इन समीकरणों का उपयोग नहीं किया जा सकता।

किन्तु यह विवेचन इस तथ्य में परिवर्तन नहीं कर सकता कि वर्तमान तारों और तारा-समूहों के विकास की दृष्टि से "विश्व का प्रारम्भ" वास्तव में उस प्रारम्भिक समय को व्यक्त करता है जिससे पहले इन तारों और तारा-समूहों का अस्तित्व अलग-अलग सत्ताओं के रूप में नहीं था।

(7) किन्तु आकाश की जो गत्यात्मक धारणा इस सिद्धान्त की दृष्टि से आवश्यक है, उसके पक्ष में भी कुछ आनुभविक तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यद्यपि यूरेनियम का विघटन अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है और यद्यपि यह सत्य है कि नवीन यूरेनियम की उत्पत्ति की कोई संभावना दिखलाई नहीं देती, फिर भी यूरेनियम अभी तक विद्यमान क्यों है? आकाश विकिरण से इतना भरा हुआ क्यों नहीं है कि रात्रि का आसमान प्रदीप्त पृष्ठ के समान चमकदार दिखलाई दे सके? यह प्रश्न बहुत पुराना है, किन्तु अचल विश्व के दृष्टिकोण से अभी तक इसका कोई संतोष-जनक उत्तर प्राप्त नहीं हो सका है। किन्तु इस प्रकार के प्रश्नों में पड़ने से बहुत अधिक प्रसंगान्तर हो जायगा।

(8) इन सब कारणों से ऐसा जान पड़ता है कि प्रसरणशील विश्व का आयुष्काल स्वल्प होने पर भी इस धारणा पर गंभीर विचार करना आवश्यक है। और ऐसा करने के लिए मुख्य प्रश्न यह है कि उसकी आकाशीय वक्रता धनात्मक है या ऋणात्मक। इसमें हम निम्नलिखित वक्तव्य और जोड़ देंगे।

आनुभविक दृष्टिकोण से यह निर्णय इस प्रश्न पर निर्भर है कि व्यंजक ($\frac{1}{3}\kappa\rho-h^2$) धनात्मक है (गोलीय परिस्थिति) अथवा ऋणात्मक (कूट-गोलीय परिस्थिति) मुझे तो यह प्रश्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण जान पड़ता है। ज्योतिष-विज्ञान की वर्तमान स्थिति में इस प्रश्न का आनुभविक निर्णय असंभव नहीं मालूम होता। हबल का प्रसरण h तो अपेक्षाकृत अच्छी तरह से ही ज्ञात है। अतः ρ के मान का निर्णय यथा संभव उत्कृष्ट यथार्थतापूर्वक करने पर ही सब कुछ निर्भर है।

यह प्रमाणित हो जाने की आशा की जा सकती है कि यह विश्व गोलाकार है, किन्तु यह कल्पना करना भी कठिन है कि वह कूट-गोलाकार प्रमाणित हो सके। यह बात इस तथ्य पर निर्भर है कि ρ के लिए एक निम्नतम सीमा तो निर्धारित हो सकती है, किन्तु उच्चतम सीमा का निर्धारण संभव नहीं है। इसका कारण यह है कि हमारे लिए यह अनुमान लगाना प्रायः असंभव है कि ρ का कितना अंश ऐसे विकिरणहीन द्रव्य-पुंजों के कारण है जो ज्योतिष-विज्ञान के उपायों से अप्रेक्ष्य है। इस बात का विवेचन मैं कुछ विस्तार के सहित करना चाहता हूँ।

केवल विकिरणशील तारों के ही द्रव्यमान का हिसाब लगाकर हम ρ की एक निम्न सीमा ρ_s निर्धारित कर सकते हैं। तब यदि ऐसा मालूम पड़े कि $\rho_s > \frac{3h^2}{\kappa}$ है तो हमारा निर्णय गोलाकार आकाश के पक्ष में हो जायगा। किन्तु यदि $\rho_s < \frac{3h^2}{\kappa}$ निकले तो विकिरणहीन द्रव्य-पुंजों के कारण ρ का जितना अंश ρ_d होता हो उसका भी अनुमान करने का प्रयत्न करना पड़ेगा। हम यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि हम $\frac{\rho_d}{\rho_s}$ की भी एक निम्न सीमा निर्धारित कर सकते हैं।

एक ऐसे खगोलीय संघ की कल्पना करिए जिसमें अनेक अलग-अलग तारे हैं और जिसे हम पर्याप्त यथार्थतापूर्वक एक अचल संघ समझ सकते हैं (उदाहरणार्थ—गोलाकार तारापुंज (globular cluster)। तारों के जो वेग स्पैक्ट्रम दर्शकीय विधि से नापे जा सकते हैं उनके द्वारा कुछ तर्क-संगत संकल्पनाओं की सहायता से हमें गुरुत्वीय क्षेत्र का मान ज्ञात हो सकता है। फलतः इस क्षेत्र को उत्पन्न करनेवाले द्रव्य-पुंजों का द्रव्यमान भी ज्ञात हो सकता है। इस प्रकार परिकलित द्रव्यमानों की उस तारा-पुंज के दृष्ट तारों के द्रव्यमान से तुलना करके कम से कम स्थूल सन्निकटन तक यह अनुमान लगाया जा सकता है कि क्षेत्रोत्पादक द्रव्यमान उस पुंज के दृष्ट

तारों के द्रव्यमान से कितना अधिक है। इस प्रकार उस विशिष्ट तारापुंज के लिए $\frac{\rho_d}{\rho_s}$ का अनुमान प्राप्त हो सकता है।

औसत की दृष्टि से विकिरणहीन तारे विकिरणशील तारों की अपेक्षा छोटे होते हैं। उनकी और पुंज के अन्य तारों की पारस्परिक क्रिया के कारण उनके औसत वेग की प्रवृत्ति बड़े तारों के वेग की अपेक्षा अधिक होने की होती है। अतः पुंज में से उनका "वाष्पन" (evaporation) बड़े तारों की अपेक्षा अधिक शीघ्र होगा। इसलिए यह आशा की जा सकती है कि पुंज से बाहर की तुलना में उसके भीतर छोटे खगोलीय पिंडों की आपेक्षिक संख्या कम होगी। फलतः इस तारा-पुंज में यह आपेक्षिक संख्या (घनत्वों का अनुपात) $\left(\frac{\rho_d}{\rho_s}\right)_\kappa$ ही सम्पूर्ण आकाश के घनत्व-अनुपात $\frac{\rho_d}{\rho_s}$ की निम्न सीमा समझा जा सकता है, और तब सम्पूर्ण आकाश में द्रव्य के औसत घनत्व की निम्न सीमा हो जायगी।

$$\rho_s\left[1+\left(\frac{\rho_d}{\rho_s}\right)_\kappa\right]$$

यदि यह राशि $\frac{3h^2}{\kappa}$ से बड़ी हो तो हम यह समझ सकते हैं कि आकाश गोलाकार है। दूसरी ओर मैं ρ की ऊर्ध्व सीमा के किसी काफ़ी भरोसे के लायक अनुमान की कल्पना भी नहीं कर सकता।

(9) अंतिम बात जो कम महत्व की नहीं समझी जा सकती वह यह है। स्वोत्सर्जी (रेडियमधर्मी) (radio-active) खनिजों द्वारा प्राप्त पृथ्वी के दृढ़ पृष्ठ की आयु की अपेक्षा विश्व की आयु (उपर्युक्त अर्थ में) निश्चय ही अधिक होनी चाहिए। इन खनिजों द्वारा निर्णीत आयु पूर्णतः विश्वसनीय है। इस कारण यदि विश्व-संरचना का सिद्धान्त, जिसका प्रतिपादन यहाँ किया गया है, इस प्रकार निर्णीत परिणामों के प्रतिकूल सिद्ध हो जाय तो वह सिद्धान्त अवश्य ही प्रमाणित हो जायगा। ऐसी दशा में मुझे इस समस्या का कोई तर्कसंगत हल नहीं दिखाई देता।

परिशिष्ट २

असंमित क्षेत्र का आपेक्षिकीय सिद्धान्त

(Relativistic Theory of the Non-Symmetric Field)

असली विषय का प्रारम्भ करने से पहले मैं क्षेत्र-समीकरण-संघों (System of field equations) की "प्रबलता" (strength) का विवेचन करना चाहता हूँ। यहाँ जिस सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन किया गया है उसमें उपयोगी होने के अतिरिक्त सर्वथा स्वतंत्र रूप से भी इस विवेचन की स्वकीय रोचकता है। किन्तु हमारी समस्या के गंभीर अध्ययन के लिए तो यह अनिवार्य है।

क्षेत्र-समीकरण-संघ के "सांगत्य" (compatibility) तथा "प्रबलता" (Strength) के विषय में

यदि कुछ क्षेत्रीय चर तथा उनके क्षेत्र-समीकरण-संघ दिये हुए हों तो साधारणतः इन समीकरणों से उस क्षेत्र का निर्णय पूर्णतः नहीं हो सकता। इन क्षेत्र-समीकरणों का हल प्राप्त करने के लिए कुछ आवश्यक राशियाँ तब भी अनिर्णीत ही रह जायेंगी। क्षेत्र-समीकरण संघ से संगत अनिर्णीत राशियों की संख्या जितनी ही कम होगी उतना ही "प्रबल" वह संघ समझा जायगा। यह स्पष्ट है कि समीकरणों के चुनाव सम्बन्धी किसी अन्य दृष्टिकोण के अभाव में, कम प्रबल संघ की अपेक्षा अधिक प्रबल संघ को ही वरिष्ठ समझना पड़ेगा। हमारा उद्देश्य यह है कि समीकरण-संघ की इस प्रबलता को नापने की युक्ति हमें मालूम हो जाय। इस अन्वेषण का परिणाम यह निकलेगा कि ऐसा नाप निर्धारित करना भी संभव हो जायगा कि जिसके द्वारा हम उन समीकरण-संघों की प्रबलताओं की भी तुलना कर सकेंगे जिनके क्षेत्रीय चरों में, संख्या तथा जाति की दृष्टि से, विभिन्नता विद्यमान हो।

इस कार्य के लिए आवश्यक धारणाओं तथा विधियों को हम यहाँ क्रमशः वर्धमान जटिलतायुक्त उदाहरणों के द्वारा प्रस्तुत करेंगे। किन्तु इस विवेचन को हम

चतुर्विमितीय क्षेत्र तक ही सीमित रखेंगे और सम्बन्धित धारणाओं को भी इन उदाहरणों में क्रमागत रूप से ही निविष्ट करेंगे।

पहला उदाहरण—अदिष्ट तरंग समीकरण*

$$\phi_{,11}+\phi_{,22}+\phi_{,33}+\phi_{,44}=0$$

इस संघ में एक क्षेत्र-चर के लिए केवल एक ही अवकल समीकरण है। हम मान लेंगे कि किसी बिन्दु के आसपास ϕ का एक टेलर श्रेणी (Taylor series) के रूप में विस्तार किया जा सकता है (इसका अर्थ यह है कि ϕ का वैश्लेषिक लक्षण स्वीकार कर लिया गया है)। इस श्रेणी के समस्त गुणांकों के द्वारा यह फलन पूर्णतः निर्धारित हो जाता है। n वें वर्ण के गुणांकों (अर्थात् बिन्दु P पर ϕ के n-वें वर्ण (order) के व्युत्पन्नों) की संख्या $\frac{4\cdot 5\ldots\ldots(n+3)}{1\cdot 2\ldots\ldots n}$ होगी जिसे संक्षेप में $\binom{4}{n}$ लिखा जा सकता है। इन समस्त गुणांकों का स्वतंत्र निर्वाचन हो सकता था यदि उस अवकल समीकरण में इनके कुछ पारस्परिक सम्बन्ध गर्भित न होते। इस समीकरण के द्वितीय वर्ण (second order) का होने के कारण ये सम्बन्ध उस समीकरण का $(n-2)$ बार अवकलन करने से प्राप्त हो जायेंगे। इस प्रकार n-वें वर्ण के अवकलन के लिए हमें $\binom{4}{n-2}$ प्रतिबंध प्राप्त हो जाते हैं। अतः जो n-वें वर्ण के गुणांक स्वतंत्र रह जायेंगे उनकी संख्या होगी

$$z=\binom{4}{n}-\binom{4}{n-2} \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (1)$$

n चाहे जितना भी हो, यह संख्या धनात्मक ही रहेगी। अतः यदि n से छोटे समस्त वर्णों के स्वतंत्र गुणांक निर्धारित हो चुके हों तो, इनमें कोई परिवर्तन किये बिना ही, n-वें वर्ण के गुणांकों के प्रतिबंध सन्तुष्ट किये जा सकते हैं।

अनेक समीकरणों के संघों के लिए भी ऐसी ही युक्ति का उपयोग किया जा सकता है। यदि n-वें वर्ण के स्वतंत्र गुणांकों की संख्या शून्य से कम न हो जाय

* आगे के विवेचन में 'कामा' का चिह्न सदा आंशिक अवकलन को व्यक्त करेगा। यथा $\phi_{,i}=\frac{\partial\phi}{\partial x^i}$; $\phi_{,11}=\frac{\partial^2\phi}{\partial x^1\partial x^1}$, इत्यादि।

तो ऐसा समीकरण-संघ "पूर्णतः संगत" (absolutely compatible) कहलाता है। हम केवल ऐसे ही समीकरण संघों का विचार करेंगे। मैं जितने भी भौतिकी में प्रयुक्त समीकरण-संघों से परिचित हूँ वे सब इसी प्रकार के होते हैं।

अब हम समीकरण (1) को अन्य रूप में लिखेंगे। हम देखते हैं कि—

$$\binom{4}{n-2}=\binom{4}{n}\frac{(n-1)\cdot n}{(n+2)(n+3)}=\binom{4}{n}\left(1-\frac{z_1}{n}+\frac{z_2}{n^2}+\ldots\right)$$

जहाँ $z_1 = +6$

यदि हम इस विवेचन को n के बड़े मानों के लिए ही सीमित रखें तो हम कोष्ठक में $\frac{z_2}{n^2}$ आदि पदों को उपेक्षणीय समझ सकते हैं और तब हम समीकरण (1) के स्थान में अनन्तस्पर्शी रूप से (asymptotically) लिख सकते हैं कि—

$$z \sim \binom{4}{n}\frac{z_1}{n}=\binom{4}{n}\frac{6}{n} \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad (1a)$$

z_1 को हम "स्वतंत्रता के गुणांक" की संज्ञा देंगे और विचाराधीन परिस्थिति में उसका मान 6 है। जितना ही बड़ा यह गुणांक होगा उतना ही अधिक दुर्बल वह समीकरण-संघ होगा।

द्वितीय उदाहरण—**रिक्ताकाश के लिए मैक्सवैल का समीकरण**

$$\phi^{is}_{,s}=0\ ;\ \phi_{ik,l}+\phi_{kl,i}+\phi_{li,k}=0$$

प्रति संमित टेन्सर ϕ_{ik} के सहचर संकेतांकों को

$$\eta^{ik}=\begin{pmatrix}-1 & & & \\ & -1 & & \\ & & -1 & \\ & & & -1\end{pmatrix}$$

की सहायता से ऊपर उठाने से ϕ^{ik} प्राप्त होता है।

छः क्षेत्र-चरों के लिए ये 4+4 क्षेत्र-समीकरण हैं। इन आठ समीकरणों में दो समीकरण तो सर्वसमिकाएँ (identities) हैं। यदि इन क्षेत्र-समीकरणों के वामपक्ष क्रमशः G^i तथा H_{ikl} के द्वारा व्यक्त किये जायें तो दोनों सर्वसमिकाओं के रूप होंगे

$$G^i_{,i}=0\ ;\ H_{ikl,m}-H_{klm,i}+H_{lmi,k}-H_{mik,l}=0$$

यहाँ हमारी तर्क-धारा निम्नलिखित होगी—
इन 6 क्षेत्र-घटकों के टेलर-प्रसार (Taylor expansion) से हमें

$$6\binom{4}{n}$$

गुणांक n-वें वर्ण के मिलेंगे। और इन n-वें वर्ण के गुणांकों के लिए जिन प्रतिबंधों का पालन आवश्यक है वे इन प्रथम वर्ण के 8 क्षेत्र-समीकरणों का n-१ बार अवकलन करने से प्राप्त होंगे। अतः इन प्रतिबंधों की संख्या होगी—

$$8\binom{4}{n-1}$$

किन्तु ये सब प्रतिबंध एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हो सकते क्योंकि इन 8 समीकरणों में दो द्वितीय वर्ण की सर्वसमिकाएँ (identities) हैं। उनका $(n-2)$ बार अवकलन करने पर क्षेत्र-समीकरणों से प्राप्त प्रतिबंधों में

$$2\binom{4}{n-2}$$

प्रतिबंध बीजीय सर्वसमिकाएँ होती हैं। अतः n-वें वर्ण के स्वतंत्र गुणांकों की संख्या होगी

$$Z=6\binom{4}{n}-\left[8\binom{4}{n-1}-2\binom{4}{n-2}\right]$$

n के समस्त मानों के लिए z धनात्मक है। अतः यह समीकरण-संघ भी "पूर्णतः संगत" है। अब यदि इसके दक्षिण पक्ष में से गुणांक $\binom{4}{n}$ को बाहर निकाल लें तो अनन्त-स्पर्शी रूप में

$$Z=\binom{4}{n}\left(6-8\frac{n}{n+3}+2\frac{(n-1)\,n}{(n+2)\,(n+3)}\right)$$

$$\sim\binom{4}{n}\left[6-8\left(1-\frac{3}{n}\right)+2\left(1-\frac{6}{n}\right)\right]$$

$$\sim\binom{4}{n}\left[0+\frac{12}{n}\right]$$

अर्थात् यहाँ Z=12 होगा। इससे प्रगट होता है कि अदिष्ट तरंग-समीकरण (Z=6) की तुलना में यह समीकरण-संघ क्षेत्र के निर्णयन के लिए कम प्रबल है और यह भी मालूम हो जाता है कि इसकी प्रबलता कितनी कम है। दोनों ही

उदाहरणों में परिस्थिति यह है कि कोष्ठकगत अपरिवर्ती पद का लोप हो जाता है। इस बात से यह प्रगट हो जाता है कि इन समीकरण-संघों में चार चरों का कोई भी फलन स्वतंत्र नहीं रहता।

तीसरा उदाहरण—**रिक्ताकाश के लिये गुरुत्वीय समीकरण-संघ।**
हम इन्हें निम्नलिखित रूप में लिखेंगे—

$$R_{ik}=0 \;;\; g_{ik;l} - g_{sk}\,\Gamma^s_{il} - g_{is}\,\Gamma^s_{lk} = 0$$

R_{ik} में केवल Γ ही उपस्थित रहते हैं और उनकी अपेक्षा ये प्रथम वर्ण के होते हैं। यहाँ g और Γ को हम स्वतंत्र क्षेत्र-चर समझेंगे। द्वितीय समीकरण से प्रगट होता है कि Γ को प्रथम वर्ण के अवकलनवाली राशियाँ समझना सुविधाजनक है और इसका अर्थ यह है कि टेलर-प्रसार

$$\Gamma = \underset{0}{\Gamma} + \underset{1}{\Gamma}_s x_s + \underset{2}{\Gamma}_{st}\, x^s x^t + \;\dots\;\dots\;\dots\;\dots\;\dots\;\dots$$

में हम $\underset{0}{\Gamma}$ को तो प्रथम वर्ण का मानते हैं, $\underset{1}{\Gamma}_s$ को द्वितीय वर्ण का इत्यादि, इत्यादि। फलतः R_{ik} को द्वितीय वर्ण का समझना पड़ेगा। इन समीकरणों में चार बियांची (Bianchi) की सर्वसमिकाएँ हैं जिन्हें हमारी स्वीकृत पद्धति के अनुसार तृतीय वर्ण की समझना चाहिए।

व्यापक रूप से सहचर समीकरण-संघ में एक नवीन परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जो स्वतंत्र गुणांकों की यथार्थ गणना के लिए आवश्यक है। वह यह है कि केवल निर्देशांकों के रूपान्तरण के कारण किसी एक क्षेत्र के स्थान में जो दूसरा क्षेत्र प्रगट होता है उसे पहिले क्षेत्र ही का कोई अन्य निरूपण मात्र समझना चाहिए। फलतः g_{ik} के n–वें वर्ण के गुणांकों की संख्या

$$10\binom{4}{n}$$

में से केवल एक भाग ही ऐसा है जो यथार्थतः विभिन्न क्षेत्रों के लक्षणों को निर्धारित करने के लिए उपयोगी है। इसलिए किसी विशेष क्षेत्र को वास्तव में निर्णीत करने-वाले विस्तारण-गुणांकों की संख्या में कुछ कमी हो जाती है। अब हम इस कमी का परिकलन करेंगे।

g_{ik} के रूपान्तरण नियम

$$g^*_{ik} = \frac{\partial x^a}{\partial x^{i*}} \cdot \frac{\partial x^b}{\partial x^{k*}} \cdot g_{ab}$$

में g_{ab} तथा g_{ik} वस्तुतः एक ही क्षेत्र को निरूपित करते हैं। यदि x^* की अपेक्षा इस समीकरण का अवकलन n बार किया जाय तो हम देखेंगे कि चारों फलनों के x^*–सापेक्ष समस्त $(n+1)$-वें व्युत्पन्न g^* के व्यंजक के n-वें वर्ण के गुणांकों में उपस्थित होंगे अर्थात् जिन गुणांकों का क्षेत्र के निरूपण में कोई हाथ नहीं होता उनकी संख्या $4\binom{4}{n+1}$ होगी। इसलिए किसी भी व्यापक आपेक्षिकीय सिद्धान्त में उस सिद्धान्त के सहचरत्व की दृष्टि से n-वें वर्ण गुणांकों की सम्पूर्ण संख्या में से $4\binom{4}{n+1}$ को घटाना पड़ेगा। तब n-वें वर्ण के गुणांकों की गणना का परिणाम यह होगा।

शून्य कोटि के अवकलन की 10 राशियाँ g_{ik} और प्रथम वर्ण के अवकलन की 40 राशियाँ Γ^l_{ik} मिलकर अभी बताये हुए संशोधन के कारण n-वें वर्ण के गुणांकों की संख्या हो जायगी

$$10\binom{4}{n}+40\binom{4}{n-1}-4\binom{4}{n+1}$$

और इनके लिए क्षेत्र-समीकरण (द्वितीय वर्ण के 10 तथा प्रथम वर्ण के 40) जो प्रतिबंध प्रस्तुत करेंगे उनकी संख्या होगी

$$N = 10\binom{4}{n-2}+40\binom{4}{n-1}$$

किन्तु इन N प्रतिबंधों में जितनी सर्वसमिकाएँ तृतीय वर्ण की बियांची सर्वसमिकाओं के कारण विद्यमान होंगी उनकी संख्या

$$4\binom{4}{n-3}$$

को घटा देना पड़ेगा। अतः

$$z = \left[10 \binom{4}{n} + 40 \binom{4}{n-1} - 4 \binom{4}{n+1} \right] - \left[10 \binom{4}{n-2} + 40 \binom{4}{n-1} \right] + 4 \binom{4}{n-3}$$

फिर इसमें से गुणनखंड $\binom{4}{n}$ को बाहर निकाल कर, n के बड़े मानों के लिए, हम देखेंगे कि अनन्तस्पर्शी रूप में

$$z \sim \binom{4}{n} \left[0 + \frac{12}{n} \right]$$

इस प्रकार $z_1 = 12$ । यहाँ भी n के समस्त मानों के लिए z धनात्मक होगा। अतः यह समीकरण संघ भी उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार पूर्णतः संगत है। यह बात आश्चर्यजनक है कि रिक्ताकाश के गुरुत्वीय समीकरण भी अपने क्षेत्र को उतनी ही प्रबलतापूर्वक निर्णीत कर देते हैं जितनी प्रबलतापूर्वक विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र को मैक्सवैल के समीकरण निर्णीत करते हैं।

आपेक्षिकीय क्षेत्र-सिद्धान्त

(Relativistic Field Theory)

साधारण वक्तव्य

आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त ने जो वास्तविक कार्य किया है वह यह है कि उसने भौतिक विज्ञान को "अवस्थितित्वीय तंत्र (अथवा तंत्रों)" की धारणा की आवश्यकता से मुक्त कर दिया है। इस धारणा के संतोषजनक न होने के कई कारण हैं। पहिले तो बिना किसी गहरी बुनियाद के ही यह धारणा समस्त संभावित निर्देशांक-तंत्रों में से कुछ विशेष प्रकार के निर्देशांक-तंत्रों को प्रमुखता प्रदान कर देती है। और तब यह संकल्पना कर ली जाती है कि भौतिक विज्ञान के नियम केवल ऐसे ही निर्देशांक तंत्रों के लिए मान्य होते हैं (उदाहरण के लिए अवस्थितित्व का नियम और प्रकाश-वेग की नियतता का नियम)। इस प्रकार आकाश को भौतिक विवरण के अन्य सब अवयवों की तुलना में सर्वथा भिन्न और विशेष स्थान प्राप्त हो जाता है। समस्त भौतिक प्रक्रियाओं पर तो उसका निर्णयात्मक प्रभाव पड़ता है किन्तु वह स्वयं किसी भी प्रक्रिया के द्वारा प्रभावित नहीं होता। यद्यपि ऐसा

सिद्धान्त तर्क की दृष्टि से संभव हो सकता है किन्तु वह संतोषजनक नहीं समझा जा सकता। न्यूटन इस दोष से भली भाँति परिचित था किन्तु उसने यह भी स्पष्टतया समझ लिया था कि उस समय भौतिक विज्ञान के लिए और कोई दूसरा मार्ग खुला भी नहीं था। परवर्ती वैज्ञानिकों में मैख़ (Ernst Mach) ने ही इस बात पर सबसे अधिक ध्यान केन्द्रित किया था।

भौतिकी की मूल धारणाओं के न्यूटनोत्तरीय विकास में अवस्थितित्वीय तंत्र का अतिक्रम किन नवीनताओं के कारण संभव हुआ? सबसे पहिली नवीनता तो थी फ़ैरैडे (Faraday) और मैक्सवैल (Maxwell) के विद्युत्–चुम्बकीय सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित क्षेत्र की धारणा अथवा अधिक स्पष्ट रूप में यह धारणा कि क्षेत्र स्वयं ही एक स्वतंत्र सत्ता है और उसे अन्य अधिक मौलिक धारणाओं पर आश्रित नहीं समझा जा सकता। इस समय जहाँ तक हम निर्णय कर सकते हैं वहाँ तक तो आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त को हम केवल एक प्रकार का क्षेत्र-सिद्धान्त ही समझ सकते हैं। यदि हम इसी विश्वास को पकड़े हुए बैठे रहते कि वास्तविक जगत् ऐसे द्रव्य-विन्दुओं से निर्मित है जो अपने पारस्परिक बलों के प्रभाव से स्थानान्तरित होते हैं तो इस सिद्धान्त का विकास हो ही नहीं सकता था। यदि "तुल्यता के नियम" के द्वारा कोई न्यूटन को अवस्थितित्वीय तथा गुरुत्वीय द्रव्यमान की समता को समझाने का प्रयत्न करता तो न्यूटन को अवश्य ही यह आपत्ति उठानी पड़ती कि यह तो सचमुच सही है कि किसी त्वरित निर्देशांक तंत्र की अपेक्षा वस्तुओं में उतना ही त्वरण दिखाई देता है जितना कि उनमें किसी गुरुत्वाकर्षण युक्त खगोलीय पिंड के पृष्ठ के समीपवर्ती प्रदेश में उत्पन्न हो जाता है, किन्तु प्रथम परिस्थिति में त्वरण उत्पन्न करनेवाले द्रव्य-पुंज कहाँ हैं? यह स्पष्ट है कि आपेक्षिकता के सिद्धान्त में क्षेत्र की स्वतंत्रता की धारणा पहिले ही से मान ली गयी है।

गणित के जिस ज्ञान के द्वारा आपेक्षिकता के व्यापक सिद्धान्त की स्थापना संभव हुई है उसके लिए हम गाउस (Gauss) तथा रीमान (Riemann) के ज्यामितीय अनुसंधानों के ऋणी हैं। गाउस ने अपने "पृष्ठों के सिद्धान्त" में त्रिविमितीय यूक्लिडीय आकाश में अवस्थित पृष्ठों के मापनिक लक्षणों का अध्ययन किया है और यह प्रमाणित कर दिया है कि इन लक्षणों का वर्णन ऐसी धारणाओं के द्वारा हो सकता है जिनका सम्बन्ध केवल उन पृष्ठों से तो हो किन्तु उस आकाश से न हो जिसमें वे पृष्ठ अवस्थित हैं। साधारणतः किसी पृष्ठ पर कोई निर्देशांक-तंत्र वरिष्ट नहीं होता। इसलिए इस अध्ययन के ही कारण सबसे पहिले सम्बन्धित

राशियों को व्यापक निर्देशांकों द्वारा व्यक्त करना संभव हुआ था। रीमान ने पृष्ठों के इस द्वि-विमितीय सिद्धान्त का विस्तारण करके उसे कितनी ही मनमानी विमितियों वाले आकाश के लिए (अर्थात् रीमानीय मीट्रिक (metric) युक्त तथा द्वितीय कोटि (rank) के संमित टेन्सर द्वारा पारिभाषित आकाश के लिए) उपयुक्त रूप दे दिया है। इस प्रशंसनीय अध्ययन से उच्चतर-विमितीय मापनिक आकाशों की वक्रता का व्यापक व्यंजक प्राप्त हो गया है।

व्यापक आपेक्षिकता की स्थापना के लिए आवश्यक गणितीय सिद्धान्तों के ऊपर वर्णन किये हुए विकास का यह परिणाम हुआ कि पहिले तो यही समझा जाने लगा कि जिस मूल धारणा पर आपेक्षिकता का व्यापक सिद्धान्त आश्रित है वह रीमानीय मीट्रिक की धारणा ही है और इसी के कारण हमें अवस्थितित्वीय निर्देशांक-तंत्रों से मुक्ति मिली है। किन्तु बाद में लेवी-सिविटा (Levi-Civita) ने ठीक ही बतला दिया कि सिद्धान्त के जिस अवयव के कारण अवस्थितित्व-तंत्रों से छुट्टी पाना संभव हुआ वह तो वस्तुतः अनन्त सूक्ष्म विस्थापन क्षेत्र Γ^{l}_{ik} है। मीट्रिक का अथवा जिस संमित टेन्सर-क्षेत्र g_{ik} के द्वारा मीट्रिक निर्धारित होता है उसका सम्बन्ध अवस्थितित्वीय-तंत्रों से मुक्ति की प्राप्ति से केवल इतना ही है कि इन्हीं के द्वारा विस्थापन-क्षेत्र निर्णीत होता है। नीचे दिये हुए विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

एक अवस्थितित्वीय तंत्र से किसी अन्य अवस्थितित्वीय तंत्र में परिणमन एक विशेष प्रकार के रैखिक (एक घात) रूपान्तरण के द्वारा सम्पन्न होता है। यदि मनमानी दूरी पर अवस्थित दो विन्दुओं (P_1 और P_2) पर क्रमशः $\underset{1}{A}^i$ तथा $\underset{2}{A}^i$ दो ऐसे सदिश हों जिनके अनुरूप घटक बराबर हों ($\underset{1}{A}^i = \underset{2}{A}^i$) तो अनुमेय (admissible) रूपान्तरण में यह अनुबंध ज्यों का त्यों सुरक्षित रहता है। यदि रूपान्तरण-सूत्र

$$A^{i*} = \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{a}} \cdot A^{a}$$

में गुणांक $\frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{a}}$ निर्देशांक x^a से स्वतंत्र हों तो सदिश के घटकों का रूपान्तरण-सूत्र

स्थान पर अवलम्बित नहीं होगा। अतः यदि हम अवस्थितित्वीय-तंत्रों तक ही सीमित रहें तो दो विभिन्न विन्दुओं (P_1, P_2) वाले सदिशों की समता का अनुबंध निश्चर होगा। किन्तु यदि हम अवस्थितित्वीय तंत्र की धारणा का परित्याग कर दें अर्थात् निर्देशांकों के मनमाने संतत रूपान्तरण को अनुमेय मान लें और $\frac{\partial x^{i*}}{\partial x^a}$ का मान x^a पर अवलम्बित हो तो आकाश के दो विभिन्न विन्दुओं से सम्बद्ध सदिशों के घटकों की समता का निश्चरत्व नष्ट हो जायगा। अतः विभिन्न विन्दुओं के सदिशों की प्रत्यक्ष तुलना नहीं हो सकेगी। यही कारण है कि व्यापक आपेक्षिकीय सिद्धान्त में किसी दिये हुए टेन्सर से अवकलन के द्वारा नवीन टेन्सर नहीं बनाया जा सकता और ऐसे सिद्धान्त में निश्चर अनुबंधों की संख्या कुल मिलाकर बहुत कम होती है। इस कमी की पूर्ति अनन्त सूक्ष्म विस्थापन क्षेत्र के निवेषण से की जाती है। यह अवस्थितित्वीय तंत्र का इतना स्थान तो ले लेती है कि अनन्ततः निकटवर्ती विन्दुओं के सदिशों की तुलना संभव हो जाती है। इस धारणा से प्रारम्भ करके अब हम आपेक्षिकीय क्षेत्र सिद्धान्त को इस प्रकार प्रस्तुत करेंगे कि जिस किसी बात की हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यकता न हो वह उसमें से सावधानतापूर्वक निकाल दी जाय।

अनन्त सूक्ष्म विस्थापन क्षेत्र Γ

(The Infinitesimal Displacement Field Γ)

किसी विन्दु P (निर्देशांक x^t) के किसी प्रतिचर (contravariant) सदिश A^i का किसी अनन्ततः निकटवर्ती विन्दु ($x^t + dx^t$) के सदिश $A^i + \delta A^i$ से द्वि-रैखिक व्यंजक

$$\delta A^i = - \Gamma^i_{st} A^s dx^t \quad \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots \quad (2)$$

के द्वारा सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, जिसमें Γ x के फलन हैं। दूसरी ओर यदि A कोई सदिश-क्षेत्र हो तो A^i के घटक ($x^t + dx^t$) विन्दु पर होंगे

$$A^i + d\,A^i$$

जहाँ $d\,A^i = A^i_{,t}\, dx^t$ जहाँ ',t' का अर्थ है साधारण अवकलन $\frac{\partial}{\partial x^t}$

अतः निकटवर्ती विन्दु $x^t + dx^t$ पर इन दोनों सदिशों का अन्तर भी स्वयं एक सदिश $\left(A^i_{,t} + A^s \Gamma^i_{st}\right) dx^t = A^i_t\, dx^t$

होगा और उन दो अनन्ततः निकट विन्दुओं पर उस सदिश क्षेत्र के घटकों के सम्बन्ध को व्यक्त करेगा। यहाँ विस्थापन क्षेत्र अवस्थितित्वीय-तंत्र का स्थान ले लेता है क्योंकि इसके द्वारा प्राप्त यह सम्बन्ध वही है जो पहिले अवस्थितित्वीय-तंत्र के उपयोग से प्राप्त होता था। कोष्ठकगत व्यंजक (जिसे संक्षेप में A^{i}_{t} भी लिखा जा सकता है) टेन्सर है।

A^{i}_{t} का टेन्सरत्व ही Γ के रूपान्तरण नियम को निर्णीत करता है। पहिले तो हम लिखेंगे कि

$$A^{i*}_{k} = \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{i}} \cdot \frac{\partial x^{k}}{\partial x^{k*}} \cdot A^{i}_{k}$$

दोनों निर्देशांक-तंत्रों में एक ही संकेतांक के उपयोग का यह अर्थ नहीं है कि यह अनुरूपी घटकों को व्यक्त करता है अर्थात् x और x^* में 1 से 4 तक i के मान बिलकुल स्वतंत्र हैं। थोड़े अभ्यास के बाद इस संकेतन से समीकरण बहुत ही अधिक स्पष्ट हो जाते हैं।

अब हम A^{i*}_{k} के स्थान में $A^{i*}_{,k*} + A^{s*}\,\Gamma^{i*}_{sk}$

तथा A^{i}_{k} के स्थान में $A^{i}_{,k} + A^{s}\,\Gamma^{i}_{sk}$

और A^{i*} के स्थान में $\dfrac{\partial x^{i}}{\partial x^{i*}}$

तथा $\dfrac{\partial}{\partial x^{k*}}$ के स्थान में $\dfrac{\partial x^{k}}{\partial x^{k*}} \cdot \dfrac{\partial}{\partial x^{k}}$

लिख देंगे। इससे ऐसा समीकरण प्राप्त हो जाता है जिसमें Γ^* के केवल मूल निर्देशांक तंत्र की क्षेत्रीय राशियाँ तथा (मूल निर्देशांक x की अपेक्षा) उनके व्युत्पन्न ही उपस्थित होते हैं। Γ^* के लिए इन समीकरणों को हल करने पर अभीष्ट रूपान्तरण सूत्र प्राप्त हो जाता है।

$$\Gamma^{i*}_{kl} = \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{i}} \cdot \frac{\partial x^{k}}{\partial x^{k*}} \cdot \frac{\partial x^{l}}{\partial x^{l*}}\,\Gamma^{i}_{kl} - \frac{\partial^2 x^{i*}}{\partial x^{s}\partial x^{t}} \cdot \frac{\partial x^{s}}{\partial x^{k*}} \cdot \frac{\partial x^{t}}{\partial x^{l*}} \quad \ldots (3)$$

इसके दक्षिण पक्ष के द्वितीय पद को थोड़ा और सरल किया जा सकता है

$$-\frac{\partial^2 x^{i*}}{\partial x^{s}\partial x^{t}} \cdot \frac{\partial x^{s}}{\partial x^{k*}} \cdot \frac{\partial x^{t}}{\partial x^{l*}} = -\frac{\partial}{\partial x^{l*}}\left(\frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{s}}\right) \cdot \frac{\partial x^{s}}{\partial x^{k*}}$$

$$= -\frac{\partial}{\partial x^{l*}}\left(\frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{k*}}\right) + \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^2 x^s}{\partial x^k \partial x^l}$$

$$= \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^2 x^s}{\partial x^{k*} . \partial x^{l*}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \quad (3a)$$

ऐसी राशि का नाम "आभासी टेन्सर" (pseudo-tensor) है। रैखिक रूपान्तरण से तो यह टेन्सर में परिणत हो जाता है किन्तु अ-रैखिक रूपान्तरण में इसमें एक पद और जुड़ जाता है जिसमें वह व्यंजक जिसका रूपान्तरण करना था और जो केवल रूपान्तरण के गुणांकों ही पर अवलम्बित होता है नहीं रहता।

विस्थापन क्षेत्र के विषय में कुछ सूचनाएँ।

(1) नीचेवाले संकेतांकों के स्थान परिवर्तन से प्राप्त राशि $\widetilde{\Gamma}^i_{kl}\left(\equiv \Gamma^i_{lk}\right)$ का रूपान्तरण भी समीकरण (3) के अनुसार ही होता है। अतः वह भी विस्थापन क्षेत्र ही है।

(2) नीचे के संकेतांकों (k^*, l^*) की अपेक्षा समीकरण (3) के संमितिकरण (symmetrizing) से या प्रति-संमितिकरण (anti-symmetrizing) से दो समीकरण प्राप्त हो जाते हैं—

$$\Gamma^{i*}_{\underline{kl}}\left\{= \tfrac{1}{2}\left(\Gamma^{i*}_{kl} + \Gamma^{i*}_{lk}\right)\right\} = \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{i}} \cdot \frac{\partial x^{k}}{\partial x^{k*}} \cdot \frac{\partial x^{l}}{\partial x^{l*}} \Gamma^{i}_{\underline{kl}} - \frac{\partial^2 x^{i*}}{\partial x^s \partial x^t} \cdot \frac{\partial x^{s}}{\partial x^{k*}} \cdot \frac{\partial x^{t}}{\partial x^{l*}}$$

$$\Gamma^{i*}_{\underset{\vee}{kl}}\left\{= \tfrac{1}{2}\left(\Gamma^{i*}_{kl} - \Gamma^{i*}_{lk}\right)\right\} = \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^{i}} \cdot \frac{\partial x^{k}}{\partial x^{k*}} \cdot \frac{\partial x^{l}}{\partial x^{l*}} \cdot \Gamma^{i}_{\underset{\vee}{kl}}$$

अतः Γ^i_{kl} के दोनों संमित तथा प्रति-संमित अवयवों का रूपान्तरण स्वतंत्र रूप से अर्थात् बिना मिश्रण के हो जाता है। इसलिए रूपान्तरण के दृष्टिकोण से ये राशियाँ एक दूसरी से स्वतंत्र मालूम होती हैं। द्वितीय समीकरण से प्रगट होता है कि $\Gamma^i_{\underset{\vee}{kl}}$ का रूपान्तरण भी टेन्सर ही की तरह होता है। अतः रूपान्तरण की दृष्टि से इन दोनों अवयवों को जोड़कर एक राशि बनाना पहिले अस्वाभाविक दिखाई देता है।

(3) दूसरी ओर, पारिभाषिक समीकरण (2) में Γ के नीचेवाले संकेतों के कार्य बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं। इसलिये Γ पर नीचेवाले संकेतांकों के सम्बन्ध में संमिति का प्रतिबंध लगाने के लिए बाध्य करनेवाला कोई भी कारण नहीं है। फिर भी यदि ऐसा प्रतिबंध लगा दिया जाय तो हमें शुद्ध गुरुत्वीय क्षेत्र का सिद्धान्त प्राप्त हो जाता है। किन्तु यदि Γ पर यह संमिति सम्बन्धी प्रतिबंध न लगाया जाय तो हमें गुरुत्व का ऐसा व्यापकीकृत नियम प्राप्त हो जाता है जो मुझे यथार्थतः प्राकृतिक जान पड़ता है।

वक्रता का टेन्सर

(The Curvature Tensor)

यद्यपि स्वयं Γ-क्षेत्र में टेन्सर के लक्षण विद्यमान नहीं हैं तथापि उसमें किसी अन्य टेन्सर का अस्तित्व गर्भित है। इस टेन्सर को प्राप्त करने की सबसे आसान विधि यह है कि समीकरण (2) के अनुसार सदिश A^i को किसी पृष्ठ के किसी अनन्त सूक्ष्म द्विविमितीय अवयव की परिधि के मार्ग से विस्थापित करने से पूरे एक चक्कर में होनेवाले परिवर्तन का परिकलन कर लिया जाय। इस परिवर्तन में सदिश के लक्षण विद्यमान होंगे।

मान लीजिए कि $\overset{\circ}{x}{}^t$ किसी अचल विन्दु के निर्देशांक हैं और x^t उसी परिधि के किसी अन्य बिन्दु के निर्देशांक हैं। तब $\xi^t = x^t - \overset{\circ}{x}{}^t$ परिधि के समस्त बिन्दुओं के लिए स्वल्प होगा और उसका उपयोग पारिमाणिक कोटि के निर्धारण के लिए किया जा सकता है।

तब जिस अनुकल $\oint \delta A^i$ का परिकलन करना है उसे अधिक स्पष्ट संकेतन में यों लिखा जा सकता है :

$$-\oint \Gamma^i_s \underline{A}^s dx^t \text{ अथवा } -\oint \underline{\Gamma^i_{st}}\, \underline{A^s}\, d\xi^t$$

अनुकल्य (integrand) में राशियों के नीचे रेखा खींचने से यह व्यक्त होता है कि वे राशियाँ परिधि के क्रमागत विन्दुओं पर ली गयी हैं (न कि आदि विन्दु $\xi^t = 0$ पर)।

पहिले तो हम परिधि के किसी मान चाहे विन्दु ξ^t पर $\underline{A}^i$ के मान का निम्नतम सन्निकटन तक परिकलन करेंगे। इस निम्नतम सन्निकटन को प्राप्त करने के लिए

अनुकलन असंवृत पथ (open path) पर किया जाता है और उसमें $\underline{\Gamma^{i}_{st}}$ तथा $\underline{A^s}$ के स्थान में अनुकलन के आदि विन्दु ($\xi^t = 0$) वाले मान Γ^{i}_{st} तथा A^s का उपयोग किया जाता है। तब अनुकलन से यह मिलता है—

$$\underline{A^i} = A^i - \Gamma^{i}_{st} A^s \int d\xi^t = A^i - \Gamma^{i}_{st} A^s \xi^t$$

इसमें जिन पदों की उपेक्षा की गयी है वे ξ की द्वितीय अथवा उच्चतर कोटियों के हैं।

उतने ही सन्निकटन तक यह भी तुरन्त प्राप्त हो जाता है—

$$\underline{\Gamma^{i}_{st}} = \Gamma^{i}_{st} + \Gamma^{i}_{st,r}\xi^r$$

इन व्यंजकों को उपर्युक्त अनुकल में निविष्ट करने से और संकलन के संकेतांकों के उपयुक्त निर्वाचन से पहिले तो यह मिलता है—

$$-\oint \Gamma^{i}_{st} + \Gamma^{i}_{st,q}\xi^q \Big) \Big(A^s - \Gamma^{s}_{pq} A^p \xi^q \Big) d\xi^t$$

जिसमें ξ के अतिरिक्त अन्य समस्त राशियों के आदि विन्दुवाले मान ही प्रयुक्त हुए हैं। तब इसका मान हो जायगा

$$-\Gamma^{i}_{st} A^s \oint d\xi^t - \Gamma^{i}_{st,q} A^s \oint \xi^q d\xi^t + \Gamma^{i}_{st}\Gamma^{s}_{pq} A^p \oint \xi^q d\xi^t$$

इसमें अनुकलन पूरी संवृत परिधि के लिए करना होगा। $(\xi)^2$ का अनुपाती पद छोड़ दिया गया है क्योंकि वह उच्चतर कोटि का है। पहिले पद का तो लोप हो जायगा क्योंकि उसका अनुकल शून्य है। शेष दो पदों के सम्मेलन से प्राप्त होगा

$$\Big[-\Gamma^{i}_{pt,q} + \Gamma^{i}_{st}\Gamma^{s}_{pq} \Big] A^p \oint \xi^q d\xi^t$$

उस परिधि पर विस्थापन करने से सदिश A^i में जो परिवर्तन $\triangle A^i$ होता है वह यही है। अब

$$\oint \xi^q d\xi^t = \oint d(\xi^q \xi^t) - \oint \xi^t d\xi^q = -\oint \xi^t d\xi^q$$

अतः यह अनुकल t तथा q की अपेक्षा प्रति-संमित है और इसमें टेन्सर के लक्षण भी विद्यमान हैं, इसे हम संकेत f^{tq}_{v} के द्वारा व्यक्त करेंगे। यदि f^{tq}_{v} कोई मनमाना

टेन्सर होता तब तो $\triangle A^i$ के सदिश होने का यह अर्थ होता कि एक को छोड़कर पिछले सूत्र में कोष्ठक-गत व्यंजक भी टेन्सर है। किन्तु प्रस्तुत परिस्थिति में कोष्ठक-गत व्यंजक में टेन्सरत्व का अनुमान t तथा q की अपेक्षा प्रति-संमित करने पर ही हो सकता है। यही वक्रता टेन्सर R^i_{klm} है—

$$R^i_{klm} \equiv \Gamma^i_{kl,m} - \Gamma^i_{km,l} - \Gamma^i_{sl}\Gamma^s_{km} + \Gamma^l_{sm}\Gamma^s_{kl} \quad \ldots \quad \ldots \quad (4)$$

इसके द्वारा समस्त संकेतांकों के स्थान नियत हो जाते हैं। i तथा m की अपेक्षा आकुंचन करने से आकुंचित वक्रता-टेन्सर R_{ik} प्राप्त हो जाता है :

$$R_{ik} = \Gamma^s_{ik,s} - \Gamma^s_{is,k} - \Gamma^s_{it}\Gamma^t_{sk} + \Gamma^s_{ik}\Gamma^t_{st} \quad \ldots \quad \ldots \quad (4a)$$

λ — रूपान्तरण
(The λ — transformation)

इस वक्रता में एक गुण ऐसा है जो आगे चलकर महत्वपूर्ण प्रमाणित होगा। निम्नलिखित किसी विस्थापन-क्षेत्र Γ के लिए हम एक नवीन Γ^* की परिभाषा सूत्र के द्वारा दे सकते ह—

$$\Gamma^{l*}_{ik} = \Gamma^l_{ik} + \delta^l_i \lambda_{,k} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (5)$$

जहाँ λ निर्देशांकों का कोई भी मनमाना फलन है और δ^l_i क्रोनेकर टेंसर (Kronecker tensor) है ('λ-रूपान्तरण')। यदि Γ^* के स्थान में (5) का दक्षिण पक्ष लिखकर $R^i_{klm}\ (\Gamma^*)$ का निर्माण करें तो λ लुप्त हो जायगा। अत:

$$\left.\begin{aligned} R^i_{klm}(\Gamma^*) &= R^i_{klm}(\Gamma) \\ \text{और}\quad R_{ik}(\Gamma^*) &= R_{ik}(\Gamma) \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad \ldots \quad (6)$$

अत: λ —रूपान्तरण में वक्रता निश्चर होती है (λ—निश्चरता)। फलत: जिस सिद्धान्त में Γ केवल वक्रता-टेन्सर ही में विद्यमान हो, उससे Γ—क्षेत्र पूर्णत: तो नहीं

किन्तु फलन λ तक ही निर्णीत सकता है और यह λ अनिश्चित रहता है। ऐसे सिद्धान्त में Γ तथा Γ* को एक ही क्षेत्र के विभिन्न निरूपण समझना चाहिए ठीक उसी प्रकार मानो Γ से Γ* केवल निर्देशांक-रूपान्तरण के द्वारा प्राप्त किये गये हों।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि λ —रूपान्तरण के द्वारा i तथा k की अपेक्षा संमित Γ से असंमित (non-symmetric) Γ प्राप्त होता है। यह बात निर्देशांक-रूपान्तरण से विपरीत है। ऐसे सिद्धान्त में Γ के संमितीय प्रतिबंध की कोई वास्तविक सार्थकता नहीं रहती।

λ —निश्चरता की मुख्य सार्थकता इस तथ्य में है कि क्षेत्र-समीकरण-संघ की 'प्रबलता' पर उसका प्रभाव पड़ता है जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे।

"विनिमय—निश्चरता" का प्रतिबंध

(The requirement of Transposition-Invariance)

असंमित क्षेत्रों के निवेषण से निम्नलिखित कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। यदि Γ^l_{ik} विस्थापन-क्षेत्र हो तो $\widetilde{\Gamma}^l_{ik}\left(=\Gamma^l_{ki}\right)$ भी वैसा ही क्षेत्र होगा। यदि g^{ik} टेन्सर हो तो $\widetilde{g}_{ik}\left(=g_{ki}\right)$ भी टेन्सर ही होगा। इसके कारण सहचर रचनाएँ (co-variant formations) बहुत अधिक संख्या में प्राप्त हो जाती हैं और उनमें से केवल आपेक्षिकता के सिद्धान्त के सहारे किसी विशेष रचना को चुनना संभव नहीं होता। इस कठिनाई का हम एक उदाहरण प्रस्तुत करेंगे और यह भी बतायेंगे कि नैसर्गिक रूप से इसका निराकरण किस प्रकार हो सकता है।

संमित क्षेत्र के सिद्धान्त में निम्नलिखित टेन्सर W_{ikl} का कार्य महत्वपूर्ण है।

$$W_{ikl} = g_{ik,l} - g_{sk}\Gamma^s_{il} - g_{is}\Gamma^s_{lk}$$

यदि इसे शून्य के बराबर मान लिया जाय तो ऐसा समीकरण प्राप्त हो जाता है जिससे Γ को g के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है अर्थात् Γ का निरसन (elimination) हो सकता है। यदि हम इन तथ्यों से प्रारम्भ करें कि (१) $A^i_{;l} = A^i_{,l} + A^s\Gamma^i_{sl}$ टेन्सर होता है जैसाकि पहिले प्रमाणित किया जा चुका है और (२) किसी

भी प्रतिचर टेन्सर को हम $\sum_{t} A^i_{(t)} B^k_{(t)}$ के रूप में व्यक्त कर सकते हैं तो बिना कठिनाई के यह प्रमाणित हो सकता है कि उपर्युक्त व्यंजक में टेन्सर के लक्षण तभी प्रगट होंगे जब g तथा Γ के क्षेत्र संमित न रहें।

किन्तु इन क्षेत्रों के संमित होने पर भी, यदि अंतिम पद Γ^s_{lk} में l, k का विनिमय कर दिया जाय अर्थात् यदि उसके स्थान में Γ^s_{kl} लिख दिया जाय तो टेन्सर-लक्षण लुप्त नहीं होता। इसका कारण यह है कि $g_{is}\left(\Gamma^s_{kl} - \Gamma^s_{kl}\right)$ टेन्सर होता है। अन्य प्रकार की रचनाएँ भी ऐसी संभव हैं कि जिनमें टेन्सर-लक्षण सुरक्षित रहता है और जिन्हें हम असंमित क्षेत्र के लिए उपर्युक्त व्यंजक के ही विस्तारण समझ सकते हैं। किन्तु वे इतने सरल नहीं हैं। फलतः यदि उपर्युक्त व्यंजक को शून्य के बराबर रखने से, g और Γ में जो अनुबंध प्राप्त होता है उसे असंमित क्षेत्र के लिए विस्तारित करना अभीष्ट हो तो ऐसा मालूम होता है कि इस कार्य में एक अनिश्चित निर्वाचन भी निहित है।

किन्तु उपर्युक्त रचना में एक गुण ऐसा है जो इसे अन्य संभव रचनाओं से पृथक् कर देता है। यदि इसमें g_{ik} के स्थान में $\widetilde{g_{ik}}$ तथा Γ^l_{ik} के स्थान में $\widetilde{\Gamma}^l_{ik}$ एक ही साथ रख दिये जायँ और तब संकेतांक i और k का अन्योन्य प्रतिस्थापन कर दिया जाय तो यह रचना अपना मूल रूप पुनः प्राप्त कर लेती है अर्थात् यह रचना i, k की अपेक्षा "विनिमय–संमित" है। इस व्यंजक को शून्य के बराबर रखने से जो समीकरण बनता है वह "विनिमय निश्चर" है। यदि g और Γ संमित हों तब तो यह प्रतिबंध स्वभावतः ही सन्तुष्ट हो जायगा। क्षेत्रीय राशियां संमित होनी चाहिए इस प्रतिबंध का यह एक व्यापकीकरण है।

अब हम असंमित क्षेत्र-समीकरणों के विषय में यह संकल्पना (postulate) करेंगे कि वे "विनिमय—निश्चर" होते हैं। मेरे विचार में भौतिक दृष्टि से इस परिकल्पना का वही अर्थ है जो इस प्रतिबंध का है कि भौतिकीय नियमों में धन तथा ऋण विद्युत् संमित रूप से निविष्ट होने चाहिए।

(4a) पर नज़र डालते ही यह प्रगट हो जायगा कि टेन्सर R_{ik} पूर्णतः विनियम—संमित नहीं है क्योंकि i, k के विनिमय से वह $\overset{*}{R}_{ik}$ में रूपान्तरित हो जाता है।

$$R^*_{ik} = \Gamma^s_{ik,s} - \Gamma^s_{sk,i} - \Gamma^s_{it}\Gamma^t_{sk} + \Gamma^s_{ik}\Gamma^t_{st} \qquad \ldots \qquad (4b)$$

विनिमय संमित क्षेत्र-समीकरण स्थापित करने के प्रयत्न में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उनका मूल कारण यही है।

आभासी टेन्सर U^l_{ik} (The Pseudo tensor U^l_{ik})

R_{ik} में Γ^l_{ik} के ऐवज में थोड़ा सा भिन्न आभासी टेन्सर U^l_{ik} निविष्ट करने से भी एक विनिमय संमित टेन्सर बन सकता है। (4a) में जो दो पद Γ की अपेक्षा रैखिक हैं उनको वैधानिकत: संयुक्त करके एक ही पद का रूप दिया जा सकता है। $\Gamma^s_{ik,s} - \Gamma^s_{is,k}$ के स्थान में $(\Gamma^l_{ik} - \Gamma^t_{it}\delta^l_k)$, लिखकर निम्नलिखित समीकरण के द्वारा एक नवीन आभासी टेन्सर U^l_{ik} बना लिया जाता है —

$$U^l_{ik} = \Gamma^l_{ik} - \Gamma^t_{it}\delta^l_k \qquad (7)$$

और (7) का k तथा l की अपेक्षा आकुंचन करने से यह परिणाम निकलता है कि

$$U^l_{il} = -3\Gamma^l_{il}$$

इसलिये U के पदों से Γ को निम्नलिखित समीकरण के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है —

$$\Gamma^l_{ik} = U^l_{ik} - \frac{1}{3}U^t_{it}\delta^l_k \qquad (7a)$$

(4a) में इन्हें निविष्ट करने से आकुंचित वक्रता टेन्सर U के पदों में ही आ जायगा

$$S_{ik} = U^s_{ik,s} - U^s_{it}U^t_{sk} + \frac{1}{3}U^s_{is}U^t_{tk} \qquad (8)$$

इसी बात के कारण असंमित क्षेत्रों के सिद्धान्त में आभासी टेन्सर U इतना मूल्यवान है।

U का λ—रूपान्तरण

यदि (5) में Γ के स्थान में U लिखे जायें तो सुगम परिकलन के द्वारा यह होगा

$$U^{l*}_{ik} = U^l_{ik} + (\delta^l_i\lambda_{,k} - \delta^l_k\lambda_{,i}) \qquad \ldots \qquad (9)$$

यह समीकरण U के λ—रूपान्तरण को निर्धारित करता है। समीकरण (8) इस रूपान्तरण की दृष्टि से निश्चर है $[S_{ik}(U^*) = S_{ik}(U)]$।

U के लिए रूपान्तरण—नियम

यदि $(7a)$ की सहायता से (3) तथा $(3a)$ में Γ की जगह U का उपयोग किया जाय तो

$$U^{l*}_{ik} = \frac{\partial x^{l*}}{\partial x^{l}} \cdot \frac{\partial x^{i}}{\partial x^{i*}} \cdot \frac{\partial x^{k}}{\partial x^{k*}} U^{l}_{ik} + \frac{\partial x^{l*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^{2} x^{s}}{\partial x^{i*} \partial x^{k*}} - \delta^{l*}_{k*} \frac{\partial x^{t*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^{2} x^{s}}{\partial x^{i*} \partial x^{t*}} \quad \ldots\ldots \quad (10)$$

यहां भी ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि दोनों निर्देशांक-तंत्रों के संकेतों के लिए एक-से अक्षरों का उपयोग किया गया है फिर भी वे 1 से 4 तक के मान स्वतंत्र रूप से ग्रहण करते हैं। इस सूत्र के विषय में यह भी विचारणीय है कि अंतिम पद के कारण यह i और k की अपेक्षा विनिमय-संमित नहीं है। यदि यह प्रमाणित कर दिया जाय कि यह रूपान्तरण एक विनिमय-संमित निर्देशांक-रूपान्तरण तथा एक λ—रूपान्तरण का सम्मेलन समझा जा सकता है तो इस विचित्र परिस्थिति का कारण स्पष्ट हो जाता है। इस उद्देश्य से पहिले तो हम अंतिम पद को निम्न-लिखित रूप में व्यक्त करेंगे—

$$-\tfrac{1}{2}\left[\delta^{l*}_{k*} \frac{\partial x^{t*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^{2} x^{s}}{\partial x^{i*} \partial x^{t*}} + \delta^{l*}_{i*} \cdot \frac{\partial x^{t*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^{2} x^{s}}{\partial x^{k*} \partial x^{t*}}\right] + \tfrac{1}{2}\left[\delta^{l*}_{i*} \frac{\partial x^{t*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^{2} x^{s}}{\partial x^{k*} \partial x^{t*}} - \delta^{l*}_{k*} \frac{\partial x^{t*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^{2} x^{s}}{\partial x^{i*} \partial x^{t*}}\right] \quad \ldots \quad (10a)$$

इन दो पदों में से प्रथम विनिमय-संमित है। उसे (10) के दक्षिण पक्ष के प्रथम दो पदों से मिलाने पर एक व्यंजक K^{l*}_{ik} प्राप्त हो जाता है। अब विचार करिए कि यदि रूपान्तरण

$$U^{l*}_{ik} = K^{l*}_{ik}$$

के बाद λ—रूपान्तरण

$$U^{l**}_{ik} = U^{l*}_{ik} + \delta^{l*}_{i*}\lambda_{,k*} - \delta^{l*}_{k*}\lambda_{,i*}$$

कर दिया जाय तो क्या परिणाम होगा। रूपान्तरणों के इस सम्मेलन से प्राप्त

$$U^{l**}_{ik} - K^{l*}_{ik} + \left(\delta^{l*}_{i*}\lambda_{,k*} - \delta^{l*}_{k*}\lambda_{,i*}\right)$$

हो जायगा। इसका अर्थ यह है कि (10) को भी हम ऐसा ही सम्मेलन समझ सकेंगे यदि (10 a) के द्वितीय पद को भी $\delta^{l^*}_{i*}\ \lambda_{,k*} - \delta^{l^*}_{k*}\ \lambda_{,i*}$ के सदृश रूप दिया जा सके। और इसके लिए ऐसे λ का अस्तित्व प्रमाणित कर देना ही काफ़ी है जिससे

$$\frac{1}{2}\ \frac{\partial x^{l*}}{\partial x^{s}} \cdot \frac{\partial^2 x^{s}}{\partial x^{k*}\partial x^{l*}} = \lambda_{;k*} \quad \ldots \quad \ldots \quad (11)$$

$$\left(\text{और } \frac{1}{2}\ \frac{\partial x^{l*}}{\partial x^{s}}\ \frac{\partial^2 x^{s}}{\partial x^{i*}\partial x^{l*}} = \lambda_{i,*}\right)$$

हो जाय।

इस (अभी तक कल्पित) समीकरण के वाम पक्ष का रूपान्तरण करने के लिए हमें पहिले तो $\frac{\partial x^{l*}}{\partial x^{s}}$ को उत्क्रम रूपान्तरण (inverse transformation) के गुणांक $\frac{\partial x^{a}}{\partial x^{b*}}$ के द्वारा व्यक्त करना होगा। एक ओर तो है

$$\frac{\partial x^{p}}{\partial x^{l*}} \cdot \frac{\partial x^{l*}}{\partial x^{s}} = \delta^{p}_{s} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (a)$$

और दूसरी ओर है

$$\frac{\partial x^{p}}{\partial x^{l*}}\ V^{s}_{l*} = \frac{\partial x^{p}}{\partial x^{l*}} \cdot \frac{\partial D}{\partial\left(\frac{\partial x^{s}}{\partial x^{l*}}\right)} = D\delta^{p}_{s}$$

यहां V^{s}_{l*} से $\frac{\partial x^{s}}{\partial x^{l*}}$ का सह-गुणांक (co-factor) व्यक्त होता है और वह स्वयं भी सारणिक (determinant) $D = \left|\frac{\partial x^{a}}{\partial x^{b*}}\right|$ के $\frac{\partial x^{s}}{\partial x^{l*}}$ —सापेक्ष अव-कलन के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। अतः हम यह भी लिख सकते हैं कि

$$\frac{\partial x^{p}}{\partial x^{l*}} \cdot \frac{\partial \log D}{\partial\left(\frac{\partial x^{s}}{\partial x^{l*}}\right)} = \delta^{p}_{s} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (b)$$

(a) और (b) का परिणाम यह है कि

$$\frac{\partial x^{t*}}{\partial x^s} = \frac{\partial \log D}{\partial \left(\frac{\partial x^s}{\partial x^{t*}} \right)}$$

इस अनुबंध के कारण (11) का वामपक्ष इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$\tfrac{1}{2} \frac{\partial \log D}{\partial \left(\frac{dx^s}{\partial x^{t*}} \right)} \cdot \left(\frac{\partial x^s}{\partial x^{t*}} \right)_{,k*} = \tfrac{1}{2} \frac{\partial \log D}{\partial x^{k*}}$$

इसका अर्थ यह है कि

$$\lambda = \tfrac{1}{2} \log D$$

के द्वारा (11) सन्तुष्ट हो जाता है। अतः यह प्रमाणित हो जाता है कि रूपान्तरण (10) को हम विनिमय-संमित रूपान्तरण

$$U^{l}_{ik}{}^{*} = \frac{\partial x^{l*}}{\partial x^l} \cdot \frac{\partial x^i}{\partial x^{i*}} \cdot \frac{\partial x^k}{\partial x^{k*}} U^l_{ik} + \frac{\partial x^{l*}}{\partial x^s} \cdot \frac{\partial^2 x^s}{\partial x^{i*} \partial x^{k*}}$$

$$- \tfrac{1}{2} \left[\delta^{l*}_{k*} \cdot \frac{\partial x^{t*}}{\partial x^s} \cdot \frac{\partial^2 x^s}{\partial x^{i*} . \partial x^{t*}} + \delta^{l*}_{i*} \cdot \frac{\partial x^{t*}}{\partial x^s} \cdot \frac{\partial^2 x^s}{\partial x^{k*} \partial x^{t*}} \right] \quad \ldots \text{(10b)}$$

का और एक λ—रूपान्तरण का सम्मेलन समझ सकते हैं। अतः (10a) के स्थान में (10b) ही U का रूपान्तरण—सूत्र समझा जा सकता है। U—क्षेत्र के जिस रूपान्तरण में केवल निरूपण का रूप मात्र ही परिवर्तित होता हो उसे हम (10b) के अनुसार निर्देशांक-रूपान्तरण तथा एक λ—रूपान्तरण के सम्मेलन के द्वारा व्यक्त कर सकते हैं।

विचरण-नियम तथा क्षेत्र-समीकरण
(Variational Principal and Field-Equations)

किसी विचरण-नियम के द्वारा क्षेत्र-समीकरणों की व्युत्पत्ति से लाभ यह है कि इस प्रकार प्राप्त समीकरणों का सांगत्य (compatibility) निश्चित हो जाता है और व्यापक सहचरत्व से सम्बद्ध सर्वसमिका (बियांची=Bianchi सर्वसमिका) तथा संरक्षण नियम (conservation laws) सुव्यवस्थित (systematic) रूप में प्राप्त हो जाते हैं।

जिस अनुकल को विचरित करना हो उसमें आवश्यक है कि अनुकल्य H एक अदिष्ट घनत्व हो। हम R_{ik} से अथवा S_{ik} से ऐसे घनत्व का निर्माण करेंगे। इसके

लिए सरलतम प्रक्रिया यह है कि Γ या U के अतिरिक्त एक ऐसा सहचर टेन्सर घनत्व G^{ik} भी निविष्ट कर दिया जाय जिसका भार (weight) 1 हो और और यह लिख दिया जाय कि

$$H = G^{ik} R_{ik} \ (= G^{ik} S_{ik}) \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (12)$$

तब G^{ik} के लिए रूपान्तरण–नियम होना चाहिए

$$G^{ik*} = \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^i} \cdot \frac{\partial x^{k*}}{\partial x^k} G^{ik} \left| \frac{\partial x^t}{\partial x^{t*}} \right| \quad \ldots \quad \ldots \quad (13)$$

यहां भी एक से संकेताक्षरों का उपयोग होने पर भी विभिन्न निर्देशांक-तंत्रों के संकेतांकों को एक दूसरे से स्वतंत्र समझना चाहिए। तब वस्तुतः हम देखेंगे कि

$$\int H^* d\tau^* = \int \frac{\partial x^{i*}}{\partial x^i} \cdot \frac{\partial x^{k*}}{\partial x^k} G^{ik} \left| \frac{\partial x^t}{\partial x^{t*}} \right| \cdot \frac{\partial x^s}{\partial x^{i*}} \cdot \frac{\partial x^t}{\partial x^{k*}} S_{st} \left| \frac{\partial x^{r*}}{\partial x^r} \right| d\tau$$

$$= \int H d\tau$$

अर्थात् यह अनुकल रूपान्तरण-निश्चर है। इसके अतिरिक्त यह अनुकल λ-रूपान्तरण (5) या (9) की अपेक्षा भी निश्चर है क्योंकि Γ अथवा U के द्वारा व्यक्त R_{ik} और फलतः H भी λ–रूपान्तरण की अपेक्षा निश्चर हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि $\int H d\tau$ के विचरण से जो समीकरण प्राप्त किये जायेंगे वे भी निर्देशांक-रूपान्तरण तथा λ–रूपान्तरण की अपेक्षा सहचर होंगे।

किन्तु हम यह संकल्पना करेंगे कि ये क्षेत्र समीकरण G, Γ अथवा G,U इन दोनों क्षेत्रों की अपेक्षा विनिमय-निश्चर भी होने चाहिए। यदि H विनिमय-निश्चर हो तो ऐसा होना निश्चित है। हम देख चुके हैं कि U के द्वारा व्यक्त करने से तो R_{ik} विनिमय-निश्चर होता है, किन्तु Γ के द्वारा व्यक्त करने से नहीं होता। फलतः H के विनिमय-निश्चर होने के लिए आवश्यक है कि क्षेत्रीयचरों के रूप में G^{ik} के अतिरिक्त हम केवल U का ही निवेषण करें, किन्तु Γ का नहीं। ऐसी दशा में यह बात प्रारम्भ से ही निश्चित हो जायगी कि क्षेत्रीय चरों के विचरण के द्वारा $\int H d\tau$ से जो क्षेत्र-समीकरण प्राप्त होंगे वे विनिमय-निश्चर होंगे।

G तथा U की अपेक्षा H के परिणमन से [समीकरण (12) तथा (8)] हम यह प्राप्त करेंगे

$$\left.\begin{aligned} \delta H &= S_{ik}\delta G^{ik} - \mathfrak{A}^{ik}_{l}\ \delta U^{l}_{ik} + \left(G^{ik}\ \delta^{s}_{ik}\right)_{,s} \\ \text{जहां}\quad S_{ik} &= U^{s}_{ik,s} - U^{s}_{it}\ U^{t}_{sk} + \tfrac{1}{3}\ U^{s}_{is}\ U^{t}_{tk} \\ \mathfrak{A}^{ik}_{l} &= G^{ik}{}_{,l} + G^{sk}\left(U^{i}_{sl} - \tfrac{1}{3}U^{t}_{st}\ \delta^{i}_{l}\right) \\ &\quad + G^{is}\left(U^{k}_{is} - \tfrac{1}{3}U^{t}_{ts}\ \delta^{k}_{l}\right) \end{aligned}\right\} \quad \ldots \quad (14)$$

क्षेत्र-समीकरण

(The Field Equations)

हमारा विचरण-नियम है

$$\delta\left(\int H d\tau\right) = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (15)$$

इसमें G^{ik} तथा U^{l}_{ik} का विचरण स्वतंत्र-रूप से होगा और अनुकल-परास की सीमाओं पर इनके विचरण शून्य हो जाते हैं। इस विचरण (variation) से पहिले तो यह प्राप्त होता है कि

$$\int \delta H d\tau = 0$$

इसमें यदि (14) में दिया हुआ व्यंजक प्रतिस्थापित कर दिया जाय तो δH के व्यंजक के अंतिम पद से अनुकल में कुछ भी वृद्धि नहीं होती क्योंकि अनुकलन-सीमा पर $\delta U^{l}_{ik} = 0$ हो जाता है। अतः क्षेत्र-समीकरण इस रूप में प्राप्त हो जायेंगे—

$$S_{ik} = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (16a)$$

$$\mathfrak{A}^{ik}_{l} = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (16b)$$

जैसा कि विचरण-नियम के निर्वाचन से स्पष्ट है, ये समीकरण निर्देशांक-रूपान्तरण तथा λ–रूपान्तरण के लिए भी निश्चर हैं और विनिमय-निश्चर भी हैं।

सर्व-समिकाएँ
(Identities)

ये क्षेत्र-समीकरण एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं। इनमें 4+1 सर्व समिकाएँ विद्यमान हैं। अर्थात् इनके वाम-पक्षों के बीच में 4+1 समीकरण ऐसे हैं जो सन्तुष्ट होते ही हैं चाहे क्षेत्र-समीकरणों को G-U क्षेत्र सन्तुष्ट करे या न करे।

$\int H d\tau$ निर्देशांक-रूपान्तरण तथा λ—रूपान्तरण में निश्चर रहता है इस तथ्य के द्वारा एक सुपरिचित विधि से ये सर्वसमिकाएँ प्राप्त हो सकती हैं।

$\int H d\tau$ की निश्चरता से यह नतीजा निकलता है कि यदि अनन्त सूक्ष्म निर्देशांक रूपान्तरण अथवा अनन्त सूक्ष्म λ—रूपान्तरण के कारण उत्पन्न विचरण δG तथा δU को δH के व्यंजक में निविष्ट कर दिया जाय तो $\int H d\tau$ का विचरण सर्व-सम रूप से शून्य हो जाता है।

अनन्त सूक्ष्म निर्देशांक-रूपान्तरण उसे कहते हैं जिसमें

$$x^{i*} = x^i + \xi^i \quad . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; . \; , \qquad (17)$$

हो तथा ξ^i कोई मनमाना अनन्त सूक्ष्म सदिश हो। अब हमें समीकरण (13) और (10b) की सहायता है δG^{ik} तथा δU^l_{ik} को ξ^i के द्वारा व्यक्त करना है।

(17) के कारण हमें $\frac{\partial x^{a*}}{\partial x^b}$ के स्थान में $\delta^a_b + \xi^a{}_{,b}$ तथा $\delta^a_b - \xi^a{}_{,b}$ के स्थान में $\frac{\partial x^a}{\partial x^{b*}}$ लिखना पड़ेगा और ξ के प्रथम से उच्चतर कोटि के समस्त पदों को छोड़ देना पड़ेगा। इस प्रकार हमें ये समीकरण प्राप्त हो जायेंगे—

$$\delta G^{ik} (= G^{ik*} - G^{ik}) = G^{sk} \xi^i{}_{,s} + G^{is} \xi^k{}_{,s} - G^{ik} \xi^s{}_{,s} + [-G^{ik}{}_{,s} \xi^s] \ldots (13a)$$

$$\delta U^l_{ik} (= U^{l*}_{ik} - U^l_{ik}) = U^s_{ik} \xi^l{}_{,s} - U^l_{sk} \xi^s{}_{,i} - U^l_{is} \xi^s{}_{ik} + \xi^l{}_{,ik} + [-U^l_{ik,s} \xi^s] \ldots (10c)$$

यहाँ निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। इन रूपान्तरण-सूत्रों से सांतत्यक (continuum) के उसी बिन्दु पर क्षेत्र-चरों के नये मान प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त परिकलन में पहिले तो δG^{ik} तथा δU^l_{ik} के ऐसे व्यंजक प्राप्त होते हैं

जिनमें कोष्ठक-गत पद नहीं रहते। किन्तु दूसरी ओर विचरण-परिकलन में δG^{ik} तथा δU^{l}_{ik} उन विचरणों को व्यक्त करते हैं जिनमें निर्देशांकों के मान स्थिर रहते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए कोष्ठक-गत पदों को जोड़ना पड़ता है।

अब यदि (14) में ये "रूपान्तरण–विचरण (transformation variations)" δG तथा δU निविष्ट कर दिये जायँ तो $\int H d\tau$ का विचरण सर्व-समतः शून्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि ξ^i ऐसे चुन लिये जायें कि अनुकलन–परास की सीमाओं पर वे तथा उनके प्रथम अवकलन लुप्त हो जायें तो (14) में अन्तिम पद कुछ भी अंशदान नहीं करता। इसलिए अनुकलन

$$\int \left(S_{ik}\, \delta G^{ik} - \mathfrak{A}^{ik}_{l}\, \delta U^{l}_{ik} \right) d\tau$$

सर्व-समतः शून्य हो जायगा यदि δG^{ik} और δU^{l}_{ik} के स्थान में व्यंजक (13a) तथा (10c) प्रति स्थापित कर दिये जायें। और चूंकि यह अनुकल तथा ξ^i उसके अवकलजों पर रैखिक तथा समघाती रूप से अवलम्बित होता है, इसलिए बारंबार खंडशः अनुकलन (integration by parts) करने से हम उसे यह रूप दे सकते हैं—

$$\int W_i\, \xi^i d\tau$$

जहां W_i ऐसा ज्ञात फलन है जो S_{ik}-सापेक्ष प्रथमकोटि का तथा $\mathfrak{A}^{ik}_{l}$- सापेक्ष द्वितीय कोटि का है। इससे सर्वसमिका

$$W_i \equiv 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \qquad (18)$$

प्राप्त हो जाती हैं। क्षेत्र-समीकरणों के वाम-पक्षों (S_{ik} तथा $\mathfrak{A}^{ik}_{l}$) के लिए ये सर्वसमिकाएँ चार हैं जो बियांची सर्वसमिकाओं की अनुरूपी हैं। पूर्व-निश्चित परिभाषा के अनुसार ये सर्व-समिकाएँ तृतीय कोटि की हैं।

अनन्त-सूक्ष्म λ—रूपान्तरण की अपेक्षा अनुकल $\int H d\tau$ की निश्चरता के अनुरूप एक पांचवीं सर्वसमिका और भी है। इसके लिए हमें (14) में

$$\delta G^{ik} = 0 \text{ तथा } \delta U^{l}_{ik} = \delta^{l}_{i}\, \lambda_{,k} - \delta^{l}_{k}\, \lambda_{,i}$$

रखना पड़ेगा जिसमें λ अनन्त सूक्ष्म भी है और अनुकलन-परास की सीमाओं पर शून्य भी हो जाता है। तब पहिले तो

$$\int \mathcal{A}_{l}^{ik} \left(\delta_{i}^{l} \lambda_{,k} - \delta_{k}^{l} \lambda_{,i} \right) d\tau = 0$$

हो जायगा और खंडशः अनुकलन के बाद

$$\zeta \int \mathcal{A}_{vs,i}^{is} \lambda \, d\tau = 0$$

प्राप्त होगा। (सामान्यतः $\mathcal{A}_{\underset{\vee}{}l}^{ik} = \frac{1}{2} (\mathcal{A}_{l}^{ik} - \mathcal{A}_{l}^{ki})$ होता है।)

इससे अभीष्ट सर्वसमिका यह प्राप्त होती है

$$\mathcal{A}_{vs,i}^{is} \equiv 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (19)$$

हमारी परिभाषा के अनुसार यह सर्व-समिका द्वितीय कोटि की है। (14) से सीधे परिकलन के द्वारा हम देखेंगे कि

$$\mathcal{A}_{vs}^{is} \equiv G_{v,s}^{is} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (19a)$$

यदि क्षेत्र समीकरण (16b) सन्तुष्ट होता हो तो हम देखेंगे कि

$$G_{v,s}^{is} = 0 \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (16c)$$

भौतिक निर्वचन सम्बन्धी टिप्पणी—विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र सम्बंधी मैक्सवैल के सिद्धान्त के साथ तुलना करने से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि (16c) से चुम्बकीय धारा-घनत्व (current density) का लुप्त होना प्रगट होता है। यदि यह स्वीकार कर लिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि विद्युत्-धारा के घनत्व को व्यक्त करनेवाला व्यंजक कौन-सा होगा। टेन्सर-घनत्व G^{ik} के साथ टेन्सर g^{ik} का सम्बंध

$$G^{ik} = g^{ik}\sqrt{-|g_{st}|} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (20)$$

लिखकर स्थापित किया जा सकता है जहां सहचर टेन्सर g_{ik} और प्रतिचर टेन्सर का सम्बंध व्यक्त करनेवाला समीकरण है

$$g_{is} \, g^{ks} = \delta_{i}^{k} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots \quad (21)$$

इन दोनों समीकरणों से हम यह प्राप्त करेंगे—

$$g^{ik} = G^{ik} \left(- |G^{st}| \right)^{-\frac{1}{2}}$$

और तब समीकरण (21) से g_{ik} प्राप्त हो जायगा। तब हम यह मान सकेंगे कि

$$(a_{ikl}) = \underset{\mathrm{V}}{g_{ik,l}} + \underset{\mathrm{V}}{g_{kl,i}} + \underset{\mathrm{V}}{g_{li,k}} \quad \cdots \quad \cdots \quad (22)$$

अथवा यह कि $\alpha^m = \frac{1}{6} \eta^{iklm} a_{ikl}$ ... ... (22a)

धारा-घनत्व को व्यक्त करता है जहां η^{iklm} लेवी-सिविटा (Levi-Civita) का टेन्सर-घनत्व है जिसके अवयव ± 1 हैं और जो समस्त संकेतांकों के लिए प्रति संमित है। इस राशि का अपसरण (divergence) सर्वसमतः शून्य हो जाता है।

समीकरण-संघ (16 a) **तथा** (16 b) **की प्रबलता** (strength)

गुणांकों को गिनने की जो विधि ऊपर बतायी गयी है उसका उपयोग करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि (9) के अनुरूप λ-रूपान्तरण के द्वारा किसी दिये हुए U से जो U* प्राप्त किये जाते हैं वे भी वास्तव में उसी U-क्षेत्र को निरूपित करते हैं। इस तथ्य से यह परिणाम निकलता है कि U^l_{ik} के प्रसार के n-वें वर्ण के गुणांकों में λ के n-वें वर्ण के $\binom{4}{n}$ अवकलज भी विद्यमान रहते हैं और जो U-क्षेत्र वस्तुतः भिन्न होते हैं उनके विभेदन में λ के किसी भी चुनाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए U-क्षेत्र के प्रसार के प्रयोजनीय गुणांकों की संख्या में $\binom{4}{n}$ की कमी हो जाती है। अतः उस गणन-विधि के अनुसार n-वें वर्ण के गुणांकों की संख्या हो जाती है

$$Z = \left[16\binom{4}{n} + 64\binom{4}{n-1} - 4\binom{4}{n+1} - \binom{4}{n} \right]$$
$$- \left[16\binom{4}{n-2} + 64\binom{4}{n-1} \right] + \left[4\binom{4}{n-3} + \binom{4}{n-2} \right] \cdots (23)$$

प्रथम कोष्ठक तो G-U-क्षेत्र को निर्धारित करने वाले n-वें वर्ण के प्रयोजनीय गुणांकों की सम्पूर्ण संख्या प्रगट करता है, द्वितीय कोष्ठक यह प्रगट करता है कि क्षेत्र-समीकरणों के अस्तित्व के कारण इस संख्या में कितनी कमी होती है और तृतीय कोष्ठक उस संशोधन को प्रगट करता है जो सर्व-समिका (18) तथा (19) के कारण

इस कमी में आवश्यक हो जाता है। यदि n बड़ा हो तो परिकलन के द्वारा प्रयोजनीय गुणांकों की संख्या का अनन्तस्पर्शी मान हो जाता है

$$z \simeq \binom{4}{n} \frac{z_1}{n} \qquad \ldots \qquad \ldots \qquad \ldots (23a)$$

जहां $z_1 = 42$ है। अतः असंमित क्षेत्र के समीकरण शुद्ध गुरुत्वीय क्षेत्र के समीकरणों ($z_1 = 12$) की तुलना में बहुत अधिक दुर्बल हैं।

समीकरण-संघ की प्रबलता पर λ-निश्चरत्व का प्रभाव

इस सिद्धान्त में विनिमय-निश्चरता उत्पन्न करने के लिए यह प्रलोभन भी हो सकता है कि U को क्षेत्रीय चर के रूप में निविष्ट करने के स्थान में विनिमय-निश्चर व्यंजक

$$H = \tfrac{1}{2}\left(G^{ik}R_{ik} + \tilde{G}^{ik}\tilde{R}^{ik} \right)$$

से प्रारम्भ किया जाय। तब जो सिद्धान्त प्राप्त होगा वह निश्चय ही ऊपर प्रतिपादित सिद्धान्त से भिन्न होगा। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि इस H के लिए कोई भी λ-निश्चरत्व विद्यमान नहीं है। और इससे भी हमें (16 a) और (16 b) की ही तरह के समीकरण प्राप्त होंगे जो G तथा Γ के सापेक्ष विनिमय-निश्चर होंगे। किन्तु उनमें केवल वे चार बियांची सर्वसमिकाएँ ही विद्यमान रहेंगी। अतः इस समीकरण-संघ पर उपर्युक्त गणन-विधि का उपयोग किया जाय तो (23) के अनुरूपी सूत्र के प्रथम कोष्ठक का चतुर्थ पद तथा तृतीय कोष्ठक का द्वितीय पद अनुपस्थित रहेंगे। तब

$$z_1 = 48$$

निकलेगा। अतः यह समीकरण-संघ हमारे चुने हुए समीकरण-संघ की तुलना में अधिक दुर्बल है और इसलिए त्याज्य है।

पूर्ववर्ती क्षेत्र-समीकरण-संघ से तुलना

यह समीकरण-संघ है—

$$\left.\begin{array}{l} \underset{\vee}{\Gamma^s_{is}} = 0 \\ \\ g_{ik,l} - g_{sk}\Gamma^s_{il} - g_{is}\Gamma^s_{lk} = 0 \end{array}\right\} \qquad \left.\begin{array}{l} \underline{R_{ik}} = 0 \\ \\ \underset{\vee}{R_{ik,l}} + \underset{\vee}{R_{kl,i}} + \underset{\vee}{R_{li,k}} = 0 \end{array}\right\}$$

जहां R_{ik} तो Γ का $(4\,a)$ द्वारा परिभाषित फलन है, तथा $\underline{R_{ik}} = \frac{1}{2}(R_{ik}+R_{ki})$ है और $\underset{\vee}{R_{ik}} = \frac{1}{2}(R_{ik}-R_{ki})$ है।

यह समीकरण संघ नये संघ $(16\,a)$, $(16\,b)$ का पूर्णतः तुल्यरूपी है क्योंकि यह भी उसी अनुकल से विचरण द्वारा प्राप्त किया गया है। यह g_{ik} तथा Γ^{l}_{ik} की अपेक्षा विनिमय–निश्चर है। किन्तु दोनों में अन्तर यह है—जिस अनुकल का विचरण कराया गया है, न तो वह स्वयं विनिमय-निश्चर है और न वे समीकरण जो उसके विचरण से पहिले प्राप्त होते हैं। किन्तु वह λ-रूपान्तरण (5) की अपेक्षा निश्चर है। इसमें विनिमय–निश्चरता उत्पन्न करने के लिए निम्नलिखित युक्ति का उपयोग करना पड़ता है। पहिले तो इसमें चार नये क्षेत्रीय चर λ_i निविष्ट किये जाते हैं और विचरण कराने के बाद वे इस प्रकार चुने जाते हैं कि निम्नलिखित समीकरण सन्तुष्ट हो जाय।

$$\underset{\vee}{\Gamma^{s}_{is}} = 0$$

इस प्रकार Γ–सापेक्ष विचरण से प्राप्त समीकरण अभीष्ट विनिमय-निश्चर रूप में आ जाते हैं। किन्तु अब भी R_{ik}–समीकरणों में सहायक (auxiliary) चर λ_i विद्यमान रहते हैं। किन्तु इनका निरसन किया जा सकता है और तब ऊपर लिखे अनुसार इन समीकरणों का विघटन हो जाता है और इस प्रकार जो समीकरण प्राप्त होते हैं वे G तथा Γ की अपेक्षा विनिमय-निश्चर होते हैं।

समीकरण $\underset{\vee}{\Gamma^{s}_{is}} = 0$ की संकल्पना में Γ–क्षेत्र का सामान्यीकरण (normalisation) गर्भित है और इससे उस समीकरण-संघ में से λ–निश्चरता का लोप हो जाता है। परिणामतः Γ–क्षेत्र के सभी तुल्य-रूपी निरूपण इस समीकरण-संघ के हल नहीं होते। इस प्रक्रिया की तुलना शुद्ध गुरुत्वीय क्षेत्र के समीकरणों के साथ कुछ मनमाने अतिरिक्त समीकरणों को जोड़ देने की प्रक्रिया के साथ की जा सकती है और इससे निर्देशांक निर्वाचन कुछ सीमित हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस विशिष्ट अवस्था में तो समीकरण संघ में व्यर्थ ही जटिलता भी आ जाती है। नवीन निरूपण में G तथा U के सापेक्ष विनिमय-निश्चर विचरण-नियम से प्रारम्भ करने और G

तथा U का उपयोग बराबर क्षेत्रीय चरों की तरह करने के कारण ये सब कठिनाइयां दूर हो जाती हैं।

अपसरण-नियम तथा संवेग और ऊर्जा के अविनाशित्व का नियम

(The Divergence Law and the Conservation Law of Momentum and Energy)

यदि क्षेत्र-समीकरण सन्तुष्ट हो जायें और यदि विचरण रूपान्तरण-विचरण हो तो (14) में केवल S_{ik} तथा $\mathfrak{A}^{ik}{}_{l}$ ही शून्य नहीं होते, किन्तु δH भी शून्य हो जाता है। फलतः क्षेत्र-समीकरणों में निम्नलिखित समीकरण भी गर्भित होता है—

$$\left(G^{ik} \delta U^{s}_{ik} \right)_{,s} = 0$$

जहां δU^{s}_{ik} समीकरण (10c) में व्यक्त राशि है। सदिश ξ^{i} के किसी भी निर्वाचन के लिए यह अपसरण नियम सन्तुष्ट हो जायगा। सबसे सरल निर्वाचन में ξ^{i} को x से स्वतंत्र मान लिया जा सकता है और इससे हमें ये चार समीकरण प्राप्त होंगे

$$I^{s}_{t,s} \equiv \left(G^{ik} U^{s}_{ik,t} \right)_{,s} = 0$$

ये समीकरण संवेग तथा ऊर्जा के अविनाशित्व के समीकरण समझे जा सकते हैं और इनका उसी तरह उपयोग भी किया जा सकता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे अविनाशित्व के समीकरण क्षेत्र-समीकरणों के द्वारा कभी भी अनन्यतः निर्णीत नहीं हो सकते। यह बात भी रोचक है कि समीकरण

$$I^{s}_{t} \equiv G^{ik} U^{s}_{ik,t}$$

के अनुसार ऊर्जा-धारा (energy current) $(I^{1}_{4}, I^{2}_{4}, I^{3}_{4})$ तथा ऊर्जा-घनत्व (energy-density) I^{4}_{4} शून्य हो जायेंगे यदि क्षेत्र x^{4} से स्वतंत्र हो। इससे यह नतीजा निकाला जा सकता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी विचित्रताहीन अप्रगामी (stationary) क्षेत्र कभी भी शून्येतर द्रव्यमान का निरूपण नहीं कर सकता।

यदि क्षेत्र-समीकरणों के पहिले वाले रूप का उपयोग किया जाय तो अविनाशित्व के नियमों का रूप तथा उनकी व्युत्पत्ति बहुत ही अधिक जटिल हो जाते हैं।

सामान्य टिप्पणियां
(General Remarks)

A— जिस सिद्धान्त का यहाँ प्रतिपादन किया गया है वह, मेरी राय में, समस्त संभव आपेक्षिकीय क्षेत्र-सिद्धान्तों में तर्क की दृष्टि से सरलतम है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रकृति का कार्य किसी जटिलतर सिद्धान्त के अनुसार होना संभव ही नहीं है।

इससे अधिक जटिल क्षेत्र-सिद्धान्तों का प्रतिपादन अनेक बार किया जा चुका है। निम्नलिखित लक्षणों के अनुसार उनका वर्गीकरण हो सकता है—

(a) सांतत्यक की विमितियों की संख्या में वृद्धि। इस दशा में इस बात के स्पष्टीकरण की आवश्यकता होगी कि तब सांतत्यक चार विमितियों में ही सीमित क्यों दिखाई देता है।

(b) विस्थापन क्षेत्र तथा उसी से सम्बद्ध टेन्सर-क्षेत्र g^{ik} (अथवा G^{ik}) के अतिरिक्त अन्य प्रकार के क्षेत्रों का (यथा सदिश क्षेत्र का) निवेषण।

(c) उच्चतर अवकलन के वर्ण के क्षेत्र-समीकरणों का निर्माण।

मेरी राय में ऐसे जटिलतर सिद्धान्तों को और उनके सम्मिश्रणों को स्वीकार करने का विचार उसी दशा में करना उचित हो सकता है जब इसके लिए कोई भौतिक तथा आनुभविक कारण विद्यमान हों।

B—अभी तक कोई भी क्षेत्र-सिद्धान्त केवल क्षेत्र-समीकरणों के ही द्वारा पूर्णतः निर्णीत नहीं हो सका है। क्या विचित्रताओं के अस्तित्व को स्वीकार करना उचित है? क्या सीमान्त प्रतिबंधों की संकल्पना उचित है? प्रथम प्रश्न के सम्बंध में मेरा मत तो यह है कि उन्हें निश्चय ही त्याज्य समझना चाहिए। मुझे यह तर्क-संगत नहीं मालूम देता कि सांतत्यक-सिद्धान्त में ऐसे बिन्दुओं, रेखाओं आदि का उपयोग किया जाय जिनके लिए क्षेत्र-समीकरण सन्तुष्ट न होते हों। इसके अतिरिक्त विचित्रताओं के निवेषण का अर्थ है इन विचित्रताओं को निकटतः परिवेष्टित करनेवाले पृष्ठों पर ऐसे सीमान्त प्रतिबंधों की संकल्पना करना जो क्षेत्र-समीकरणों के दृष्टि-कोण से मनमाने हों। ऐसी

संकलपना के बिना सिद्धान्त में बहुत ही अधिक अनिश्चितता बनी रहेगी। दूसरे प्रश्न के सम्बंध में मेरा मत है कि सीमान्त प्रतिबंधों की संकलपना अनिवार्य है। इसको मैं एक सरल उदाहरण के द्वारा समझाऊंगा। $\phi = \sum \frac{m}{r}$ द्वारा व्यक्त होने वाले विभव (potential) की संकलपना की तुलना इस वक्तव्य से हो सकती है कि द्रव्य-बिन्दुओं से बाहर के त्रिविमितीय प्रदेश में समीकरण $\triangle \phi = 0$ सन्तुष्ट होता है। किन्तु यदि इसके साथ यह प्रतिबंध नहीं जोड़ दिया जाय कि अनन्ती पर ϕ शून्य हो जाता है (अथवा परिमित बना रहता है) तो हमें ऐसे हल भी प्राप्त हो सकते हैं जो पूर्णतः x के फलन तो होते हैं $\left\{ \text{यथा } x_1^2 - \frac{1}{2}\left(x_2^2 + x_3^2 \right) \right\}$ किन्तु जो अनन्ती पर अनन्त हो जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों के निषेध के लिए किसी न किसी सीमान्त प्रतिबंध की संकलपना अनिवार्य है यदि क्षेत्र असंवृत अथवा असीमित हो।

C—क्या इस बात की कल्पना हो सकती है कि किसी क्षेत्र-सिद्धान्त के द्वारा हम वास्तविकता की पारमाणविक और क्वान्टमीय संरचना को समझ सकें? प्रायः प्रत्येक मनुष्य इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही देगा। किन्तु मेरा विश्वास है कि इस समय इस विषय का विश्वसनीय ज्ञान किसी को भी नहीं है। इसका कारण यह है कि हम इस बात का निर्णय करने में असमर्थ हैं कि विचित्रताओं का निषेध हलों की बहुलता को किस प्रकार और किस हदतक कम कर सकता है। हमारे पास इस समय विचित्रता-विहीन हल को व्यवस्थित रूप से प्राप्त करने का कोई भी साधन नहीं है। सन्निकटन की विधियाँ किसी काम की नहीं हैं क्योंकि यह जानना संभव नहीं है कि किसी विशेष सन्निकटन हल के लिए कोई विचित्रता-विहीन यथार्थ हल का अस्तित्व है या नहीं। इसी कारण से हम इस समय किसी भी अरैखिक क्षेत्र-सिद्धान्त की सामग्री की तुलना अनुभव से नहीं कर सकते। केवल गणितीय क्रियाओं की उल्लेखनीय प्रगति से ही हमें इस समस्या में सहायता मिल सकती है। वर्तमान में तो बहुमत इसी मत के पक्ष में है कि पहिले तो बहुत कुछ निश्चित नियमानुसार क्वान्टमीकरण (quantisation) करके क्षेत्र-सिद्धान्त को क्षेत्रीय-प्रायिकताओं (field-probabilities) के सांख्यिकीय (statistical) सिद्धान्त में परिणत करने की आवश्यकता है। मुझे तो इसमें वस्तुतः अरैखिक अनुबंधों को रैखिक विधि से व्यक्त करने ही का प्रयत्न दिखाई देता है।

D—इस बात के अनेक कारण बताये जा सकते हैं कि वास्तविकता को संतत क्षेत्र के द्वारा निरूपित क्यों नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि क्वान्टममूलक

घटनाओं से निश्चित रूप से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि परिमित ऊर्जावाले परिमित तंत्र का पूर्ण विवरण कुछ संख्याओं (क्वान्टम-संख्याओं) के परिमित समुदाय के द्वारा दिया जा सकता है। यह बात किसी भी सांतत्यक सिद्धान्त से संगत नहीं मालूम होती। अतः इससे वास्तविकता के विवरण के लिए किसी शुद्ध बीजीय (Algebraic) सिद्धान्त को खोजने के प्रयत्न की प्रेरणा मिलती है। किन्तु अभी कोई भी नहीं जानता कि ऐसे सिद्धान्त के लिए आधार किस प्रकार प्राप्त किया जाय।

आपेक्षिता की पारिभाषिक शब्दावली और अनुक्रमणिका

पारिभाषिक शब्दावली

(अंग्रेजी–हिन्दी)

Abbreviation संक्षेपण
Aberration विपथन
About (rotation) परितः (घूर्णन)
Absolute निरपेक्ष; परम
Abstract अमूर्त
Acceleration त्वरण
Accuracy यथार्थता
Addition योग; संकलन
Ad hoc तदर्थ
Adiabatic स्थिरोष्म; रुद्धोष्म
Adjustment समंजन
Aether ईथर
Allowed अनुज्ञात; अनुमेय
Analogous सदृश; अनुरूप
Analysis विश्लेषण
Anisotropy विषमदिक्ता
Aposteriori परतः;
Apparatus उपकरण; साधन
A' priori पूर्वतः; अनुभवनिरपेक्षतः
Approximate सन्निकट
Arbitrary मनमाना; स्वेच्छ
Astronomical ज्यौतिषीय, खगोलीय
Astronomy खगोल विज्ञान; ज्योतिष
Atom परमाणु
Average माध्य; औसत
Axiom स्वयंसिद्ध; स्वयंतथ्य
Axis अक्ष
Balance (v) प्रतितोलन करना
Beat संकर; स्वरसंकर
Body वस्तु; पिंड
Bracket कोष्ठक
Calculation परिकलन
Calculus कलन
Cartesian coordinates कार्तीय निर्देशांक
Celestial body खगोलीय पिंड
Centre केन्द्र
Centrifugal अपकेन्द्र
Centripetal अभिकेन्द्र
Change परिवर्तन
Charge आवेश
Choice निर्वाचन, चुनाव; वरण
Circle वृत्त
Classical चिर-प्रतिष्ठित
Closed संवृत्त; निमीलित; बंद
Coefficient गुणांक

Cofactor सहगुणक
Coincidence संपात
Compatibility सांगत्य
Combinations संचय
Complement परिपूरक
Complex जटिल
——quantity सम्मिश्र राशि
Component घटक; संघटक
Compressible संपीड्य
Concept धारणा; अवधारणा
Condition प्रतिबंध; शर्त
Cone शंकु
Configuration विन्यास; संस्थिति संरूपण
Conform संगत होना
Congruence सर्वांग समता
Conjugate संयुग्मी
Conservation अविनाशिता; संरक्षण
Conservative संरक्षी
Consistent संगत
Constant स्थिर; नियत; अचर
——number स्थिरांक; नियतांक
Contact संस्पर्श; संपर्क
Continuation संतनन
Continuity सांतत्य
Continuous संतत
Continuum सांतत्यक
Contraction आकुंचन
Contravariant प्रतिचर
Contribution अंशदान
Conversely विलोमत:
Coordinates निर्देशांक
Correlation अनुबंधन
Corresponding अनुरूप
Cosine कोज्या
Cosmic rays अन्तरिक्ष किरणें
Cosmological विश्व रचना संबंधी
——constant विश्व-रचनांक
Covariant सहचर
Crust पपड़ी, दृढ स्तर
Cubical घनाकार
Current धारा
Current coordinates चर निर्देशांक
Curvilinear वक्र; वक्ररेखीय
Cyclic चक्रीय; चाक्रिक
Cylinder बेलन
Data दत्त; न्यास
Decomposition विच्छेदन; विघटन
Deduce निगमित करना; निगमन करना
Deductive निगमनिक
Deflection विक्षेप
Deformation विरूपण
Degree घात
——of approximation सन्निकटन की कोटि
Demonstration निदर्शन
Density घनत्व
Dependent आश्रित; अवलम्बित; आधारित

Derivation व्युत्पत्ति
Derivative व्युत्पन्न; अवकलज
Derive व्युत्पन्न करना
Determinant सारणिक; डिटर्मिनेन्ट
Deviation विचलन
Diagram रेखाचित्र
Diameter व्यास
Differential अवकल
Differential Calculus अवकल कलन
——Coefficient अवकल-गुणांक
Differentiation अवकलन
Dilatation प्रसार
Dilemma उभयापत्ति
Dimension विमिति
Discovery आविष्कार
Displacement विस्थापन
Distance दूरी
Distribution वितरण
Divergence (of a quality) अपसरण
Divergence (of rays) अपबिन्दुता
Domain परास; परिसीमा
Dwarf star वामन तारा
Dynamics गतिविज्ञान; गतिकी
Eccentricity उत्केन्द्रता
Effect प्रभाव
Electro-dynamics विद्युत्-गतिविज्ञान; विद्युत्-गतिकी
Electro-magnetic विद्युत्-चुम्बकीय
Element अवयव; मूलांश
——(chemical) तत्त्व
Elementary मूल
Eliminate निरसन करना
Ellipsoid दीर्घवृत्तज
Elliptical दीर्घ वृत्ताकार
Emission उत्सर्जन
Empirical आनुभविक
Empiricism आनुभविकता
Empty रिक्त
Energy ऊर्जा
Engineer इंजिनियर (अभियन्ता)
Ensemble समष्टि
Entity सत्ता
Epistemology ज्ञानशास्त्र
Equal सम; बराबर
Equation समीकरण
Equilibrium सन्तुलन
Equivalence तुल्यता
Equivalent तुल्य; तुल्यरूपी
Error भूल; त्रुटि
Estimate अनुमान; अन्दाज़ा
Ether ईथर
Even function समघाती फलन
Even number सम संख्या
Event घटना
Exact यथातथ
Exchange विनिमय
Explicit स्पष्ट
Express व्यक्त करना
Expression व्यंजक

Fact तथ्य
Factor गुणन खंड
Family कुल
——of curves वक्र-कुल
Filament तन्तु
Finite परिमित
Form रूप
Formation निर्माण; रचना
Formula सूत्र
Formulate रचना करना
Frame of reference निर्देश-तंत्र; निर्देश-जाल
Framework ढाँचा; तंत्र; जाल
Frequency आवृत्ति
Function फलन
Fundamental मौलिक; मूल
General व्यापक
General relativity व्यापक आपेक्षिकता
Generalisation व्यापकीकरण
Generalised व्यापकीकृत
Geodesic अल्पान्तरी
Geodetic अल्पान्तरीय
Geometry ज्यामिति; रेखागणित
Gravitation गुरुत्व; गुरुत्वाकर्षण
Gravitational गुरुत्वीय
Hewistic अनुसंधानात्मक
Hollow खोखला
Homogeneous (१) समांगी (२) समघाती
—equation समघात समीकरण
Hydrodynamics द्रव्य-गति-विज्ञान; द्रव्य-गतिकी
Hyper surface अतिपृष्ठ
Hypothesis परिकल्पना
Ideal आदर्श
Identical अभिन्न; सर्वसम
Identically equal सर्वसमतः बराबर
Identify अभिन्न समझना
Identity सर्वसमिका
Image प्रतिबिंब
Immediate अव्यवहित
Inclined नत; आनत
Increment वृद्धि
Indefinite अनिश्चित; अनिर्णीत
Independent स्वतंत्र
Index (power) घातांक
——(suffix) संकेतांक
Indication सूचना
Inertia अवस्थितित्व; जड़ता; जड़त्व
Inertial अवस्थितित्वीय; जड़त्वीय
Infinite अनन्त
Infinitely small अनन्त सूक्ष्म; अनन्ततः सूक्ष्म
Infinitesimal अत्यल्प; अनन्ततः अल्प
Infinity अनंती
Inflection (point of—) नति-परिवर्तन-बिन्दु
Inseparable अवियोज्य

Instantaneous तात्कालिक; तात्क्षणिक
Intangible
Integral अनुकल
——calculus अनुकल-कलन
——number पूर्णसंख्या; पूर्णांक
Integrand अनुकल्य
Integrate अनुकलन करना
Intensity तीव्रता
Interchange व्यतिहार; विनिमय
Interval अंतराल
——of space दिगन्तराल; आकाशीय अन्तराल
——of time कालान्तराल
Invariant निश्चर
Inverse प्रतिलोम
Inversion प्रतिलोमीकरण
Investigation अनुसंधान
Isolate पृथक् करना
Isotropy समदिक्ता
Justification समर्थन; औचित्य; समाधान
Kinetic energy गतिज ऊर्जा
Lateral पार्श्विक
Lattice जाल; प्रजाल
Law नियम
Left-hand वाम-हस्त
Limit सीमा
Limitation परिसीमा; परिसीमन
Limitng case सीमान्त अवस्था
Linear equation एकघात समीकरण
Linear function एकघात फलन; रैखिक फलन
Length लम्बाई
Locus बिन्दुपथ
Logical तर्क-संगत
Lower निम्नतर; लघुतर
Magnitude परिमाण
Major axis दीर्घ अक्ष
Manifold बहुविमितिक
Mass (१) द्रव्य पुंज; द्रव्य संहति (as in heavy masses)
(२) द्रव्यमान (as in mass of a body)
Material द्रव्य; सामग्री
Material point द्रव्य-बिन्दु
Matter द्रव्य
Mean माध्य
Mean value मध्यमान
Measurement (१) मापन (२) माप
Measuring rod मापन-दंड
Mechanics यांत्रिकी
Medium माध्यम
Member अंग; पद
Mercury (planet) बुध (ग्रह)
Method विधि; रीति
Metric मेट्रिक; मापनिक
Metrical मापनिक; मापनिकीय
Minor axis लघु अक्ष
Moment घूर्ण

Momentum संवेग
Monotonically एकान्ततः
Multiplicity अनेकत्व; बहुलता
Nebula नीहारिका
Notation संकेतन
Nucleus नाभिक, न्युक्लियस
Object वस्तु
Objective वास्तविक; वस्तुनिष्ठ
Observation प्रेक्षण
Odd number विषम संख्या; विषमांक
Omit छोड़ देना; उपेक्षा करना; लुप्त करना
Operation क्रिया; प्रक्रिया
Opposite विरुद्ध
Orbit कक्षा
Order (of differentiation, equation) वर्ण
(magnitude etc.) कोटि
Orientation अनुन्यास; अनुस्थापन
Original मूल; मौलिक
Origin (of coordination) मूल बिन्दु
Orthogonal लम्बकोणिक; समकोणिक
Orthogonality लम्बकोणता
Pair युग्म; युगल
Parallax लम्बन
Parallel समान्तर
Parallelopipedon समान्तर फलकी
Parameter प्राचल
Parenthesis लघुबंधनी; लघु-कोष्ठक
Partial आंशिक
Parsec पारसेक
Path पथ
Perception उपलब्धि; अनुभूति
Perfect gas आदर्श गैस
Perfect (integral) यथार्थ अनुकल;
Perfect number आदर्श संख्या
Perihelion–परिसौर (बिन्दु); परिनाभिक (बिन्दु)
Periphery परिमा; परिधि
Permutation क्रमचय
Perturbation विक्षोभ
Phenomenon घटना
Physics भौतिक विज्ञान; भौतिकी
Plane समतल
Point बिन्दु
Polar ध्रुवीय
Pole ध्रुव
Ponderable भारयुक्त
Ponderomotive force भार वाहक बल
Postulate संकल्पना; उपगृहीत
Potential (noun) विभव
Potential energy स्थितिज ऊर्जा
Preferred वरिष्ठ; अधिमत
Pressure दाब; दबाव
Principle नियम; सिद्धान्त
Probability प्रायिकता
Probable प्रायिक

Process प्रक्रिया
Projection प्रक्षेपण; प्रक्षेप
Proof प्रमाण; उपपत्ति
Proper Time नैजकाल
Property गुण
Propagation प्रचरण
Proportion अनुपात
Proportional अनुपाती; समानुपाती
Proposition साध्य
Provisional अन्तरिम
Psuedo-spherical कूट गोलाकार
Psychology मनोविज्ञान
Quantitative पारिमाणिक
Quantity परिमाण; मात्रा; राशि
Quasi-Euclidean यूक्लिडीयाभासी; प्रायः यूक्लिडीय
Radial त्रिज्य
Radiaon रेडियन
Radiation विकिरण
Radius त्रिज्या
Radius vector सदिश त्रिज्या
Radical (sign) करणी (चिह्न)
Radio-active स्वोत्सर्जी; रेडियम धर्मी
Random अनियमित; यादृच्छिक
Rank (of Tensor) कोटि
Rate दर
Ratio अनुपात
Rational परिमेय
Real वास्तविक
Reality वास्तवता
Reception संग्रहण
Reciprocal व्युत्क्रम; व्युत्क्रमिक
Red-shift रक्ताभिमुखी विस्थापन; रक्त-विस्थापन
Reference निर्देशन
Relation सम्बंध; अनुबंध
Relative आपेक्षिक; सापेक्ष
Relativity आपेक्षिकता
Released विमोचित
Replace प्रतिस्थापित करना
Represent निरूपित करना
Representation निरूपण
Rest विराम
Result परिणाम, फल
Resultant (force) परिणाम (बल)
Retarded विमन्दित
Reverse उत्क्रम
Reversible उत्क्राम्य
Reversibility उत्क्रमणीयता
Revolution परिक्रमा; परिक्रमण
Right-hand दक्षिण हस्त
Rigid दृढ़; परिदृढ़
Rod छड़; दंड
Rotation घूर्णन
Rotational घूर्णनिक
Rule नियम
Satisfy (an equation) सन्तुष्ट करना
—(a rule) नियम का पालन करना

Scale (१) मापदंड (२) माप-क्रम
Section काट; खंड
Secular दीर्घ कालिक
Semi-major axis अर्ध दीर्घ अक्ष
Sharp तीक्ष्ण
Sign चिह्न
Signal संकेत
Significance अभिव्यक्ति; तथ्यपूर्णता
Significant तथ्यपूर्ण
Similarity Transformation सम-रूप-रूपान्तरण
Simple सरल
Simultaneous युगपत्; समक्षणिक
Single एकक; एकाकी
Singularity विचित्रता
Singular point विचित्र बिन्दु
Skew symmetrical विषम-संमित
Slipping स्खलन;
Space आकाश; दिक्
Space-lattice त्रिविमितीय जाल; दिक्-जाल
Special Theory विशिष्ट सिद्धान्त
Specialisation विशेषोपयोजन
Spectral line स्पैक्ट्रमीय रेखा
Spectrum स्पैक्ट्रम; वर्णक्रम
Spherical गोलाकार; गोलीय
Square वर्ग
Standard (n) मानक
(a) प्रामाणिक
Statical स्थैतिक
Stationary state स्थावर अवस्था
——wave अप्रगामी तरंग
Straight line सरल रेखा; ऋजु रेखा
Strength प्रबलता
Stress प्रतिबल
Structure संरचना
Subjective व्यक्तिनिष्ठ; व्यक्तिगत
Sub-space खंडाकाश
Substitute प्रतिस्थापित करना
Substitution प्रतिस्थापन
Subtraction व्यवकलन
Successive क्रमिक; उत्तरोत्तर
Summation संकलन
Superimpose अध्यारोपित करना
Surface पृष्ठ
——of second degree द्विघातीपृष्ठ
Symbol प्रतीक; संकेत
Symmetrical संमित
System (method) पद्धति; प्रणाली; व्यवस्था
——(connected group) तंत्र
——(e.g. of equation) संघ
Systematic व्यवस्थित
Tensor टेन्सर, प्रदिश, प्रदिष्ट
Term पद
Tetrahedron चतुष्फलक
Theorem प्रमेय
Theory सिद्धान्त
Time काल; समय
Transform रूपान्तर करना

Transformation रूपान्तरण
Translation स्थानान्तरण
Transmit संचारित करना
Transpose पक्षान्तर करना
Transposition पक्षान्तरण; विनिमय
True सही; सच्चा; यथार्थ
Unified Theory संश्लिष्ट सिद्धान्त
Uniform (velocity) एक-समान वेग; अचर वेग
——field समांगी क्षेत्र
Unit (१) मात्रक; (२) एकांक
Unite संयोजित करना
Unique अनन्य
Universe विश्व
Unlimited असीमित
Upper उच्च; उच्चतर
Vacuum निर्वात; शून्याकाश
Valid मान्य
Value मान
——(price) मूल्य
Vanish शून्य होना; विलुप्त होना
Variable चर
Variation विचरण
Vary विचरना; परिवर्तन होना
Vector सदिश; दिष्ट
Velocity वेग
Verification सत्यापन
Virial विरीयल
Viscosity श्यानता
Viscous श्यान
Volume आयतन
Wave तरंग
Wave-length तरंग-दैर्घ्य
With respect to (१) की अपेक्षा; सापेक्ष (२) प्रति
Work कर्म; कार्य
World-point विश्व-बिन्दु

(हिन्दी-अंग्रेजी)

अंतराल interval
अंतरिक्ष किरणें cosmic rays
अचल stationary
अदिश scalar
अधिमत (वरिष्ठ) preferred
अनन्ततः infinitely
अनन्त सूक्ष्म infinite by small
अनन्ती infinity
अनुकल integral
अनुकल्य integrand
अनुकलित integral
अनुबंध relation
अनुभव निरपेक्ष apriori
अनुस्थापित oriented
अन्योन्य विपरीतता contradiction
अपसरण divergence
अर्ध दीर्घ अक्ष semi-major axis
अल्पान्तरी geodesic
अवकलन differentiation
अवस्थितित्वीय तंत्र inertial system
अविनाशित्व नियम conservation principle
अवमंदित non-retarded
असंमित क्षेत्रों का आपेक्षिकीय सिद्धान्त Relative theory of non symmetric fields
असमक्षणिक non-simultaneous
आकाश space
आकुंचन contraction
आदर्श तरल perfect fluids
आपेक्षिकता का सिद्धान्त theory of relativity
आवर्तकाल periodic time
आवेश charge
उत्केंद्रता centricity
उत्क्राम्य reversible
एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त unified field theory
काल का प्रसार time-dilation
कालचर time variable
कार्तीय निर्देशांक cartesian coordinates
कूट गोलाकार psuedo spherical
कोज्या cosine
क्रमचय permutation
खंडाकाश sub-space
खगोलीय astronomical
गतिज ऊर्जा Kinetic energy

गुरुत्वीय gravitational
गुणांक co-efficient
गोलाकार आकाश spherical space
गोलीय अतिपृष्ठ hyper surface
गोलीय पृष्ठ spherical surface
घटक component
चतुर्विमितीय सांतत्यक four dimensional continuum
चरनिर्देशांक current coordinates
चिर-प्रतिष्ठित classical
जडत्वीय द्रव्यमान inertial mass
तुल्यरूपी analogous
त्रिगुण अनंती triple infinity
दक्षिण हस्त right hand
दिक् (आकाश) space
दिग्जाल space-lattice
दीर्घकालिक secular
दीर्घवृत्तज ellipsoid
दीर्घवृत्तीय कक्षा elliptical orbit
द्रवकण material particle
द्रव गतिकी hydro dynamics
नाभिकीय nuclear
निगमन deduction
निरपेक्ष absolute
निरसन elimination
निर्देशांक तंत्र system of coordinates
निर्देशाकाश space of reference
निवेषण introduction
निश्चर invariant
नीहारिका nebula

नैज आवृत्तियाँ proper frequencies
परिकलन calculation
परिकल्पना hypothesis
परिदृढ़ rigid
परिपूरक complement
परिसौर बिन्दु perihelion
पृष्ठ-सिद्धान्त theory of space
प्रकाश-विपथन aberration
प्रकाश-शंकु light cone
प्रक्षेप projection
प्रतिकर्षण repulsion
प्रतिचर contra-variant
प्रतितोलन balance
प्रतिबल stress; assumption
प्रतिबंध condition
प्रतिलोम प्रतिस्थापन inverse substitution
प्रमेय theorem
प्राकाशिक घटना optical phenomenon
प्राचल parameter
प्रायिकता पूर्ण probable
फलन function
फलनिक functional
बहुमितिक manifold
बिन्दुपथ locus
बीजीय क्रियाएँ algebrical operations
भौतिक निर्वचन physical interpretation
मात्रक आकाश unity space

मापीय metrical
मूलांश elements
यांत्रिकी mechanics
याकोबी प्रमेय Jacobi theorem
रक्त विस्थापन red shift
रैखिक linear
लम्ब कोणिकता orthogonality
लुब्धक sirius
वरिष्ठ preferred
वस्तु निष्ठ objective
वस्तुसंघ system
विकिरण radiation
विक्षेपित defuted
विखंडन fission
विचरण variation
विद्युत् गतिकी electro-dynamics
विभव potential
विमिति dimension
विरूपण deformation
विशिष्टीकरण specialisation
विश्व संरचना की समस्या cosmological problem
विषम संमित skew-symmetrical
विषमांगिता non-uniformity
व्यंजक expression
व्यवकलन difference
व्यवकलन subtraction
व्यतिहार (विनिमय) interchange
व्यापक आपेक्षिकता general relativity
व्यापकीकरण generalisation
व्यापकीकृत generalised
व्युत्क्रमिक reciprocal
श्यान viscous
संकलन addition
संकलन का चिह्न sign of summation
संकल्पना assumption; postulate
संकेतन पद्धति notation
संकेतांक index
संक्षेपण abbreviation
संघनित concentrated
संचय combination
संतत परिणमन continuous variation
संतनन continuation
संनिकटन approximation
संपात coincidence
संपीड्य compressible
संमित रूप से symmetrically
संमिति symmetry
संमितीय गुण symmetrical property
संरक्षी conservative
संरचना structure
संरूपण configuration
संस्थिति configuration
सत्ता entity
सत्याप्न validation
सदिश vector

समंजित adjusted
समक्षणिक simultaneous
समघाती homogeneous
समदिक्ता isotropy
समरूप रूपान्तरण similarity transformation
समष्टि ensemble
सर्वरूप identically equal
सर्वसमता identity
सर्वांग समता congruance
सहगुणक co-factor
सहचर co-variant
सांतत्यक continuance
सांतत्यक continuity
सार्वत्रिक universal
सुग्राही sensitive
स्थितिज ऊर्जा potential energy
स्थिरांक constant
स्थैतिक static
स्पर्शरेखीय tangential
स्वयं तथ्य (स्वयंसिद्ध) axiom
स्वेच्छ arbitrary

अनुक्रमणिका

ग्रीक वर्णमाला

विज्ञान की पुस्तकों में ग्रीक वर्णों का प्रयोग भी बहुधा किया जाता है, अतः हिन्दी के पाठकों के लिए उनके नामों तथा उच्चारण की सूची नीचे दी जाती है—

Α α अलफा=a

Β β बीता=b

Γ γ गामा=g

Δ δ डेलटा=d

Ε ϵ एप्साइलान=e

Ζ ζ ज़ीता=z

Η η ईता=ē

Θ θ थीता=th

Ι ι इओता=i

Κ κ कप्पा=k

Λ λ लम्बदा=l

Μ μ म्यु=m

Ν ν न्यू=n

Ξ ξ क्साई=x

Ο ο ओमाइक्रान=o

Π π पाई=p

Ρ ρ र्हो=r

Σ σ ς सिगमा=s

Τ τ तउ=t

ϒ υ अपसाइलन=u

Φ ϕ फाई=ph

Χ χ चाई=kh (ch)

Ψ ψ प्साई=ps

Ω ω ओमेगा=ō